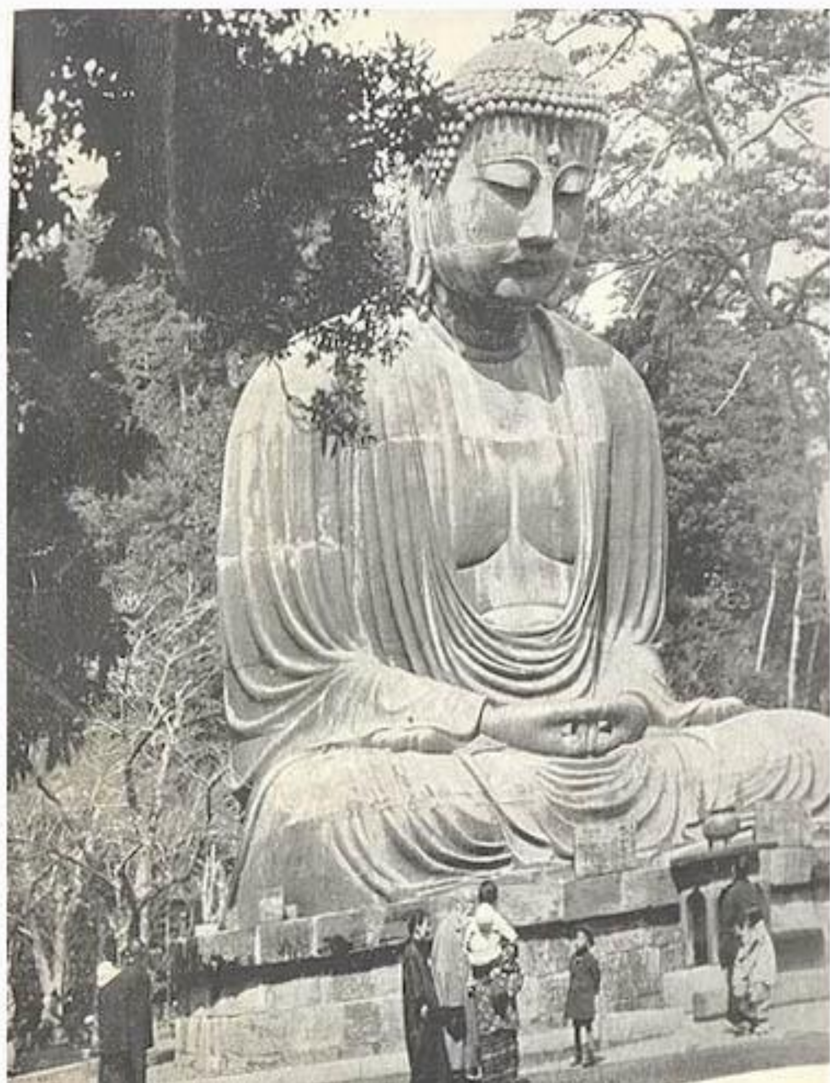
जापान का रहस्य

चमनलाल



जापान-रहस्य

मूल लेखक—श्री चमनलाल

अनुवादक

श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

काशी विद्यापीठ, काशी

मूल्य १॥)
सजिल्द २)

प्रकाशक
मन्त्री, काशी विद्यापीठ
बनारस कैण्ट

मुद्रक
मा० वि० पराड़कर,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी । ६७२८-५३

प्राक्कथन

जापानको अपनी उस संस्कृतिका अभिमान है जो विदेशियोंकी दृष्टिमें अद्वितीय साबित हो रही है। उसे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि उसके निवासी उन्नतिके पथपर, पुरातन प्राच्य सभ्यताके पुनरुद्धारमें, धड़ल्लेके साथ अग्रसर हो रहे हैं।

आधुनिक जापान पूर्व और पश्चिमकी श्रेष्ठ बातोंको परस्पर मिला देनेका प्रयत्न कर रहा है लेकिन कोई भी विचारवान् व्यक्ति इस बातसे इनकार नहीं कर सकता कि प्राचीन जापान अनेक बातोंके लिए प्राच्य सभ्यताके केन्द्र भारतका ऋणी है। हो सकता है कि इस पुस्तकके रचयिताको इस समय जापान कुछ स्फूर्ति प्रदान करनेमें समर्थ हो, किन्तु उन्हें तथा उनके पाठकोंको इस बातका निश्चय कराया जा सकता है कि वर्त्तमान जापानका बीज सदियों पहले उस वक्त बोया गया था जब भारतीय ज्ञान-सूर्यका प्रकाश जापानको भी आलोकित कर रहा था।

जो हो, राष्ट्रोंका विकास दूसरोंकी अच्छी बातोंको अपना लेनेसे ही होता है। अन्य शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि दूसरोंसे कुछ सीखने और उन्हें कुछ सिखानेसे ही उन्नति होती है। मुझे पूरी आशा है कि भारतका महान् राष्ट्र अपने अतीत गौरवको न भुलाते हुए भी दार्शनिकों जैसी नम्रताके साथ भविष्यका सामना करनेमें समर्थ होगा और सम सामयिक संसारमें जहाँ भी अच्छी अच्छी चीज़ें नज़र आवें, उन्हें सीखने, ग्रहण करने और अपने अनुकूल बनानेकी चेष्टा करेगा।

सिगोरो ताकाइशी

प्रधान सम्पादक टोकियो नीची नीची तथा ओसाका मैनीची।

भूमिका

इस पुस्तककी भूमिका लिख देनेको कहकर श्री चमनलालने मुझे सम्मानित किया है और मैं बड़ी खुशीके साथ उनके आदेशका पालन करने जा रहा हूँ।

पुस्तककी पाण्डुलिपिको देखनेका जितना मौक़ा मुझे मिला है, उससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें तीन विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि श्री चमनलालने नये ढङ्गसे अपने विषयका वर्णन किया है। जापानपर हज़ारों पुस्तकें लिखी गयी हैं, जिनमेंसे अधिकांश प्रायः एक ही तरेकी हैं। विदेशी लेखक प्रायः इतिहासकी सूखी हड्डियोंको लेकर एक ढाँचा तैयार करते हैं, जिसपर वे अपने अवलोकन और अनुभवका मांस चढ़ानेकी कोशिश करते हैं। पुस्तकका बढ़िया होना इस बातपर निर्भर है कि रचयिता इस ढाँचेके लिए किस तरहकी हड्डियाँ चुनता है और उसपर गोश्त चढ़ाते वक्त कैसी सजीवता प्रदर्शित करता है। यही कारण है कि बहुत कम लोग ही अच्छी पुस्तकें लिखनेमें सफल हुए हैं। श्री चमनलालकी सफलताका श्रेय एक तो इस बातको है कि वे भारतीय हैं, दूसरे यह कि उनकी अवलोकन शक्ति बहुत सूक्ष्म है। भारतीय होनेकी वजहसे वे प्राच्य आदर्शों तथा प्राच्य इतिहाससे भलीभाँति परिचित हैं, अतः अपने विषयको समझनेकी क्षमता उन्हें मानो जन्मसे ही प्राप्त है। फिर वे ऐसे कुशल पत्रकार भी हैं जिसने अनेक देशों तथा अनेक जातियोंका अध्ययन किया है और उन्हें रहस्योंका ढूँढ़ निकालना खूब आता है। 'जापानके रहस्य' जिस तरह उन्होंने देखे हैं, उनका हाल पढ़नेपर बिलकुल नया सा मालूम होता है और उससे शिक्षा भी मिलती है।

दूसरी विशेषता यह है कि श्री चमनलालने बड़ी सहानुभूतिके साथ यह पुस्तक लिखी है। यदि कोई लेखक किसी देशका हाल लिखना चाहता हो तो उसके हृदयमें उस देशके प्रति सहानुभूतिका होना आवश्यक प्रतीत होता है, अन्यथा वह वहाँका सच्चा चित्र खींच सकेगा इसमें सन्देह ही है। आन्तरिक सहानुभूतिके बिना वह उन लोगोंकी विशेषताओंकी तह तक नहीं पहुँच सकता और न उन्हें अच्छी तरह समझ ही सकता है जिनके विषयमें कुछ लिखनेका प्रयास वह कर रहा हो। जापानके सम्बन्धमें तो इस बातका भी बहुत कम अन्देशा है कि उसके प्रति प्रदर्शित की गयी सहानुभूति किसी समय औचित्यकी सीमाको पार कर जायगी। शेक्सपियरके सम्बन्धमें एक बार हैज़लिटने लिखा था कि "हम चाहे कितनी ही क़द्रदानी करें फिर भी हम उसकी प्रतिभाका उचितसे अधिक सम्मान शायद ही कभी कर सकते हों।"

श्री चमनलाल स्वयं एक बड़े देशभक्त भारतीय हैं। उन्होंने इस दृष्टिसे जापानका अध्ययन किया है कि हमारे देशवासी कहाँ तक उसकी अच्छी बातोंका अनुकरण कर सकते हैं। इसीसे इस पुस्तकको एक नैतिक महत्त्व भी प्राप्त हो गया है (जो इसकी तीसरी विशेषता है)।

मैं ऐसे व्यक्तिकी हैसियतसे जो दो बार भारतकी यात्रा कर चुका है और जिसे वह संसार भरमें सबसे अधिक मनोमोहक देश प्रतीत हुआ, साथ ही जापानके ऐसे विद्यार्थीकी हैसियतसे जो गत चालीस वर्षोंसे वहाँकी बातोंका अध्ययन करता रहा है, प्राच्य सभ्यताकी बहुमूल्य वस्तुओंसे लदी हुई इस पुस्तक रूपी नौकाकी सफल यात्राकी कामना करता हूँ जिससे जापानको उस बहुमूल्य ऋणकी आंशिक अदायगीका मौक़ा मिले जो

पुराने ज़मानेमें भारतसे अनेक बातें ग्रहण करनेके कारण उस पर चढ़ गया था। भारतके बिना जापान जापान नहीं हो सकता था, लेकिन आज भारतको चाहिये कि वह भी जापानका अनुसरण कर अपने आपको, और भी अधिक मात्रामें, अतीत गौरवके योग्य बनावे।

जेम्स ए. बी. शेरर

प्रस्तावना

राष्ट्रोंका उत्थान और पतन प्रारब्धके अनुसार ही होता है किन्तु मेरा विश्वास है कि प्रारब्धका बनाना-बिगाड़ना लोगोंके ही हाथमें है और ईश्वर भी उन्हींकी सहायता करता है जो अपनी मदद आप करना चाहते हैं।

किसी ज़मानेमें भारत संसारका सबसे श्रीसम्पन्न देश था किन्तु आज इसमें किसीको सन्देह नहीं कि इंग्लैण्डके "लगभग दो सौ वर्षोंके पैत्रिक शासन" के बाद भी वह दुनियाँका सबसे ग़रीब मुल्क है। इसके विपरीत जापान जो अपेक्षाकृत एक छोटासा द्वीप है और जो सौ वर्ष पहले तक दुनियाँके एक कोनेमें प्रायः अज्ञात अवस्थामें पड़ा हुआ था, आज संसारके सबसे बड़े देशोंमें गिना जाता है, यहाँतक कि भारतपर शासन करनेवाला शक्तिशाली ब्रिटेन भी उसकी मित्रताके लिए उत्सुक रहता है। जापानकी इस आश्चर्यजनक उन्नतिका रहस्य क्या है? इसी प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न मैंने इसमें किया है। आशा है, इससे मेरे वे देशबन्धु लाभ उठा सकेंगे जिन्हें एक स्वार्थी दल यह कहकर बहकाता रहा है कि "जापानकी उन्नतिका कारण सिर्फ उसकी मुद्रा येनका पतन, विदेशोंमें जापानी मालका स्वदेशसे भी कम मूल्यमें बेचा जाना तथा वाणिज्य-व्यवसायको सरकार द्वारा दी गयी आर्थिक सहायता है।"

थोड़ेसे आदमियोंको कुछ समयतक धोखेमें डाल रखना किसी भी व्यक्तिके लिए संभव हो सकता है किन्तु सब लोगोंकी आँखोंपर हमेशा पर्दा डाले रहना असम्भव है। यही वजह है कि अब खुद उन्हींके मुँहसे असली बात प्रकट होती जा रही है जो गत दो वर्षोंसे जापानकी व्यावसायिक उन्नतिकी तीव्रातितीव्र निन्दा करनेसे नहीं चूकते थे। जापानकी स्थिति देखकर लौटे हुए ब्रिटिश व्यवसायी दलकी रिपोर्टसे उन भाइयोंकी भी आँखें खुल जानी चाहिये जो अन्तर्राष्ट्रीय बातोंको केवल अंग्रेजोंकी ही आँखोंसे देखते और उन्हींके मस्तिष्कसे उनके सम्बन्धमें विचार किया करते हैं।

केवल सस्ती मुद्रा तथा सरकारकी आर्थिक सहायताके बलपर किसी भी देशके लिए सारे संसारको चुनौती दे सकना सम्भव नहीं। जापान-की उन्नतिका असली रहस्य, जहाँतक मैं समझ सका हूँ, इन बातोंमें छिपा हुआ है—

१. गहरी देशभक्ति
२. राष्ट्रकी एक भाषा
३. राष्ट्रका चरित्रबल
४. राष्ट्रीय अनुशासन
५. अनिवार्य शिक्षा
६. सम्राट्के प्रति भक्ति
७. दयामयी सरकार
८. सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा
९. ईमानदार और सन्तुष्ट मजदूर
१०. व्यवसायमें सहयोगकी सच्ची भावना
११. आविष्कारक बुद्धि तथा अपने-को स्थितिके अनुकूल बना लेने-की क्षमता
१२. सस्ती विद्युत् शक्ति
१३. गमनागमनके सस्ते साधन
१४. प्रत्येक घरमें रेडियोका होना
१५. सम्भ्रान्त महिला समाज
१६. सस्तेसे सस्ते अखबार
१७. प्रकृतिकी अनुकम्पा
१८. जानपर खेल जानेकी तत्परता

सम्भव है, कुछ बातें मेरी नजरसे छूट गयी हों, फिर भी मेरा ख्याल है कि अधिकतरका उल्लेख मैंने कर दिया है। वस्तुतः जापानकी उन्नतिका श्रेय उन सद्गुणोंको है जो वहाँके निवासियोंमें आमतौरसे दृष्टि-गोचर होते हैं। इन गुणोंके कारण ही अस्सी वर्षके भीतर वह एक प्रबल राष्ट्र बन गया है।

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मेरे बहुतसे देशभाई जिस तरह जापानी कपड़ोंको प्रोत्साहन देते हैं, उसी तरह वे देशभक्ति, अनुशासन, एकता, निर्भीकता और मातृभूमिके लिए प्राण होम देनेका सङ्कल्प, आदि उन गुणोंको भी अपनावें जो सुन्दर कपड़े और हमारी दैनिक आवश्यकताकी सैकड़ों चीजें तैयार करनेवाले जापानियोंमें पाये जाते हैं। जापानने किस तरह अपनी शक्ति बढ़ायी है, इसका समर्थन करना मेरा

काम नहीं। मैंने यह पुस्तक जापानकी किसी तरहकी मदद करनेके खयालसे नहीं लिखी है। मेरा अभीष्ट तो सिर्फ इतना ही है कि इससे मेरे देशभाइयोंको जापानकी सफलताका असली रहस्य समझनेमें सहायता मिले।

मैं न तो कोई लेखक हूँ और न इतिहासवेत्ता ही, वरन् अन्य पत्र-कारोंकी तरह दिन प्रतिदिनकी घटनाओंका एक सामान्य अध्येता मात्र हूँ। मेरी यह पुस्तक इसी दृष्टि से लिखी गयी है। मैंने तो सिर्फ उस मधुमक्खीका काम किया है जो भिन्न भिन्न फूलोंसे रसका संचय कर संसारको मधु प्रदान करती है। पुस्तकका ढाँचा मेरा है, जिसे मैंने बढ़ियासे बढ़िया उपलब्ध सामग्रीसे मण्डित करनेका प्रयत्न किया है।

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने अपनी पुस्तकमें जापानका उज्ज्वल चित्र ही प्रदर्शित किया है। मेरा उद्देश्य भारतीय पाठकोंके सामने जापानकी अच्छी अच्छी बातोंको रखना ही है, जिनका अनुकरण कर वे संसारके राष्ट्रोंमें भारतको उपयुक्त स्थान दिलानेकी कोशिश कर सकें। इसका यह आशय नहीं कि पृथ्वीपर जापान एक आदर्श स्वर्ग-भूमि है। वस्तुतः अन्य देशोंकी तरह उसमें भी दोष विद्यमान हैं। जैसे संसारमें कोई मनुष्य निर्दोष नहीं कहा जा सकता, वैसे ही हम किसी देशको भी सर्वथा दोषरहित नहीं समझ सकते। छिद्रान्वेषणका काम बहुत आसान है और यदि मिस मेयोकी तरह कोई लेखक, जो सभी चीज़ोंको एक खास चश्मेके भीतरसे देखता हो, जापान पहुँच जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि वह जापानकी भद्दीसे भद्दी तसवीर खींच सकता है। एक पुरानी कहावतके अनुसार दुष्टोंको सारी दुनियाँ ही दुष्टतापूर्ण और शैतानियतसे भरी हुई नज़र आती है। जापानके सम्बन्ध-में भी यह सच्ची उतरती है। ऐसे लोगोंसे भी मेरी भेंट हुई है जिन्हें जापानमें कोई भी अच्छी बात नज़र नहीं आती और जो उठते-बैठते उसकी निन्दा ही किया करते हैं। मुझे ऐसी मनोवृत्तिपर तरस आता

है। मैं जापानका या जापानी चीज़ोंका अन्धभक्त नहीं हूँ, किन्तु इस पुस्तकको लिखते समय मैंने सिर्फ यही लक्ष्य अपने सामने रखा है कि जापानकी उन सब प्रशंसनीय बातोंका वर्णन किया जाय, जिनसे हम अपने राष्ट्रके पुनर्निर्माणके कार्यमें सहायता प्राप्त कर सकें।

हम अपने देशमें राजतंत्रकी स्थापना करना नहीं चाहते, लेकिन इस बातको माननेसे कौन इनकार कर सकता है कि जापानकी अन्य अच्छी अच्छी बातोंका अनुसरण करनेसे हमारा देश एक महान् राष्ट्र बन जायगा। पाठक देखेंगे कि इस पुस्तककी एक विशेषता यह है कि इसमें राजनीतिक वादविवादको बिलकुल स्थान नहीं दिया गया है। अमेरिका या रूससे जापानका सम्बन्ध, मंचूरियाका प्रश्न तथा ऐसे ही अन्य जटिल विषयोंकी चर्चा मैंने जान बूझकर नहीं उठायी है, क्योंकि इसके लिए प्रत्येक स्थानपर जाकर सारी स्थितिका प्रत्यक्ष रूपसे अध्ययन करनेकी ज़रूरत है। इतना ही नहीं, यदि कोई व्यक्ति इन महत्वपूर्ण विषयोंका वर्णन करना ही चाहे तो उसके लिए उचित यह होगा कि वह जापानके आसपासके मुल्कोंमें खुद जाकर भ्रमण करे और वस्तु-स्थितिका ज्ञान प्राप्त करनेमें पर्याप्त समय लगावे। अमेरिका, चीन और मंचूकुओकी यात्रा मैं सरसरी तौरसे कर ज़रूर आया हूँ किन्तु केवल इतनेसे ही मुझे इस बातका साहस नहीं होता कि मैं पूर्वी एशियाके जटिल प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करूँ।

देशभाइयोंसे निवेदन

मैं अपने देशभाइयोंसे निवेदन करता हूँ कि वे एक क्षणके लिए इस बातपर गौर करें कि ३५ करोड़की आबादीवाला मुल्क होते हुए भी आज भारतकी गणना दुनियाँके महान् राष्ट्रोंमें क्यों नहीं की जाती। उसका अपना नामतक नहीं रह गया है। दुनियाँमें वह "ब्रिटिश इंडिया" के नाम से ही प्रसिद्ध है। सब अखबार 'अंग्रेजोंका उपनिवेश' कहकर ही उसका

उल्लेख करते हैं। क्या आपने कभी यह सोचनेका भी प्रयत्न किया है कि "ब्रिटिश भारत" यह नाम कितना हास्यास्पद और अपमानजनक है ? मैं स्वाधीनताके सम्बन्धमें कोई उपदेश नहीं देना चाहता, सिर्फ इतनी ही प्रार्थना करना चाहता हूँ कि हमारी दासता और अधःपतनका रहस्य क्या है, इसपर आप किञ्चित विचार करें। 'ईर्ष्या, अनुशासनकी कमी, स्वार्थसिद्धिके लिए देश-हितका बलिदान, तथा मृत्युका भय—यही चार हमारे पतनके मुख्य कारण हैं। मुझे यह लिखते दुःख होता है किन्तु कर्त्तव्यवश ऐसा करना ही पड़ता है कि हमारे कतिपय सच्चे देशभक्त नेता भी ईर्ष्या और स्वार्थपरताके जन्मजात कलंकसे नहीं बच सके हैं। हममेंसे कुछ लोग बहुत बड़ा आत्मत्याग करनेकी क्षमता रखते हैं किन्तु ईर्ष्याका परित्याग वे नहीं कर सकते।

हमारे शत्रु

अत्यन्त दुःख और लज्जाके साथ मैंने भारतकी ही तरह अन्य स्थानोंमें भी जहाँ जहाँ हम रहते हैं, वही दृश्य देखा है। जब तक हम ईर्ष्या, देश-द्रोह, शासन-भंग और भयसे अपना पीछा नहीं छुड़ा लेते, तब तक स्थिति सुधरनेकी कोई आशा नहीं की जा सकती। किन्तु अब मैं यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि भारतके नवयुवक इन बुराइयोंके खिलाफ विद्रोह कर रहे हैं। इसी तरह यह भी साफ ज़ाहिर है कि सर्वसाधारण-का मन भी अब उन स्वार्थी, देशद्रोही एवं कायर सम्प्रदायवादियोंसे फिर गया है, जो आपसमें फूट उत्पन्न करते और बात-बातमें धर्मकी झूठी दुहाई देकर देशकी गुलामीकी जञ्जीरको ज़्यादा मजबूत बनानेमें सहायक होते हैं। ये साम्प्रदायिक नेता, जो अपने दोषोंको छिपानेके लिए कभी कभी राष्ट्रीयताका जामा पहिन लिया करते हैं, भारतके सबसे बड़े दुश्मन हैं और हमें अपनी राजनीतिसे इन्हें निकाल बाहर करना ही होगा। खून-खच्चर, दंगा-फसाद और एकता-सम्मेलन हम बहुत कर चुके। अब

समय आ गया है कि हम सम्प्रदायवादियोंकी काररवाइयोंको रोक दें, चाहे उनमेंसे कोई कितना ही बड़ा क्यों न मालूम होता हो। साम्प्रदायिकता, ईर्ष्या, स्वार्थान्धता आदि दुर्गुण हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं। इनसे यदि हम छुटकारा पा जायँ तो हम शीघ्र अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

हमारा भविष्य उज्ज्वल है

मुझे पूरा विश्वास है कि भारतका हृदय अब भी स्वस्थ है—उसमें कोई खराबी नहीं आने पायी है—और हजारों युवक-युवतियोंने देशके लिए जो कुरबानियाँ की हैं, उनकी वजहसे काफी तादादमें ऐसे लोग उत्पन्न हो गये हैं जो तब तक दम न लेंगे जब तक लक्ष्य-सिद्धिमें सफलता नहीं मिल जाती। वह लक्ष्य स्पष्टसे स्पष्ट शब्दोंमें इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि भारतीयोंका शासन भारतीयों द्वारा और भारतीयोंके ही हितके लिए हो। हमें अपने ३५ करोड़ देशभाइयोंके लिए, जिनमेंसे चौथाईको कभी पेटभर खानेको भी नहीं मिलता, भोजन और वस्त्रका प्रबन्ध ही नहीं करना है, हमें अपनी वह पूर्व स्थिति भी प्राप्त करनी है जो उस समय विद्यमान थी जब कि वे लोग जो आज हमारी निन्दा कर रहे हैं खानाबदोश जातियोंकी तरह मारे मारे भटकते फिरते थे तथा सभ्यताके नामसे भी परिचित न थे, और जब कि जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें भारतको नेता बनने एवं संस्कृति, विज्ञान तथा धर्ममें संसारका गुरु कहलानेका श्रेय प्राप्त था। हमें केवल अपने लिए ही स्वतंत्रता नहीं प्राप्त करनी है, वरन् हमें खूनकी प्यासी दुनियाँको भी एक सँदेशा सुनाना है। वह सँदेशा संसारकी सबसे बड़ी विभूति महात्मा गांधीका अहिंसाका सँदेशा है। यह काम हम तब तक पूरा नहीं कर सकते जब तक हम गुलाम बने हुए हैं। पहले हमें अपनी गुलामी दूर करनी होगी। उसके बाद ही हम संसारकी सहायता करनेकी बात कर सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारा अतीत जैसा गौरवमय था, वैसा ही उज्ज्वल हमारा भविष्य भी होगा। इतना अवश्य है कि इसके लिए हमें आशा और साहस, सच्ची लगन और अनुशासन, ऐक्य एवं स्वाधीनता-प्राप्तिके दृढ़ सङ्कल्पकी आवश्यकता है। इनसे भी ज़्यादा ज़रूरत है आज़ादीकी क़ीमत चुकानेकी तत्परताकी।

स्वाधीनता-प्राप्तिका उपाय

यूरोपके एक प्रजातन्त्र राज्यके अध्यक्षने मुझसे एक बार कहा था कि "पैंतीस करोड़की आबादीवाले समूचे राष्ट्रकी आज़ादीके लिए यदि १० लाख आदमियोंको भी प्राणाहुति देनी पड़े तो यह कोई बड़ी बात नहीं है। स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए आत्मबलिदानके सिवा और कोई उपाय नहीं है।"

कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णने भी तो हमें यही शाश्वत् उपदेश दिया था। कितने दुःखकी बात है कि आज हमने उनके इस उपदेशको भुला दिया है। जापानने गीताके उस मन्त्रको आज भी सुरक्षित रखा है। प्रत्येक जापानी जानता है कि "जीवन अनन्त है और आत्माकी मृत्यु कभी नहीं होती।" यह गीताके उक्त मन्त्रका ही प्रभाव है कि जापान वाशिंगटनकी नौसन्धिको ठुकरा देनेका साहस कर सका। यह उसीकी महिमा है कि लन्दनके अनुदार दलवाले अखबार भी आज जापानसे मैत्री बनाये रखनेकी आकांक्षा प्रकट करनेको लाचार हो रहे हैं।

जिस देशमें श्रीकृष्ण भगवान्ने जन्म लिया था, क्या उस देशवाले उनके उस उपदेशका अनुसरण न करेंगे, जिसे जापानियोंने आज शताब्दियों बाद भी सुरक्षित रखा है?

टोकियो,
२५ फरवरी १९३५

चमनलाल

विषय-सूची

चित्रसूची

जापान-रहस्य

पहला अध्याय

स्वदेश-भक्ति

"संसार जानता है कि जापानी जितने स्वदेश-भक्त होते हैं उतने कोई दूसरे लोग नहीं होते। परन्तु अपने देशमें रहते हुए मैंने उनकी देशभक्तिको जितना आश्चर्यजनक समझा था, वह उससे भी आगे बढ़ी हुई है। जब उनके देशकी इज्ज़त और भलाईका सवाल उठता है तो वे अपने प्राणका मूल्य एक परसे भी हलका समझते हैं और मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि जिन गुणोंने जापानको वैभवशाली देश बनाया है उनमेंसे एक यह भी है।"

—एक विदेशी राजनीतिज्ञ

आजके संसारमें जापान और जर्मनी दो ऐसे देश हैं जहाँके निवासी सबसे अधिक देश-भक्त हैं। दुनियाके अन्य लोग उनकी देशभक्तिकी चाहे कितनी ही बुराई करें और उसे संकुचित राष्ट्रीयताके नामसे पुकारें, किन्तु सच बात तो यह है कि यदि इनमें इतनी ज़बरदस्त देश-भक्ति न होती तो ये दोनों ही देश नष्ट हो गये होते।

यदि भारत स्वतन्त्र होना चाहता है तो उसे अपने पूर्वीय भाई जापानसे सबक़ लेना होगा, क्योंकि दोनों देशोंकी बहुत-सी बातोंमें समानता है। डाक्टर शेररने कहा है कि "भारत बिना जापान जापान नहीं हो सकता था।" इसी तरह मेरा खयाल

है कि भारत तबतक स्वतन्त्र नहीं हो सकता जबतक वह जापानसे देश-भक्तिकी सच्ची भावना ग्रहण नहीं करता।

देश-भक्ति जुर्म नहीं है

देश-भक्ति कोई जुर्म नहीं है, सिवाय उनकी आँखोंमें जो स्वार्थवश उसे अपने लिए अहितकारी मानते हैं। अन्तर्राष्ट्रीयता-का जनक सोवियट शासन भी देशभक्तिकी आवश्यकता अनु-भव करता है और जो राष्ट्रीय भाव एक समय रूसमें गैरक़ानूनी करार दिये गये थे, उन्हें आज शासन द्वारा उत्साहित किया जाता है, जिससे लोग देशभक्ति सीखें और अपनी मातृ-भूमिके प्रति अनुराग रखें।

हमारे उन भारतीय अदूर-दर्शी विश्वबंधुत्ववादियोंको इससे सबक़ सीखना चाहिए जो स्वदेशी आन्दोलन और राष्ट्रीय कार्योंको कोसनेमें कभी नहीं थकते। पण्डित जवाहरलाल नेहरू उन बहुत थोड़ेसे समाजवादियोंमें हैं जो इस बातको पहचानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीयताके पहले राष्ट्रीयताकी ज़रूरत है और जो लोग अपनेको उनका अनुयायी कहते हैं उन्हें उनके द्वारा की गयी अन्तर्राष्ट्रीयताकी परिभाषापर भी ध्यान देना चाहिए। जवाहरलालजी सच्ची और निःस्वार्थ देशभक्तिकी मूर्ति हैं और वे वास्तविक राष्ट्रीयताके सच्चे पथ-प्रदर्शक हैं। उनपर पण्डितों और मौलानाओं अथवा भारतकी उन्नतिमें बाधा डालनेवाली हिन्दू-महासभाओं तथा मुस्लिम-संघोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जापानियोंकी देश-भक्ति

जापानमें थोड़े ही दिन रहकर प्रत्येक आगन्तुक देश-भक्ति-की सच्ची भावनासे प्रभावित हो उठता है। भारतके सरकारी

कर्मचारी भी वहाँ जानेपर उनकी देश-भक्तिके चमत्कारका अनुभव किये बिना नहीं रह सके।

जापानमें हम कभी किसी साम्प्रदायिक अथवा मज़हबी संस्थाको राजनीतिमें हस्तक्षेप करते हुए नहीं देखते, यद्यपि वहाँपर लगभग ५०० सम्प्रदाय हैं। मज़हबी बातें राजनीतिसे अलग रखी जाती हैं और सरकारसे सहायता पानेवाली अथवा सरकार द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थाओंसे मज़हबका कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरे यहाँ कागजपत्र टाइप करनेका काम करनेवाली जापानी महिलाने, जो स्त्रियोंके विद्यालयकी स्नातिका हैं, मुझसे एक दिन कहा कि मेरे पिता बौद्ध हैं, मेरी बहिन ईसाई हैं और मेरे भाई शिन्तो (अर्थात् जापानके राज-धर्मके अनुयायी) हैं पर मैं स्वयं ईश्वर या मज़हबमें कोई विश्वास नहीं रखती, फिर भी [illegible] [illegible] कि भारतमें भी लोग इसी तरह क्यों नहीं रहते? उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि भारतमें साम्प्रदायिक नेताओंने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए मज़हबकी बड़ी दुर्दशा कर रखी है और धर्मान्धोंको इतनी बुद्धि नहीं है कि इन नेताओंके नीच उद्देश्यों-को समझ सकें। इन नेताओंका वास्तविक मज़हब अपने विदेशी शासकोंकी खुशामद करना मात्र है। अब जापानियोंकी देश-भक्तिका हाल सुनिए। जापानियोंमें इज्ज़तका बड़ा ख़याल रहता है और उनके हृदयमें देशके प्रति प्रगाढ़ भक्ति रहती है जो विभिन्न रूपोंमें देख पड़ती है, जिनमेंसे कुछको देखकर तो विदेशियोंको बहुत आश्चर्य होता है। वास्तवमें जापानी देश-भक्ति एक प्रकारसे भक्तिकी पराकाष्ठा है। यही कारण है कि जापानकी प्रत्येक नीति अत्यधिक राष्ट्रीयतासे ओत-प्रोत

रहती है। आत्मविकासमें तथा सर्वसाधारणके सामान्य उद्देश्यों-की सिद्धि और उच्चतम आदर्शोंको प्राप्त करनेमें देश-भक्ति तथा राष्ट्रीयताने साम्राज्यकी अच्छी सहायता की है।

कुछ सुन्दर उदाहरण

जापानियोंकी देशभक्तिके बहुतसे उदाहरण हैं। देश और कर्तव्यके लिए बलिदान होनेकी घटनाएँ वहाँ आये दिन होती रहती हैं। किसी सिद्धान्त, मित्र, प्रेमी या देशके प्रति अनु-रागके कारण अथवा कर्त्तव्य-बुद्धिसे प्रेरित होकर 'हाराकिरी' या आत्महत्या करनेके समाचार संवादपत्रोंमें अक्सर छपते ही रहते हैं।

जब युद्ध-मन्त्री जनरल हयाशीने यह सुना कि उनके किसी दत्तक छोटे भाईको टोकियो नगरके उपसभापतिकी हैसियतमें अमानतकी ख़यानतमें सज़ा हुई है, तब उन्होंने फौरन अपना इस्तीफ़ा भेज दिया। उन्हें इस्तीफ़ा वापस लेनेपर राज़ी करनेमें बड़ी ही दिक्क़त हुई यद्यपि गवर्नमेण्ट और जनता दोनोंने ही उनके भाईके जुर्म और उनके खुदके राजकीय कर्तव्योंमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं माना। उन्होंने यह कहा कि अपने भाईके शिक्षणकी नैतिक जिम्मेदारी मेरे ऊपर है, इस कारण मुझे भी भाईके जुर्मकी सजा भोगनी चाहिए।

जनरल नोगीका उत्कृष्ट आत्मत्याग

रूस-जापान-युद्धमें प्रसिद्धि पाये हुए सेनापति जनरल नोगी और उनकी स्त्रीने परस्पर निश्चय करके आत्महत्या की थी, क्योंकि सेनापतिको यह ख़याल हुआ कि पोर्ट आर्थरकी विजयमें मैंने अवश्य ही सम्राट्के कितने ही प्रजाजनोंके अमूल्य प्राणोंका

नाश कराया है। इसी तरह एक युवक सेनानायककी स्त्रीने, जब उसके पतिको १९३१ की घटनाके सम्बन्धमें मंचूरिया जानेकी आज्ञा हुई, आत्महत्या कर ली। उसने कारण यह बतलाया कि मुझे देशके प्रति इतनी भक्ति है कि मैं यह नहीं चाहती कि मेरे पतिका ध्यान अपने कर्तव्य और मेरी ममतामें विभक्त रहे। उसने यह विचार किया कि मेरा पति जब घरकी सब चिन्ताओंसे मुक्त रहेगा तो युद्धमें अच्छी तरहसे लड़ सकेगा। देवी, धन्य है तुम्हारा यह आत्मत्याग!

जापानियोंकी देशभक्ति और आत्मत्यागके सुन्दरसे सुन्दर उदाहरण इतनी अधिकतासे पाये जाते हैं कि मोटी मोटी जिल्दें उनपर लिखी जा सकती हैं, परन्तु मैं केवल एक और कथा लिखकर यह अध्याय समाप्त करूँगा। मुझे आशा है कि वह युवा और वृद्ध सभीको उत्साहित करेगी।

मनुष्यके बम-गोले*

तीन मनुष्योंके बम-गोले—यह कैसी बात है? शांघाईके संकटके समय जापानी सेनाके कुरूमे विभागके तीन मज़दूरोंकी बड़ी चर्चा हुई थी। इनकी वीरगतिका स्मरण हर एक जापानी सदा करेगा। आधुनिक जापानमें कोई ऐसी घटना नहीं हुई है जिससे देशको इतना उत्साह मिला हो जितना इनकी उत्कृष्ट देशभक्तिसे।

२२ फ़रवरी सन् १९३२ के प्रातःकाल जब बड़ी ठण्ढ पड़ रही थी, तीन द्वितीय श्रेणीके साधारण सैनिकोंने अपने प्राण इस वास्ते दिये जिससे कि जापानी सेना सिआओ-हुंगचेनके

* यह वृत्तान्त ओसाका मैनीचीकी वार्षिक संख्यासे लिया गया है।

चीनी गढ़के सामने बढ़ सकें। इन तीनों आदमियोंके नाम ताकेजी एशिता, जोसाबुरो कितागावा और इनोशूके साकूए थे। ये तीनों बहादुर सिपाही १२ फुट लम्बी एक नली लेकर, जिसमें बारूद भरी हुई थी और जिसमें पलीता लगा दिया गया था, मानो स्वयं बमका रूप धारण कर, चीनियोंकी तरफ़से लगातार आती हुई गोलियोंकी कुछ भी परवा न करते हुए तारकी चहारदीवारीपर कूद पड़े क्योंकि इसे तोड़नेका कोई दूसरा तरीक़ा न था। बम फूटा, जिससे शत्रुकी दीवारमें बहुत बड़ा छेद हो गया। इस मार्गसे जापानी सिपाही भीतर घुस पड़े और उन्होंने चीनियोंको भगा दिया। परन्तु ये तीनों बहादुर फिर कभी न लौटे।

कप्तान तमाकी सत्सुवातासे, जो उस टुकड़ीके नायक थे जिसमें ये तीनों काम करते थे, इस बहादुरीका सर्वप्रथम विवरण संसारको दिया। उन्होंने माईचियाचाईके सेना-केन्द्र-पर इस हृदय-ग्राही घटनाके होनेके थोड़े ही समय बाद पूरा हाल लिख रखा था। कप्तानका विवरण नीचे दिया जाता है।

कुरूमे सेना-दलको २२ फ़रवरीको यह हुक्म मिला कि ५½ बजे प्रातःकाल मिआओ-हुंगचेनपर आक्रमण कर उसे अपने अधीन करो। सेना-नायक होनेकी हैसियतसे मैंने एक दिन पहले यह हुक्म दिया कि तारके घेरेमें रास्ते बनाये जायँ जिससे चीनी ट्रेञ्चोंकी तरफ जापानी सेना बढ़ सके। बाँसके बम बनाये गये जिनका व्यास ४ इञ्च और लम्बाई १२ फुट थी। इनमें बारूद भरकर फ्यूज़ लगा दिया गया। स्वयं-सेवकोंके दो दल संघटित किये गये और तारके घेरेको तोड़नेका काम उनके सुपुर्द किया गया। पहले दलने ३० फुट चौड़ा एक रास्ता कँटीले तारोंको हटाकर बनाया। यह बाईं तरफ



'मनुष्योंके बमगोले'

था । चीनका दल सफल नहीं हुआ । प्रातःकालके समय उन्होंने अपनी तैयारी की और शत्रुकी तरफ़ रेंगते रेंगते चले । तारके घेरेके पीछे कई गज़ चौड़ी खाई थी और उसके पीछे चीनी ट्रेंच या गड्ढे थे जो कि मज़बूत दीवारोंसे सुरक्षित किये गये थे । वहाँपर जापानियोंको गोलीसे मारनेके लिए सिपाही तैनात थे और मशीनगनोंसे लगातार आग बरसायी जा रही थी । तारको उड़ानेके तीन प्रयत्न विफल हुए । बाँसकी नलियाँ लेकर जो आदमी जाते थे वे अपनी जगह तक पहुँचनेके पहले ही जख़्मी हो जाते थे या मार डाले जाते थे। बमको ठीक स्थानपर रखकर पलीता लगानेका समय ही उन्हें नहीं मिल पाता था ।

कोई दूसरा उपाय न देखकर एशिता, कितागावा और साकूए नामक तीन नवयुवकोंने स्वयं ही इच्छा प्रकट की कि हम पहलेसे ही पलीता लगाकर तारकी ओर जायँ जिससे जख़्मी होने या मारे जानेपर भी घेरा तोड़ा जा सके ।

समय बहुत थोड़ा था । सेनाके बढ़नेका समय आ गया था । सेनाकी और विशेषकर इस दलकी इज़्ज़तका प्रश्न उपस्थित था, क्योंकि बिना घेरेमें रास्ता बनाये चीनियोंपर सफलताके साथ आक्रमण नहीं किया जा सकता था । पौ फटते ही वे ट्रेंचों (खाइयों) मेंसे निकल कर चीनियोंकी तरफ चले । जान हथेलीपर लेकर वे आगे बढ़ते गये । अन्तमें तारके घेरेपर, बारूदकी नली लिये हुए—जिसमें पलीता लगाया हुआ था—जान छोड़कर कूद पड़े । ज्योंही वे अपने अभीष्ट स्थानपर पहुँचे और नली उनके हाथसे छूटी, त्योंही एक बड़ी भीषण आवाज़ हुई । तारके साथ साथ वे तीनों भी हवामें टुकड़े टुकड़े होकर उड़ गये । परन्तु उनकी मौत बेकार न हुई । उनके आत्मोत्सर्गसे २० फुट चौड़ा रास्ता खुल गया जिसमेंसे जापानी सेनाने

बढ़कर विजय पायी। इन तीन मनुष्य रूपी बमोंने अपने जीवित शरीरों द्वारा आगेकी रुकावटोंको दूर किया। यही भाव है जिसने जापानी सेनाको अजेय बना दिया है। यही हमारी एक विशेषता है, जिसका हम कितना ही अभिमान क्यों न करें थोड़ा है।

इन बहादुरोंके कार्यने देशवासियोंके हृदयपर गहरा प्रभाव डाला। गोलियोंकी वर्षाके सामने इनकी यह वीरता जापानी सैनिकोंके सच्चे भावको प्रदर्शित करती है। जब प्रारम्भिक उत्तेजना समाप्त हो गयी और इस घटनासे उत्पन्न हलचल कुछ शान्त हुई, तब इन शहीदोंके घरवालोंकी तरफ़ राष्ट्रका ध्यान गया। पहले यहाँपर सेना-विभागमें चिरकालसे यह नियम चला आ रहा था कि किसी विशेष विषयके लिए चन्दा न लिया जाय। इस समय इस नियमका भंग होने दिया गया। जापानमें इस घटनाके समाचार पढ़नेके दिन सायंकालतक सेनाविभागके पास २४७० येनका चंदा पहुँच गया। 'ओसाका मैनीची' नामके समाचारपत्रने हर एकके घरवालोंको एक एक हज़ार येन दिया। हीरोशिमा प्रदेशके एक ग्राम शिक्षकने कहा कि मैं तीनों सिपाहियोंके बच्चोंको गोद ले लूँगा और यह भी कहा कि दो लाख येनकी मेरी सारी जायदाद इनकी शिक्षापर खर्च की जायगी।

शांघाईसे यह ख़बर मिली कि इस वीरतापूर्ण कार्यके कई दिन पीछे, जापानी विजयके बाद, तीन टूटे हुए हाथ मिले जो इतने जल गये थे कि उन्हें पहिचानना मुश्किल था। सारी सेना-की टुकड़ीने इनकी पूजा की और मनुष्यरूपी बमोंके इन टुकड़ोंके चारों तरफ़ खड़े होकर सेनापति शिमामोतोके अधिनायकत्वमें विशेष समारोहके साथ इस कार्यवाहीकी प्रशंसा की गयी।

सम्राट् द्वारा सम्मान-प्रदर्शन

इन बहादुरोंके कार्यका तफ़सीलवार हाल सम्राट्के पास भेजा गया। शहीदोंकी माताओंको सम्राट्की ओरसे आर्थिक सहायता दी गयी। 'ओसाका मैनीची' और 'टोकियो नीची नीची' नामके दो पत्रोंके प्रबन्धसे तीनों सैनिकोंकी माताएँ अपने अपने गाँवोंसे टोकियो बुलायी गयीं। सेना मन्त्री जनरल सदाओ अराकीने इन्हें अपना मेहमान बनाया। उस अवसरपर उन्होंने कहा 'आपके पुत्रोंकी बहादुरीका समाचार सम्राट्को दिया जा चुका है। सचमुच यह एक विशेष सम्मानकी बात है। उनके सुन्दर कार्यकी पर्याप्त प्रशंसा शब्दोंमें नहीं की जा सकती। जापानियोंके बुशीदो भावके वे सच्चे उदाहरण हैं। जिन माताओंने ऐसे पुत्रोंको उत्पन्न किया है वे धन्य हैं।'

उसी समय ओसाकाकी बुनराकू नामक नाटक-मण्डलीने इन तीनों वीरोंको पात्र बनाकर एक आधुनिक नाटकका अभिनय किया। यद्यपि इस प्रसिद्ध और श्रेष्ठ नाटक-मण्डलीकी परम्परा थी कि वह केवल पुरातन और पौराणिक नाटकोंका ही अभिनय किया करती थी, फिर भी इस विशेष अवसरपर उसने एक अपवाद किया। जब २६ अप्रैल सन् १९३२ को जापानमें इन तीनों सिपाहियोंकी राख लायी गयी, उस समय जहाँ भी वह ले जायी गयी वहाँ वहाँ नागरिकोंने इन वीरोंकी आत्माओंके प्रति बड़े सम्मानसे श्रद्धांजलि अर्पित की। किओतोमें निशी होंगवानजी मन्दिरमें जब इनका शरीरावशेष रखा गया तब सहस्रों नर-नारियोंने उसकी वंदना की।

इस वीर कर्मके बाद ही जापानके बच्चे अपने खेलमें इसकी नक़ल करते थे। सभी खेलके मैदानोंमें बच्चे नक़ली

छोटे छोटे बम लेकर इन तीन मनुष्य रूपी बमोंका खेल खेलते थे।

इस घटनापर कितने ही गीत लिखे गये, कितनी ही कविताएँ बनायी गयीं, ग्रामोफ़ोनके बहुतसे रेकार्ड खरीदे गये जिससे साबित होता है कि इस घटनाने जनताके हृदयको कितना आकर्षित किया था। कितने ही जापानी अब भी इन गीतोंको गाते हैं और इनका कुछ अंश तो सभी जानते हैं।

देश-भक्तिका केन्द्र घर है

जो कोई आजके जापानको समझनेका यत्न करना चाहता है उसके मनमें यह देखकर अवश्य व्यामोह होता है कि इस देशने यूरोपीय यन्त्रप्रधान सभ्यताको स्वीकार कर लिया है और इसकी उन्नति उसीके अनुसार हो रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज वहाँ प्राचीन और अर्वाचीन, स्वदेशी और विदेशी तथा परम्परागत विचारों और नयी वस्तुओंकी माँगके बीच एक अदृष्ट संघर्ष चल रहा है। यदि जापान अर्वाचीन प्रकारोंके सामने भी अपनी प्राचीन संस्कृतिको बनाये हुए है तो यह उसकी आन्तरिक शक्ति तथा जातीय विशेषताका द्योतक है। वहाँका कौटुम्बिक जीवन ही उसका सबसे बड़ा रक्षक है।

यद्यपि जापानियोंने सब तरहकी आधुनिक सुविधाओंका ग्रहण किया है, तथापि उनके घरोंपर विदेशी प्रभाव बहुत कम पड़ा है। जापानमें किसी घरमें चले जाइये—चाहे वह किसी बड़े व्यवसायीका महल हो या किसी साधारणसे साधारण मज़दूरकी कुटिया—आप देखेंगे कि वहाँ सभी पुरानी परम्पराएँ और देशी रस्में पहलेकी ही तरह सुरक्षित हैं। उनकी व्यक्तिगत शिष्टता, उनकी प्रशंसनीय सादगी, साधारण प्रकारकी सजावट

और आडंबरहीन शान्त व्यवस्था, यह सब घरमें सुरक्षित है। वहाँ इस बातका बड़ा खयाल रखा जाता है कि घरकी प्रारम्भिक शिक्षासे ही बहुत छोटी उमरमें लोग इन सब बातोंको अपने जीवनका अंग बनावें, क्योंकि इसीसे वे अपने व्यक्तित्वको बचा सके हैं।

यद्यपि जीवनके सभी अंगोंमें आज जापानी लोग उन्नत हैं तथापि वे पुरातन कालके ही तौर-तरीके, विनय-व्यवहार बनाये हुए हैं। यह बात केवल वहाँके लोगोंको देखकर ही साबित नहीं होती वरन् सभी संस्थाओं और सभी सार्वजनिक स्थानोंमें भी देख पड़ती है। इन गुणोंसे वे मितव्ययी हो सके हैं, जिसके कारण वे सफलतापूर्वक दूसरोंसे सभी बड़े बड़े व्यवसायोंमें बढ़ा-ऊपरी कर सके हैं और अपनी शक्ति एवं सम्पत्ति बढ़ा सके हैं।

सम्भवतः इन्हीं संस्कारोंको युवकोंके मनमें डालने और सदाके लिए पुष्ट करनेके विचारसे पाठशालाके विद्यार्थियोंके लिए वर्दी पहिनना आवश्यक रखा गया है। इस तरह माँ-बाप भिन्न भिन्न प्रकारके महँगे और भड़कीले वस्त्रोंको बनवानेके खर्चसे भी बचते हैं। पाठ्य-पुस्तकोंके सम्बन्धमें भी सादगीसे काम लिया जाता है। किताबें सस्ती होती हैं और गरीबसे गरीब कुटुम्ब भी अपने बच्चोंके लिए उन्हें खरीद सकता है। जो लोग अपने बच्चोंको स्कूल भेजते हैं उनके सामने पुस्तकोंके खर्चकी समस्या नहीं होती। जापानके इस उदाहरणसे हम अवश्य लाभ उठा सकते हैं।

आत्म-सम्मानकी गहरी भावना, आत्मत्याग, आत्मनियन्त्रण और वास्तविक देश-भक्ति—यही बातें आज जापानके गौरवकी आधारभूत हैं। यही व्यक्तिगत गुण उन देशोंके लोगोंके लिए

भी आवश्यक हैं जो उन्नति चाहते हैं। हम भारतीयोंको इनकी बड़ी आवश्यकता है। यदि हम इन्हें अपना सकें और अपने अन्य गुण भी बनाये रख सकें तो इनसे हम बलवान् और बड़े हो सकेंगे, अन्यथा हमारा भविष्य अन्धकारमय ही बने रहनेकी सम्भावना है।

दूसरा अध्याय

सम्राट्के प्रति अतिभक्ति

जापानी राष्ट्रका आधारस्तम्भ सम्राट्के प्रति अनन्य भक्ति ही है। जापानियोंकी देशभक्तिके अन्तर्गत क्या मूल भाव है, जापानमें ऐसी कौन सी शक्ति है कि वह राष्ट्रसंघको भी चुनौती दे सकता है? इन प्रश्नोंका उत्तर मैं इस अध्यायमें देना चाहता हूँ।

क्या कारण है कि जापानमें इतनी एकता है और चीनमें इतनी अनेकता? यह प्रश्न पूर्व देशोंमें आये हुए सभी यात्री पूछते हैं। चीन अथवा रूसके विरुद्ध छोटेसे जापानने युद्ध करनेका कैसे साहस किया, जब कि ये देश इससे इतने बड़े थे और इनकी जनसंख्या भी बहुत अधिक थी? चीनी लोग हमेशा यही आदर्श रखते आये हैं कि चीन देश चीनियोंके लिए ही है, इससे स्पष्ट है कि उनकी पराजयका कारण भावुकताका अभाव न था। अन्तर यह है कि जापानमें लोग सम्राट्की बड़ी उपासना करते हैं। राष्ट्रके प्रति भक्तिको ही प्रायः देशभक्ति कहते हैं। यह भक्ति किस प्रकारसे

सम्पादित की जाय, यह आवश्यकता और जनसाधारणके संस्कारोंपर निर्भर करता है। चाहे किसी राष्ट्रकी संस्कृति कुछ भी हो, आत्मत्यागकी आवश्यकता सर्वत्र रही है। व्यक्तिको समष्टिकी भलाईके सामने सिर झुकाना ही पड़ता है। राष्ट्रीयताके किसी चिह्नकी पूजाको भी कहीं कहीं देशभक्ति कहते हैं। राष्ट्रीय झण्डेके चारों तरफ़ इकट्ठा होकर उसकी पूजा करनेमें ही कुछ लोग देशभक्तिका सार समझते हैं। प्रत्येक जापानीको जन्मसे ही यह सिखलाया जाता है कि देशभक्ति और सम्राट्के चारों तरफ इकट्ठा होना एक ही बात है, इसलिए उसके वास्ते सम्राट्की पूजा करना ही धर्म है। इस लेखमें मैं देशभक्ति और सम्राट-भक्तिमें बहुत अन्तर नहीं कर सकूँगा, यद्यपि मैं जानता हूँ कि देशभक्ति अधिक व्यापक शब्द है और सम्राट्-भक्ति लोगोंको एकत्र करनेका साधन है।

किस प्रकारसे सम्राट्-भक्तिका भाव देशमें अधिकाधिक व्याप्त होता गया, यह समझना ज़रूरी है। शताब्दियोंके विकासके बाद मनुष्य अपनेको जन्तुओंके समुदायोंके परे पहुँचा सका है और अपना व्यक्तित्व स्थापित कर पाया है। पहले वह अपने घरमें बच्चेके रूपमें रहता है और प्रेमके नाम उसमें आज्ञा माननेका भाव पैदा होता है। एक समुदायके सदस्यकी हैसियतसे उसमें आत्मोन्नतिकी अभिलाषा जाग्रत होती है और कार्य करनेकी प्रवृत्ति तथा आत्मनिर्भरताके भावका विकास होता है। राष्ट्रीय जीवनमें यदि उसे कोई ऐसा नेता मिल जाय जो लोकसेवामें तत्पर रहता हो तो उससे वह आत्मत्याग और देशभक्तिके भावोंको सीखता है। जब ऐतिहासिक दृष्टिसे राष्ट्रीय जीवनका अध्ययन होने लगता है, उस समय पुरातन तथा मृत वीरोंकी जीवनीसे उसमें आदर्शवाद अंकुरित होता है और ईप्सित

आदर्शोंकी प्राप्तिके लिए वह नियम-संयम सीखता है। जब वह दूसरे देशोंके इतिहास और आदर्शोंके सम्पर्कमें आता है, तब संसार भरका नागरिक होनेकी अभिलाषा करने लगता है। इस प्रकारके राजनीतिक जीवनके विकासमें उसको यह पता लगता है कि थोड़ेसे विशेष पुरुषोंकी आराधनामें साधारण मनुष्योंकी उपेक्षा की जाती है और देश-देशान्तरके मृत वीरों-की जीवनी पढ़कर उसकी यह इच्छा होती है कि मनुष्यमात्रके उद्धारकी अभिलाषासे जो महान् पुरुष कार्य कर गये हैं उन्हीं-का अनुसरण हम भी कर सकें।

सम्राट्भक्तिकी प्रगति

सन् १८६० तक जापानका सम्राट् नाममात्रका सम्राट था। वास्तविक राज्याधिकारमें उसका कोई हाथ नहीं था। शोगुन अर्थात् प्रधान मन्त्रीके ही हाथमें सारी शक्ति थी। हमारे यहाँ महाराष्ट्रके इतिहासमें पेशवाओंका जो पद था, वही जापानमें शोगुनका था। वर्त्तमान सम्राट्के पितामह सम्राट् मीजीने शोगुनोंके राज्यका अन्त किया और सम्राट्का अधिकार फिरसे जारी किया। यही कारण है कि इस समयको जापानके इतिहासमें 'पुनः प्रतिष्ठा' का समय मानते हैं।

सत्तर वर्ष पहले सम्राट्की उपासना जापानियोंके लिए एक नया आदर्श था, क्योंकि 'पुनः प्रतिष्ठा' के पूर्व व्यापक राष्ट्रीय भावकी जाग्रति नहीं हुई थी। उस समय सारा राष्ट्र दो बड़े दलोंमें बँटा था। एक शोगुनोंका अनुयायी था और दूसरा राजवंशका। शोगुनके अनुयायी राजाको पृथ्वीपर देवताओंका प्रतिनिधि मात्र मानते थे पर राजवंशके अनुयायी उन्हें साक्षात् देवमूर्त्ति ही मानते थे। इन दो दलोंके कई उपदल थे।

शोगुनवादियोंका प्रत्येक उपदल अपने स्वार्थके सामने देश या अन्य लोगोंके हितकी चिन्ता नहीं करता था। प्रत्येक दल दूसरे दलसे लड़ाई करनेको हमेशा तैयार रहता था। नये शोगुन अथवा नये राजाके पदग्रहणके समय तो संघर्ष अवश्य ही होता था। जो अधिकारके स्थानपर नहीं थे उन्हें यह आशा लगी रहती थी कि किसी दिन हमारा प्रतिनिधि अधिकारके स्थान-पर पहुँचकर दृढ़तापूर्वक जापानका शासन कर सकेगा।

जापान और भारत

इस समय जापानकी हालत वैसी ही अस्तव्यस्त हो रही थी, जैसी यूरोपियनोंके आनेके ठीक पहले भारतकी थी। अपनी नासमझीके कारण भारतीय राजाओंने तो ब्रिटिश भेद-नीतिके जालमें फँसकर भारतको अपने हाथसे खो दिया, किन्तु जापानके दोनों पक्षोंने अमेरिकाके कमोडोर पेरीके आगमनसे शिक्षा ग्रहण की और भावी खतरेका आभास पाकर अपने मतभेदोंको भुला दिया। उक्त विदेशीके आगमनसे जापानी नेताओंको नूतन दृष्टि, नूतन सामाजिक चेतनता, प्राप्त हुई और कुछ समयके बाद उन्होंने देखा कि जापानको एकताके सूत्रमें बाँधनेके लिए हमें एक सामान्य केन्द्रकी, ऐसे व्यक्तिकी जिससे सब लोग आकर्षित हो सकें, आवश्यकता है। सामन्तोंने अपनी अपनी महत्त्वाकांक्षाओंका परित्याग कर दिया और वे राष्ट्रीय जीवनके इस नये केन्द्रके चारों तरफ इकट्ठे हो गये। यह विचार नया था, इस वजहसे कुछ लेखकोंका कथन है कि यह पुरोहितों तथा नेताओंके दिमागकी उपज था, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि सम्राट्की देववत् पूजा और एक तरह-की राष्ट्रीय भावना पहलेसे प्रचलित थी। नये नेताओंने उन्हीं

पुराने आदर्शोंका नूतन अर्थ लगाया और देशवासियोंको एकताके सूत्रमें बाँधनेका प्रयत्न किया।

सम्राट-पूजाकी भावनासे लाभ

संयुक्त जापान संसारके बड़े बड़े राष्ट्रोंकी पंक्तिमें स्थान प्राप्त करनेके लिए तैयारी करता रहा है, परिणाम स्वरूप अब पञ्च महाशक्तियोंमें उसकी गणना की जाने लगी है। सम्राट्को केन्द्र-बिन्दु मानकर उसके चारो ओर एकत्र होनेकी प्रवृत्तिने पश्चिमी सभ्यताका अंगीकार करनेकी कठिन परीक्षाके समय वहाँवालोंको विभक्त होनेसे बचा रखा और उनमें ज्यादा उथल-पुथल नहीं होने दी। संसारके इतिहासमें यह एक अभूतपूर्व घटना है। मिश्र ऐसा राष्ट्र है जिसकी प्राचीन महत्ता अब नहीं रह गयी। भारतने ब्रिटेनको अपना पथप्रदर्शक बन जाने दिया, जिससे उसकी राष्ट्रीय चेतना लुप्त हो गयी। इतना अवश्य है कि देशके सौभाग्यसे नूतन युगके निर्माता महात्मा गांधी भारतको पुनः प्राचीन आध्यात्मिकताकी ओर ले जानेका प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे वह संसारके राष्ट्रोंमें अपना उचित स्थान ग्रहण कर सके। चीनने अपनी प्राचीन बातोंका परित्याग कर दिया है, इसीसे वह दुर्दशाग्रस्त हो रहा है। उसने अपने मन्दिरोंका तो ध्वंस कर डाला, किन्तु अभीतक ऐसी कोई बात ग्रहण नहीं की जिसे केन्द्र मान कर वह राष्ट्रीय जाग्रतिके पथपर अग्रसर हो सकता। यदि वह कोई ऐसा मसीहा उत्पन्न कर सके जो प्राचीन कालकी अच्छी अच्छी बातोंपर सर्वसाधारणका ध्यान जमा कर उसे (चीनको) संसारके जाग्रत राष्ट्रोंके साथ सहयोग करने योग्य बना दे, तो उसका भविष्य आशामय हो सकता है।

सम्राट्-पूजाकी भावनासे जापान निवासी उसी तरह अनुप्राणित हैं, जिस तरह लोकतंत्रकी भावनासे अमेरिका-निवासी और राष्ट्रीयतासे अंग्रेज लोग। फर्क सिर्फ इतना ही है कि संरक्षणशील स्वभाववाले जापानी यह समझनेमें असमर्थ हैं कि विश्वकी भावना गाढ़ी स्वदेश-भक्तिकी सहायक ही है, इसीसे वे अन्तर्राष्ट्रीयताके सम्बन्धमें प्रायः सशंक ही रहते हैं। गत यूरोपीय युद्धकी घटनाओंसे जापानी नेताओंकी आँखें खुल गयी हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष देख लिया है कि मानवताकी पुकारने पश्चिमके देशोंमें राष्ट्रीय भावनाको जगानेमें ही सहायता पहुँचायी है।

हेनरी सैटोके कथनानुसार "यद्यपि जापानका शासक होनेकी हैसियतसे 'टेन्नो' (देवस्वरूप शासक) की शक्ति बहुत बढ़ी हुई और असीम है, फिर भी वह केवल स्वार्थभावसे प्रेरित होकर अपने अधिकारोंका दुरुपयोग करेगा, ऐसी आशंका कम है। तात्पर्य यह कि वहाँवाले समझते हैं कि अपनी प्रजाके हितोंकी रक्षा और उनकी वृद्धि करनेके उद्देश्यसे उसने स्वयं अपने ऊपर बंधन लगा लिये हैं।"

अंग्रेजीका शब्द 'एम्परर' (बादशाह) अथवा चीनी शब्द 'टेन्नो' (दिव्य शासक) से जापानियोंका भाव पूर्णतः व्यक्त नहीं होता, क्योंकि उनका प्रधान शासक पितामह-स्थानीय होता है। बादशाह वहाँ प्रजाका पिता और प्रजा सन्तानवत् मानी जाती है। सारा राष्ट्र मानो एक बड़ा परिवार है जिसका प्रत्येक सदस्य सबके संयुक्त लाभके लिए प्रयत्न करता रहता है।

मनुका आदर्श

हम भारतीयोंको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि राजा या सम्राट्के सम्बन्धमें जापानियोंकी जो भावना है, वह

हमारी उस भावना और परम्परासे मिलती जुलती है, जिसकी चर्चा मनुस्मृतिमें की गयी है और जिसके उदाहरण रामायण तथा अन्य धर्म-ग्रन्थोंमें मिलते हैं।

जापानियोंके राष्ट्रीय जीवनका रहस्य बतलाते हुए बेरन ओहुराने एक बार कहा था "हम अपने सम्राट्को संसारकी प्रत्येक वस्तुसे अधिक महत्त्व देते हैं और उसे पृथ्वी तथा आकाशकी तरह स्थायी मानते हैं। यदि हमारे देशके लिए किसी धर्मकी आवश्यकता समझी जाय तो मैं कहूँगा कि उसे राष्ट्रीयता एवं राजभक्ति अर्थात् सम्राट्-पूजाके धर्मकी दीक्षा दी जाय।" हम यह स्वीकार करते हैं कि बेरन ओहुरा सैनिकवादके कट्टर अनुयायी हैं और उनके दिमागमें राष्ट्रीयताका पुराना जापानी अर्थ ही समाया हुआ था। अब यूरोपीय महायुद्धके बाद वे तथा उनके जैसे विचारोंवाले अन्य लोग इसका उक्त अर्थ लगानेका साहस नहीं कर सकते, क्योंकि आज कल अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगके ध्येयपर ज़ोर दिया जाता है। इतना जानते हुए भी लेखकका यह दृढ़ मत है कि सम्राट्-पूजाकी यह भावना जापानियोंके मस्तिष्कमें बराबर काम कर रही है और उन्हें इस योग्य बना रही है कि वे संसारके नागरिक बन सकें। उसने जापानको विनाशकी ओर जानेसे बचा लिया है।

पहले तो इस भावनाने जापानमें एक तरहका राष्ट्राभिमान उत्पन्न कर दिया है जिसने उसे संसारमें सर्वोत्तम वस्तुके लिए प्रयत्न करनेमें सहायता पहुँचायी है। जब चारो ओर अन्धकार छाया हुआ था, तब स्वाभिमानने ही यहूदियोंको नष्ट होनेसे बचाया। ऐसा ही अभिमान और देशभक्तिका भाव अमेरिकामें विद्यमान है। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक राष्ट्रमें इस तरहका अभिमान—यह भाव कि एक निश्चित उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए

हमारा जन्म हुआ है, संसारमें एक खास काम हमें करना है—होना आवश्यक है।

दूसरे, इस भावनाने जापानियों तथा जापानमें एकता स्थापित कर दी है और उसकी एकता, चीनके विपरीत, इस बातका सुदृढ़ और निश्चित प्रमाण है कि वहाँ यह भावना सफलतापूर्वक काम कर रही है। यह एकता शाही खानदानकी उस शृङ्खलाके प्रति सम्मानकी भावनासे उत्पन्न हुई है, जिसका प्रतिनिधि विद्यमान सम्राट् माना जाता है। यह वंश-परंपरा संसारकी सबसे लम्बी वंश-परंपरा है। इस विश्वासके कारण जापानमें एकता उत्पन्न हुई है कि जापानी सम्राट् देवताओंके प्रतिनिधि, पूर्वजोंके प्रतीक, हैं और जापानके लिए ईश्वर-प्रदत्त शासक हैं।

तीसरे, सम्राट्-पूजाने जापानमें एक तरहकी शृंखला बनी रहने दी है जिससे जापानियोंके शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ते हुए भी प्राचीन कालकी महत्त्वपूर्ण बातोंकी रक्षा हो सकी है। सम्राट्के प्रति इस अपूर्व भक्तिकी भावनाने उनमें ऐसा प्रबल देश-प्रेम उत्पन्न कर दिया है जिसकी ख्याति सारे संसारमें फैल गयी है। हमारे जीवन तथा धार्मिक विकासपर देशभक्तिका कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, यह कहना अनावश्यक है, क्योंकि इस सम्बन्धमें किसीको कोई सन्देह नहीं हो सकता।

चौथी बात यह है कि सम्राट्-पूजामें व्यक्तित्वकी भी गुंजाइश है और प्रत्येक जापानी हृदयसे यह चाहता है कि सम्राट् देशके नेता भी बनें। सम्राट्-पूजा, साम्राज्यवाद और स्वदेशभक्ति, इन तीनों शब्दोंको बहुतसे जापानी प्रायः पर्यायवाची समझते हैं, यद्यपि पश्चिममें इनके भिन्न भिन्न अर्थ लगाये जाते हैं। यूरोपमें सम्राट्-पूजाका अर्थ

होता है सम्राट्के सामने इस तरह सिर झुकाना मानो वह ईश्वर हो। इसी तरह 'टेनोइज़्म' राष्ट्रवादकी पराकाष्ठाको और देशभक्ति अपने देश या समाज सम्बन्धी आदर्शोंपर न्योछावर हो जानेकी तत्परताको कहते हैं। जापानियोंके मनमें यह अर्थ-भेद इतना स्पष्ट नहीं है, इसीसे यदि कभी कोई व्यक्ति उग्र राष्ट्रवादके विरुद्ध अथवा जो ईश्वर नहीं है उसकी पूजा ईश्वर-वत् करनेके सम्बन्धमें किसी जापानीसे बहस करने लगता है, तो वह यह समझने लगता है कि मेरी स्वदेशभक्तिपर आक्षेप किया जा रहा है। जो हो, जापानमें सम्राट् ईश्वरका प्रतिनिधि माना जाता है और वहाँके लोग इसी दृष्टिसे उसकी पूजा करते हैं। यदि कोई सम्राट् महान् व्यक्ति हो, जैसा कि पहलेके सम्राट् मीजी टेनोके सम्बन्धमें कहा जा सकता है, तो उसे अपने व्यक्तित्वके कारण मामूलीसे कुछ अधिक सम्मान मिलता है। जापानमें सम्राट्के प्रति जो भाव प्रदर्शित किया जाता है, उसे हम वस्तुतः ईश्वरके रूपमें उसकी पूजा नहीं कह सकते, वरन् एक ऐसे व्यक्तिके प्रति सम्मान-प्रदर्शन कह सकते हैं जो सारे देशको अपनेसे सम्बद्ध किये रहता है। सम्मानकी मात्रा उसकी व्यक्तिगत योग्यताके अनुसार घटती बढ़ती रहती है।

अन्य देशोंमें खास खास अवसरोंपर झण्डाभिवादनका जो अर्थ होता है, जापानियोंके लिए सम्राट्के चित्रके सामने सिर झुकानेका अर्थ उससे अधिक नहीं होता। देशभक्ति तो हृदयकी एक भावना है। उसका बाह्य रूप भिन्न भिन्न तरहका हो सकता है, इसीसे कभी कभी उसके सम्बन्धमें भ्रम हो जानेकी संभा-वना रहती है।

सम्राट्-पूजाकी व्याख्या करते हुए एक जापानी कहता है कि वह देश तथा देशाधिपतिके प्रति ऐसी भक्ति है जिसकी

प्रेरणासे राजा और प्रजा बड़े मेलके साथ पिता-पुत्रवत् काम कर सकते हैं। यही पुनः-प्रतिष्ठा (रेस्टोरेशन) का मुख्य कारण था, क्योंकि लोग घबड़ा गये थे और ऐसी केन्द्रीय सरकार चाहते थे जो स्थिर हो तथा जिसकी बागडोर सम्राट्के हाथमें रहे। शोगुनोंको वे महत्त्वाकांक्षी एवं स्वार्थी समझते थे। उन्हें इस बातका भी भय था कि और लोग भी शोगुन बननेके लिए उत्सुक होकर देशको गृहयुद्धमें फँसा सकते हैं। देशमें फिरसे सम्राट्के शासनकी स्थापना हो, सर्वसाधारणकी यह इच्छा जानकर ही 'पुनः प्रतिष्ठा' के समय सम्राट् फिर सामने आये। जापानके स्कूलोंमें पढ़ायी जानेवाली पुस्तकोंमें वहाँके सम्राटोंके आत्मत्यागकी कहानियाँ भरी पड़ी हैं। उदाहरणके लिए उनमें निनटोकू टेन्नो नामक सम्राट्की चर्चा आयी है, जिसने तबतक कर वसूल करने या अपने महलकी मरम्मत करानेसे इनकार कर दिया था, जबतक उसकी प्रजाके अच्छे दिन फिरसे न लौट आवें। इसीको तो हम लोग भारतवर्षमें 'रामराज' कहते हैं।

पढ़े-लिखे जापानी यह बात ज़ोर देकर कह रहे हैं कि सम्राट्-पूजा हमारे राष्ट्रीय जीवनका ध्येय नहीं है; अतीतके प्रति हमारा कुछ कर्त्तव्य है, इसीसे हम पूर्वजोंके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं; इसके अतिरिक्त भविष्यके प्रति भी हमारा कुछ कर्त्तव्य है, इसीसे हम जापानको विश्व-विश्रुत राष्ट्र बनाना चाहते हैं। सम्राट्-पूजा कैसे और किस सीमातक सिखायी जाय, यह कोरिया तथा फारमोसाके नवाधिगत प्रदेशोंकी ऐसी समस्या है जिसे हल करना आसान नहीं है। पुराने खयालके लोग जिस तरहकी सम्राट्-पूजा चाहते हैं, वह तो अब चल नहीं सकती। तीन बातें उसके विरुद्ध पड़ती हैं—नये

प्रदेशोंका अधिकारमें आना, संसारके नागरिक बननेकी महत्त्वाकांक्षा, और लोकतंत्रका उदय; किन्तु सामान्य जनताको पूर्ण मताधिकार प्राप्त हो जानेपर भी सम्राट्को केन्द्र मानकर एकत्र होनेकी आवश्यकता रहेगी। सम्राट्को हम अतीत कालके देवताओंका प्रतिनिधि भले ही न मानें, पर उसे ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय ध्येयका प्रतीक, सर्वसाधारणका प्रतिनिधि, राष्ट्रीय जीवनका केन्द्र, तथा निर्जीव और नीरस सी सरकारकी सजीव प्रतिमूर्त्ति तो मानना ही पड़ेगा। पुनः-प्रतिष्ठाके लिए प्रयत्न करनेवाले नेताओंकी समझमें यह बात आ गयी थी कि सम्राट्के हाथमें पुनः शासन-शक्तिका प्रत्यावर्त्तित होना तो आवश्यक है ही, साथ ही उसे एक ऐसा केन्द्र बना देनेकी भी ज़रूरत है जिसकी ओर देशका प्रत्येक व्यक्ति आकर्षित हो सके।

राजनीतिक महत्त्वके अतिरिक्त इसका धार्मिक महत्त्व भी है। शाही खानदानकी पवित्रताका भाव यदि लोगोंके मनमें समा जाय तो इससे देशकी पवित्रताकी भावना भी उत्पन्न हो जाती है और जब वह संसारमें कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करनेको तैयार हो तब उन्हें उसके लिए अपने आपको अर्पित करनेमें कोई झिझक नहीं मालूम होती।

देश-प्रेम एक तरहकी भक्ति ही है किन्तु केवल अपनी वस्तुओं, केवल स्वार्थके प्रति भक्तिका कोई महत्त्व नहीं। ऐसी अवस्थामें शीघ्र ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि इससे अधिक महत्त्व तथा सबसे अधिक महत्त्वकी बात क्या है। इसपर विचार करते ही यह समझमें आ जाता है कि केवल शारीरिक आत्म-बलिदानका अधिक महत्त्व नहीं। सामान्य मनुष्य स्वभावतः किसी सिद्धान्त या ध्येयके लिए मर मिटनेको तैयार होनेके पहले उसे अपनी आँखों देखना चाहते हैं जिसके लिए वे

प्राणाहुति करनेको तैयार हों। उन्नतमना व्यक्ति तो अवश्य ध्येयोंसे प्रभावित होते हैं किन्तु मामूली आदमी जिसकी पूजा करता है उसे प्रत्यक्ष देखना चाहता है। देश-प्रेम और धर्म पहले एक ही समझे जाते थे किन्तु अब संसारमें ज्यों ज्यों उन्नति होती जाती है त्यों त्यों प्रत्येक देशमें धार्मिक संस्था और राज एक दूसरेसे पृथक् होते जा रहे हैं। स्थूल रूपसे इसे राज और धार्मिक संस्थाके अन्तर्द्वन्द्वका ही परिणाम समझना चाहिये। जो हो, जापानमें इन दोनोंके संघर्षका ख़याल ही उत्पन्न नहीं होता, इसीसे वहाँ इन दोनोंके एक दूसरेसे अलग होनेकी वैसी संभावना नहीं मालूम होती।

जापान देश एक बड़े परिवारके सदृश है जिसका मुखिया वहाँका बादशाह है। जैसे परिवारमें उसकी देखरेख करनेवाले एक प्रधानका होना आवश्यक है जो उसकी समवेत शक्तिका केन्द्र हो, उसी तरह किसी दल या राष्ट्रमें भी होना चाहिये। ज्यों ज्यों इस विचारका प्रसार होता जायगा त्यों त्यों उस अन्तर्राष्ट्रीयतामें जो क्रमशः फैलती जा रही है, अधिक बड़ी केन्द्रीय शक्ति—सारी मानवजातिके पिता—की आवश्यकता प्रतीत होगी।

जापानी यह मानते हैं कि राजवंशमें साधारण और असाधारण दोनों ही तरहके व्यक्ति हुए हैं। शाही खानदानका जब कोई व्यक्ति गद्दीपर बैठता है, तब आगे चलकर उसके व्यक्तित्वके विकासकी संभावना रहती है। यह संभावना मनुष्यकी कल्पना-शक्तिको उकसा देती है और एक आदर्श गढ़ लेती है जिसके समीप पहुँचनेकी चेष्टा की जाती है। अतीतके साथ उस समयका आदर्श भी समाप्त हो जाता है। वर्त्तमान समयका आदर्श अधिक ऊँचा होता है। भविष्यका आदर्श और भी

अधिक उज्ज्वल तथा ऊँचा होगा। पृथ्वीके सब राजा मनुष्य ही हैं, अतः लोग आदर्श राजा या ऐसे शाहंशाहकी कामना करेंगे जिसमें सबका आदर्श मूर्त्तिमान् हो।

जब सम्राट्-पूजाका अर्थ प्रजाके पितृस्थानीय व्यक्तिका सम्मान करना होता है, तब आत्म बलिदान करनेवाले सम्राट्का ही लोग समादर करेंगे। ईसामसीहके कथनानुसार "तुममेंसे जो सबसे बड़ा बनना चाहता है, उसे चाहिये कि वह अपने आपको तुम्हारा नौकर समझा करे।" सेवा और आत्मबलिदानके आदर्श ऐसे हैं जिनसे राष्ट्रके निवासी एक दूसरेसे एकताके सूत्रमें आबद्ध हो जाते हैं।

तीसरा अध्याय

प्रजा-हितैषिणी सरकार

जापानने गत पचास वर्षोंके भीतर जो आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है, उसे देखते हुए भारतमें ब्रिटिश सरकारने शुरूसे अभीतक जो कुछ किया है, वह बिलकुल नगण्य प्रतीत होता है और इस सम्बन्धमें उसकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है।

लगातार १८० वर्षोंसे ब्रिटिश शासनमें रहते हुए भी भारतका संसारमें अब कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रह गया और उसकी आर्थिक तथा व्यावसायिक स्थिति तो बहुत ही खराब हो गयी है। इसके विपरीत साठ वर्ष पहले जिस जापान-को कोई अच्छी तरह जानता तक न था, उसीकी गणना आज संसारके प्रथम श्रेणीके राष्ट्रोंमें की जाती है। इस अभूतपूर्व

उन्नतिका रहस्य क्या है? मैं कहूँगा कि इसका कारण वहाँकी प्रजावत्सल और देशभक्त सरकार है जो अपने नागरिकोंको गौरवके शिखरपर आरूढ़ करानेमें हर तरहसे सहायता देनेके लिए तैयार रहती है। मैं नहीं समझता कि भारतीय सभ्यताका कोई विरोधी भी उक्त प्रश्नका और कोई उत्तर दे सकता है।

चर्चिलपंथी-समुदाय भारतके राष्ट्रवादियोंपर उतावलेपनका दोष मढ़ने और पुनः पुनः इस बातपर ज़ोर देनेसे कभी नहीं चूकता कि रोम नगरका निर्माण एक दिनमें नहीं हो गया था। वे लोग यह भी कहा करते हैं कि भारतीयोंमें किसी कामको जिम्मेदारीके साथ शुरू करनेकी क्षमता ही नहीं है, लोक-तंत्रा-त्मक संस्थाएँ प्राच्य देशवालोंके स्वभावके प्रतिकूल हैं, और उस बातकी माँग पेश करना बुद्धिमानी नहीं है जिसे अंग्रेज लोग सैकड़ों वर्षके प्रयत्न तथा संघर्षके बाद ही प्राप्त कर सके हैं। उनका यह कथन कितना सारहीन तथा मूर्खतापूर्ण है, यह जापानके उदाहरणसे स्पष्ट है।

जापानने अब इतनी उन्नति कर ली है कि उसे प्रथम श्रेणीके राष्ट्रोंकी पंक्तिमें बैठनेका अधिकार प्राप्त हो गया है। उन्नतिकी अन्तिम सीमापर वह पहुँच चुका है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी अभीतक उसने जो कमाल कर दिखलाया है, उससे पश्चिमके आलोचकोंका यह कथन मिथ्या प्रमाणित हो गया है कि 'पश्चिमकी शराब पूर्वी बोतलोंमें नहीं रखी जा सकती।'

यदि आज कोई जापानको देखे या दूर बैठकर उसके सम्बन्धकी पुस्तकें और लेखादि पढ़े तो सम्भवतः वह एक महत्त्वपूर्ण बात भूल जायगा कि सन् १८६०-७० तक जापानका प्रायः कोई नाम तक न जानता था। जापानमें वर्त्तमान शासन-

व्यवस्था सन् १८६८ में शुरू हुई। उस समयतक जापानवाले संसारके एक कोनेमें प्रारंभिक जीवन बिता रहे थे। वे कई वर्गों और जातियोंमें बँटे हुए थे। पुराने तरीकोंपर ही उस समय वहाँका शासन होता था और जनता उन बहुसंख्यक सा- [illegible] थी जो अपनी अपनी अमल- [illegible] स्वतंत्र थे। देशमें एक तरहके सैनिक स्वेच्छातंत्रका बोलबाला हो गया था। सम्राट्को राजके मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार न था। उनकी देखरेख उनके नामपर सेनाके प्रधानाध्यक्ष ही किया करते थे। जनतामें घोर अन्धविश्वास फैला हुआ था। देशकी अपनी सभ्यता तो थी किन्तु राष्ट्रके जीवनमें कोई व्यवस्था अथवा सुसंघटित पद्धति न थी। पश्चिमकी दृष्टिसे विचार करनेपर यहाँ विशृंखलता और अव्यवस्थाका ही नहीं बल्कि [illegible]का भी आधिपत्य था। अन्य राष्ट्रोंसे केवल [illegible] ही [illegible] था [illegible] वस्तुएँ मँगा लेते थे। [illegible] अधिक होती थी। प्रायः कुछ रेशमी कपड़े व कारीगरीकी वस्तुएँ ही बाहर भेजी जाती थीं। देशी व्यापार थोड़ेसे डच जहाजियों और कुछ स्पेनवालोंके हाथमें था जिन्हें शाही सनदोंके जरिये उसका एकाधिकार प्राप्त था। सभ्य दुनियाके साथ जापानका प्रत्यक्ष रूपसे कोई सम्बन्ध न था। उपर्युक्त थोड़ेसे विदेशियोंको छोड़कर और किसी अजनबीको वहाँ प्रवेश करनेकी इजाज़त न थी और स्वयं जापानियोंको भी विदेशोंके साथ व्यापार करनेकी सख्त मनाही थी। जापान चारों तरफसे बन्द एक अन्धेरे कमरेके समान था जिसमें बाहरसे रोशनी या हवा आनेके लिए खिड़कियां और झरोखे

तक न थे। न तो संसारको उसका कोई हाल मालूम था और न उसे ही संसारकी गति-विधिका पता था। उसका कुलीन वर्ग सुखी और आपसकी लड़ाइयों, ईर्ष्याओं तथा स्पर्द्धाओंसे सन्तुष्ट था। सर्वसाधारण सादे भोजन और सादे कपड़ेसे अपना निर्वाह कर शेष सब कुछ अपने सामन्तोंके लिए सुरक्षित रखते थे।

इस बातकी कल्पना करना आसान नहीं है कि पचास वर्षके भीतर ही (१८६८ से १९१०) जापान उस स्थानतक पहुँचनेमें सफल हो गया जो इस समय उसे प्राप्त है। बहुसंख्यक जापानी अब स्थायी रूपसे अमेरिका, हवाई द्वीप, फिलीप्पाइन्स, मलाया-द्वीपपुञ्ज, चीन, मंचूरिया और मंगोलियामें बस गये हैं। उन्होंने बहुत सी सम्पत्ति इकट्ठी कर ली है और बड़े पैमानेपर कृषि या उद्योग-व्यवसाय करनेमें लगे हैं। भूमण्डलमें शायद ही ऐसा कोई देश होगा जहाँ कोई ऐसा जापानी न देख पड़ता हो जिसका सिर अपने देशकी अद्वितीय शक्तिके अभिमानके कारण हमेशा ऊँचा रहता हो, जिसे इस बातकी पूरी जानकारी हो कि संसारके रंगमंचपर उसे कौन कौनसे महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं और जो अधिकाधिक सफलता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील हो। जापानके पास प्रथम श्रेणीकी सेना और एक बहुत बड़ा जहाजी बेड़ा है जिसका निर्माण सम्राट्ने अपने प्रजाजनों द्वारा स्वेच्छासे दी गयी सहायता और सहयोगसे कराया है। इससे भी उल्लेखनीय बात यह है कि जापानने लोकतन्त्रात्मक संस्थाओंको अपना लिया है और सफलतापूर्वक उनका सञ्चालन कर रहा है। वहाँका शासन पार्लिमेण्टरी पद्धतिसे होता है। उसकी शिक्षा-प्रणाली भी बिलकुल आधुनिक ढंगकी है। साठ वर्षके भीतर ही जापान

पूर्वी देशोंका अगुआ और जीवनकी उन आवश्यक वस्तुओं तथा विलासमय सामग्रीकी माँग पूरी करनेवाला बन गया है जो पहले पश्चिमसे आती थीं। शासनकी दृष्टिसे हो, चाहे सामान्य उन्नतिकी दृष्टिसे हो, जापान अभी चरम सीमापर नहीं पहुँच पाया है, फिर भी गत ६० वर्षोंमें उसने जो सफलता प्राप्त की है वह आश्चर्यजनक और अद्वितीय है।

जो लोग इस खयालके हैं कि जबतक जनता आन्दोलन न करे और सम्राट्पर किसी तरहका दबाव न डाले, तबतक उसे राजनीतिक अधिकार देना एक तरहकी नासमझी ही है, उन्हें ज़रा जापानकी ओर निगाह डालनी चाहिये। उसके उदाहरणसे स्पष्ट है कि किसी भी देशकी सरकार यदि चाहे तो लोकतंत्रात्मक संस्थाओंकी स्थापना कर अपनी प्रजाको लोकतंत्र-प्रणालीकी शिक्षा प्रदान कर सकती है। आधुनिक जापानको राजनीतिके क्षेत्रमें अवतरित हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ था कि वहाँके सम्राट्ने अपनी प्रजाके लिए नूतन शासन-विधानकी घोषणा करनेका निश्चय किया और देशमें पार्लिमेण्टरी शासन पद्धति जारी करनेकी स्वीकृति दे दी। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली-को स्थापित हुए अभी बीस ही वर्ष हुए थे कि जापानियोंको स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने और आज़ादीके साथ भाषण करनेका अधिकार प्राप्त हो गया, जिसका उन्हें इसके पूर्व कोई ज्ञान न था। जापानमें अंग्रेजी भाषाके जो दैनिक समाचारपत्र निकलते हैं, उनकी एक नियमित विशेषता यह होती है कि उनमें जापानी पत्रोंका अनुवाद भी छपता है। उन्हें पढ़नेसे, जहाँतक विचार-स्वातंत्र्य एवं भाषण-स्वातंत्र्यका सम्बन्ध है, अंग्रेजी तथा अमेरिकन समाचारपत्रों और जापानी समाचार-पत्रोंमें कोई भेद नहीं मालूम होता।

जापान एक ऐसे देशका अनोखा उदाहरण है जिसे जिम्मेदारी और विश्वास द्वारा लोकतन्त्रकी शिक्षा दी गयी है। 'पहले किसी बातके लायक बनो और तब उसकी अभिलाषा करो' वाली नीति उसके साथ नहीं बरती गयी। उसकी स्थिति तो उस बालकके समान है जिसपर पिताको पूरा विश्वास हो और जिसकी योग्यताका पूरा परिचय पाये बिना ही पिताने सारी जिम्मेदारी जिसे सौंप दी हो। किसीको जिम्मेदारीके पदपर नियुक्त कर देनेसे बढ़कर और कारगर शिक्षा क्या हो सकती है? जापानकी आश्चर्यजनक उन्नतिका श्रेय वहाँकी सरकारकी सुव्यवस्था और अपनी प्रजाके बुद्धिमत्तापूर्ण पथप्रदर्शनको है। सब तरहकी सहायता बिना किसी संकोच तथा बिना किसी पसोपेशके दी गयी, ताकि लोगोंमें लोकतन्त्रका भाव बढ़े और वाणिज्य-व्यवसायकी उन्नति हो। यदि जापानने प्रत्येक बातका स्वयं अनुभव करते हुए आगे बढ़नेका निश्चय किया होता तो उसने जितनी उन्नति पचास वर्षोंमें कर ली है, उतनी उन्नति करनेमें उसे कई शताब्दियाँ लग जातीं।

सरकारने क्या किया

जापान सरकार सचमुच ही प्रजाके हितोंकी संरक्षक है। सर्वसाधारणकी आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति सुधारनेके लिए वह शक्तिभर प्रयत्न करनेको तैयार रहती है। जापानको संसारके अन्य देशोंके समकक्ष लानेके लिए सरकारने जो जो उपाय किये हैं, उनमें से मुख्य ये हैं—(१) अनिवार्य शिक्षा जारी करना जिसके कारण पढ़े-लिखे लोगोंकी संख्या ९९ प्रतिशतसे भी अधिक हो गयी; (२) विभिन्न उद्योग-व्यवसायोंकी सांगोपांग शिक्षा प्राप्त करनेके लिए सैकड़ों नवयुवकोंको

अमेरिका तथा यूरोप भेजना; (३) औद्योगिक स्कूल तथा विद्यालय, और ऐसे कारखाने व विद्यालय खोलना जहाँ होशियार मज़दूरोंको कम खर्चमें काम करनेकी शिक्षा दी जाय; (४) जहाज़ी कम्पनियोंको आर्थिक सहायता देना जिससे वह देश संसारकी नाविक शक्तियोंमें तीसरा स्थान प्राप्त कर सका, (५) ऐसे बैंकोंकी स्थापना करना जो उद्योग-व्यवसायकी वृद्धिमें विशेष रूपसे सहायक हों; (६) विभिन्न औद्योगिक कम्पनियोंकी स्थापनाके लिए आर्थिक सहायता मंजूर करना, (७) विदेशी प्रतिस्पर्द्धासे जापानके व्यवसाय-वाणिज्यकी रक्षा करना।

डाकव्यय तथा रेल-भाड़ा

(८) इसके सिवा सरकारने आठवीं बात यह की है कि कमखर्चमें चिट्ठी-पत्री भेजने तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानको जानेका सुभीता कर दिया है। जापानमें पोस्टकार्डका मूल्य लगभग पौन पैसे है, यद्यपि भारतमें वह उसके चौगुने दाम अर्थात् तीन पैसेमें मिलता है। लिफाफेपर डेढ़ पैसेका टिकट लगता है, जब कि भारतमें उतने ही वज़नकी चिट्ठीपर पाँच पैसेका (अब छः पैसेका) टिकट लगाना पड़ता है। जापानमें माल भेजनेका खर्च इतना कम है कि भारतसे उसकी तुलना ही नहीं हो सकती। बरारसे बम्बई रुई पहुँचानेमें ज्यादा खर्च पड़ता है, बनिस्बत बम्बईसे जापान (७००० मील) पहुँचानेमें। जापानमें रेलें जनताको लूटनेके लिए नहीं हैं। रेल-किराया तथा माल भेजनेका भाड़ा भारतकी अपेक्षा बहुत कम है और पेट्रोल भी वहाँ सस्ता बिकता है—लगभग पाँच आने फी गेलन।

सरकार भारतकी तरह ऊँचा टैक्स भी नहीं लगाती, अतः कियायेसे चलनेवाली मोटरलारियों और बसोंमें यात्रा करने-

से बहुत कम खर्च पड़ता है। मैं २½ से ४ आनेमें अक्सर ४-५ मील टैक्सी द्वारा आया गया हूँ। ४० सेन (लगभग ५ आनेमें) आप संसारके तीसरे बड़े शहर टोकियोमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक कहींकी यात्रा कर सकते हैं। भारतमें कमसे कम छः गुना खर्च पड़ता है। जाड़ेमें पुरानी दिल्लीसे नयी दिल्लीतक (३ मील) जानेमें ३-४ रुपये मोटर किराया लगता है। जापानमें इतनी ही दूरीका किराया सिर्फ तीन आने है। बराबर सवारी मिलती रहनेके कारण टैक्सीवालोंको प्रतिदिन कई रुपयेकी आमदनी हो जाती है।

ट्राम गाड़ियों और बिजलीसे चलनेवाली ट्रेनोंमें सफर करना भी सस्ता पड़ता है। ३½ पैसेमें आप शहरके किसी भागमें १०-१५ मीलतक मखमलकी गद्दीवाली सीटपर बैठकर जा सकते हैं। कोबेकी ट्रामगाड़ियाँ संसार भरमें शायद सबसे सस्ती समझी जाती हैं। हाँ, टोकियोकी ट्रामें ज़रूर इतनी अच्छी नहीं होतीं और उनमें भीड़ भी ज़्यादा रहती है।

(९) "हर एक घरमें रेडिओ होना चाहिये" यह वहाँकी रेडियो कम्पनीका सिद्धान्त-वाक्य है (कमसे कम शहरोंके लिए) और वहाँ रेडियोका खर्च कितना कम है इसकी शायद आप कल्पना भी न कर सकेंगे। महीनेमें केवल छ आने दे देनेसे ही वहाँका गरीबसे गरीब नागरिक भी दिनरात रेडियोके कार्यक्रमसे लाभ उठा सकता है। इस विषयकी विस्तृत चर्चा एक स्वतंत्र अध्यायमें की जायगी।

(१०) व्यापारिक संग्रहालय, व्यापारिक ब्यूरो तथा ऐसे दफ्तरकी स्थापना करना जहाँ व्यापार सम्बन्धी सब बातें मालूम हो सकें और जिनसे व्यापारियों तथा कारखानेवालोंको अपने मालके लिए नये बाज़ार खोज लेनेमें मदद मिले।

(११) जापान, अमेरिका, यूरोप तथा अन्य देशोंमें ऐसी प्रदर्शिनियों और व्यापारिक मेलोंका प्रबन्ध करना जिनसे जापानी मालका विज्ञापन हो और उसके प्रति लोगोंकी अभि-रुचि बढ़े।

ये उन थोड़ेसे उपायोंमेंसे कुछ हैं जिनका जापानमें रहते समय मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। इनके सिवाय और भी बहुतसे उपाय होंगे जिनका मुझे पता न चला होगा।

एक प्रश्न और उसका उत्तर

जापानमें उद्योग-व्यवसायकी उन्नतिका मुख्य कारण वह सहायता ही है जो वहाँकी दयालु सरकार बड़ी सावधानीके साथ अविच्छिन्न रूपसे देती रही है। क्या आपको यह मालूम है कि भारतमें पहला पुतलीघर जापानसे बहुत पहले ही खोला गया था? इतना होते हुए भी आज भारतको प्रायः हरएक वस्तु-के लिए जापानका मुँह ताकना पड़ता है। इसका कारण क्या है? कारण हमारी सरकारका हम लोगोंके प्रति सौतेली माके समान व्यवहार तथा मिल-मालिकोंकी स्वार्थपूर्ण नीति ही है। प्रजा-हितैषिणी सरकारकी सहायता बिना किसी भी देशके उद्योग-धन्धोंकी उन्नति नहीं हो सकती। उदाहरणके लिए जहाज़के व्यवसायको लीजिये। जो भारत किसी समय जहाज़ बनानेके लिए प्रसिद्ध था, वह आज इस व्यवसायमें बहुत पिछड़ गया है किन्तु जापान आधी शताब्दीके अन्दर ही इस व्यवसायमें इतना मजबूत हो गया है कि इङ्गलैण्डको भी उससे शङ्का मालूम हो रही है। जापानके व्यापारिक जहाजोंके कारण वहाँ-के उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें विशेष सहायता मिली है। जहाज बनानेका काम वहाँ पहले पहल सरकारकी ओरसे ही आरम्भ

किया गया। जो व्यवसायी इस कामको करना चाहते थे उन्हें वह आर्थिक तथा अन्य तरहकी सहायता देती थी। सन् १८६८ तक जापानके उपकूल-वाणिज्यके लिए भी व्यापारिक जहाजों-का एक तरहसे पूरा अभाव ही था। पहले पहल सन् १८७० ई० में सरकारके आदेशसे एक जापानी जहाज़ कम्पनीने किनारेके दो नगरों टोकियो और ओसाकाके बीच नियमित रूपसे जहाजोंका आना-जाना जारी किया किन्तु अब ६४ वर्षके भीतर यह हालत हो गयी है कि जापानके झुण्डके झुण्ड जहाज़ संसारके प्रत्येक कोनेमें फैले हुए हैं।

सरकारी सहायता

वर्त्तमान जगत्‌का ऐसा कोई भी उद्योग-व्यवसाय नहीं है जिसकी स्थापनाके लिए जापानकी सरकारने कोई प्रयत्न न किया हो। वह नये उद्योगोंको आर्थिक सहायता प्रदान करती थी अथवा कम ब्याजपर उन्हें रुपया उधार देती थी। इसके विपरीत भारतमें इन्हीं उपायोंका अवलम्बन ग्रहण करनेके लिए सरकारसे पुनः पुनः अनुरोध करनेपर भी बिलकुल निराश होना पड़ा।

जापानमें सन् १८७५ में ही पोस्ट आफिसके सेविंग बैङ्कोंमें जमा हुआ रुपया अर्थ-विभागके अन्तर्गत एक डिपाजिट्स ब्यूरो नामकी संस्थाके जिम्मे कर दिया गया था। इस रुपयेमेंसे बहुतसे उद्योग-व्यवसायोंको ऋण दिया जाता या सरकारी अथवा विशेष बैङ्कोंके ऋणपत्रोंमें लगाया जाता है। देशके उद्योग-व्यवसायको उस रुपयेसे कितनी सहायता मिलती है, यह इसीसे स्पष्ट है कि सन् १९३१-३२ में पोस्ट आफिसके सेविङ्ग बैङ्कका रुपया निम्न रूपसे लगाया गया—

२ करोड़ येन—सार्वजनिक संस्थाओंको दिया गया ऋण।
३·२ करोड़ येन—अन्य संस्थाओं द्वारा सञ्चालित उद्योगोंके लिए दिया गया।
५० लाख सामाजिक काम तथा ६० लाख बेकारोंकी सहायता आदिके लिए प्रदत्त।

किसानोंकी सहायता

जापानकी सरकार कई तरहसे किसानोंकी मदद करती है। खेतोंमें रेशमके कीड़े पालनेके व्यवसायका लगातार संरक्षण कर सरकारने किसानोंकी आमदनी बढ़ानेमें सहायता दी। अब इस व्यवसायमें मन्दी आ पड़नेके कारण सरकार बड़ी बड़ी रकमें उधार देकर किसानोंका कष्ट दूर कर रही है।

जापानके मुख्य खाद्य पदार्थ चावलकी क़ीमत ज़्यादा न गिरने पावे इस गरज़से वहाँकी सरकार एक निश्चित परिमाणमें चावल खरीद लेती है और विशेष आवश्यकताके लिए उसे रख छोड़ती है। हिन्दुस्थानमें सत्याग्रह संग्रामके समय स्थानीय अधिकारी मानो बदला लेनेकी गरज़से किसानोंकी मवेशियों, गल्ला और खेतीके औज़ारोंको कुर्क कर लेते थे। इसी तरह किसानोंपर किये गये जुर्मानोंकी वसूलीमें अक्सर उनके बैल इत्यादि कुर्क कर दिये जाते थे किन्तु जापानमें यह क़ानून बनाया जा रहा है कि ये चीज़ें कदापि कुर्क न की जायँ चाहे सरकार द्वारा और चाहे महाजनों द्वारा।

उपनिवेशोंकी स्थापना

सरकारकी ओरसे ऐसी संस्थाओंको भी आर्थिक सहायता दी जाती है जिनका काम उन जापानियोंके लिए सब तरहकी

सुविधाएँ कर देना है जो अन्य देशोंमें जाकर बस जाना चाहते हैं। इस प्रकार अमेरिका, ब्रेज़िल, फिलिपाइन, मञ्चूरिया आदि-में बसनेवाले लाखों जापानियोंकी सहायता की गयी। सच बात तो यह है कि जापानमें वाणिज्य-व्यवसायकी कोई भी ऐसी शाखा नहीं जिसके कार्यका श्रीगणेश सरकारने स्वयं अपनी ओरसे न किया हो अथवा किसी न किसी स्थितिमें सरकारने जिसे आर्थिक सहायता न दी हो। इतने थोड़े समय-के भीतर जापानके उद्योग-धन्धोंने ऐसी आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है, उसका कारण यही है।

हम चाहते हैं कि हमारे शासक भी इसे पढ़ें और कुछ कर दिखावें।

चौथा अध्याय

जापानियोंकी दस विशेषताएँ

जापान ऐसा विश्वविख्यात राष्ट्र कैसे बन गया जो आज अधिकसे अधिक शक्तिशाली देशके भी छक्के छुड़ा देनेमें समर्थ है? इसका रहस्य उन दस विशेषताओंमें छिपा हुआ है जो वहाँवालोंके चरित्रमें पायी जाती हैं। वे ये हैं—

(१) हमेशा खुश रहनेकी आदत
(२) प्रकृतिसे अनुराग
(३) सादा जीवन
(४) संस्कृतिका दृढ़ आधार
(५) पारिवारिक जीवन

(६) स्वभावगत शिष्टता
(७) अपूर्व संघटन
(८) बेजोड़ ईमानदारी
(९) अनुशासनका प्राधान्य
(१०) ऊँची नैतिकता

(१) हमेशा खुश रहनेकी आदत

वास्तविक जापानकी मुख्य विशेषता, उस देशके सुन्दर होने और वहाँवालोंके चित्ताकर्षक स्वभावका कारण उनकी खुश रहनेकी आदत ही है। दूसरोंको प्रसन्न करनेकी इच्छा उन लोगोंमें निरन्तर विद्यमान रहती है, यहाँतक कि कभी कभी अधिक व्यवहारशील विदेशियोंका जी उनके चेहरोंपर हमेशा देख पड़नेवाली मुसकुराहटसे ऊब उठता है। कुछ विदेशियोंका ख़याल है कि जापानियोंके चरित्रकी यह विशेषता बिलकुल अस्वाभाविक है किन्तु मैं समझता हूँ कि यह उनका निरा भ्रम है।

जापानको कभी कभी "तोयो-अशिहारा मीज़ुहो-नो-कूनी" कहते हैं जिसका अर्थ हुआ सुखी लोगोंका द्वीप। इस विवरण-के अनुसार ईमानदारी और सचाई इस भूमिके निवासियोंकी विशेषताएँ हैं। वे धोखेबाज़ी और छलछिद्रको बिलकुल नापसन्द करते हैं।

आप चाहे किसी भण्डार-घरमें जाइये, मोटर बसपर यात्रा कीजिये, उपाहार-गृहमें जलपान कीजिये, आपके साथ हमेशा बड़ी ही शिष्टताका व्यवहार किया जायगा। आपका प्रत्येक आदेश बहुत ध्यानपूर्वक सुना जायगा और आपके साथ ऐसा व्यवहार किया जायगा मानो आप अपने घरके लोगोंके बीच ही

रह रहे हों। भीतर प्रवेश करते ही मधुर मुसक्यान तथा मीठे शब्दोंसे आपका स्वागत किया जायगा और जब आप चलने लगेंगे तब फिर कृतज्ञतापूर्ण शब्दों और वैसी ही मुसकराहटके साथ आपको विदाई दी जायगी। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँके रोज़गारकी तरक्क़ीमें इन सब बातोंसे भी बड़ी सहायता मिली है और इनकी वजहसे वहाँ पैसा खर्च करनेमें भी आनन्दका अनुभव होता है।

जापानियोंकी इस प्रभावोत्पादक मुस्कराहटके कई अच्छे कारण हैं। कुछ तो स्वाभाविक हैं, कुछ कृत्रिम। जो कृत्रिम कारण हैं वे भी उनके राष्ट्रीय चरित्रमें इस तरह मिल जुल गये हैं और इतने पुराने हो गये हैं कि अब उन्हें भी एक तरहसे स्वभावगत ही समझना चाहिये।

यह मुस्कराहट एक तरहका झूठा आवरण नहीं है, जैसा कि सन्देहशील और ऊपरसे देखनेवाला अजनबी समझता है, बल्कि वास्तविक चित्रको प्रतिबिंबित करनेवाला दर्पण है, जो शिन्तो धर्मके इस प्रथम सिद्धान्तसे उत्पन्न हुआ है कि जब कोई व्यक्ति ब्रह्मसे संपर्क स्थापित करता है तो वह वस्तुतः अपनी ही आत्माका प्रतिबिम्ब देखता है। परमात्मासे संपर्क होनेके कारण उपासककी यही स्थिति होती है। शरीरको भले ही कष्ट पहुँचे, किन्तु बौद्धोंके अनुसार आत्मा हमेशा ही शान्त रहती है; शिन्तो धर्मके अनुसार वह हमेशा मुस्कराती रहती है।

मैं नहीं समझता कि संसारमें ऐसी कोई जाति विद्यमान है, जो इतने दिनों तक जापानियोंकी तरह कठोर अनुशासनमें रही हो। इसे भी वहाँ शिष्टाचारका सुन्दर नाम दे दिया गया था। स्पार्टावालोंकी तरह ही उसका स्वरूप बड़ा कठोर था, यद्यपि उसकी वजहसे वे उनकी तरह विरक्तिवादी नहीं बने। मामूली

नियमोल्लंघनके लिए घोर यातना और मृत्यु तककी सज़ा दी जाती थी, इसीसे जापान संसारमें अत्यधिक सुसंस्कृत, परिणामतः अत्यधिक कृत्रिम राष्ट्र बन गया।

जो लोग इस तरह हमेशा "खुशदिल" कहे जाते हैं, साधारणतया उन्हें हम समझ नहीं सकते। हमें उनके उद्देश्योंके सम्बन्धमें सन्देह होता है। जब हम कुपित होते हैं तब उछलने कूदने और तोड़ने-फोड़नेपर उतारू हो जाते हैं। यदि हमें किसी व्यक्तिसे घृणा होती है, तो हम अपना यह भाव छिपा नहीं सकते। यदि हमारा कोई प्रिय व्यक्ति हमसे बिछुड़ जाता है तो हम रोते या लम्बी आहें भरते हैं, किन्तु इन सब परिस्थितियोंमें जापानी बराबर मुसकराते ही रहते हैं, यहाँ तक कि कभी कभी हमारे मनमें उनकी भर्त्सना करनेकी तीव्र इच्छा हो जाती है।

जो हो, इसे न तो पूर्णरूपसे कपटपूर्ण व्यवहार कह सकते हैं, न काम काजके लिए कृत्रिम रूपसे धारण की हुई प्रसन्नता और न वैराग्य। एक तो वे हँसते हुए लोग हैं, दूसरे वे बड़ी धीरताके साथ अपनेको सँभाले रखनेकी सामर्थ्य भी रखते हैं। संकटमें भी मुसकराते रहना, मानो उनके धर्मका अंग या बुशिदो (वीरधर्म) के रूपमें सामन्तशाहीके नीति-विधानका अवशेष है।

(२) प्रकृतिसे अनुराग

जापानियोंको प्रकृतिसे सच्चा अनुराग होता है। उनकी परम्परागत समाधि-पूजासे इस प्रकृति-प्रेमका घनिष्ट सम्बन्ध है। शायद दुनियाके और किसी देशमें प्रकृतिके प्रति इतना अनुराग नहीं पाया जाता जितना जापानमें देख पड़ता है। यह वहाँकी संस्कृतिका मानो अनिवार्य अंग है। जापानियोंकी इस

स्वाभाविक वृत्तिको देखकर वहाँकी सरकारने लम्बे चौड़े सुन्दर राष्ट्रीय पार्कों (हरितभूमियों) का जो आयोजन किया है, वह हमारे देशकी सरकारके लिए भी अनुकरणीय है। प्रत्येक नगरमें, साम्राज्यके प्रत्येक स्थलमें, जहाँ तहाँ सुन्दर पार्क बने हैं जहाँ लोग अपना दिलबहलाव कर सकते हैं। इनमें टहल कर वे देहातोंके सौंदर्य, फूलोंकी सुगन्ध और ताज़ी हवाके हितकर परिणामोंका उपभोग कर सकते हैं।

इस तरहके बड़े बड़े सार्वजनिक पार्कों तथा खानगी बागीचोंके निर्माणमें जापानी सौंदर्य और ललित कलाओंका ऐसा अनुराग प्रकट करते हैं जिससे उनमें तथा संसारकी अन्य जातियोंमें जो अन्तर है वह स्पष्ट हो जाता है। उनके लगाये हुए बागीचे बहुत ही खुशनुमा और मनोमोहक होते हैं जिनमें शान्त एवं निर्मल आनन्दका उनका ध्येय कार्यान्वित हुआ प्रतीत होता है और जिनमें चट्टानों, वृक्षों, तड़ागों तथा द्वीपोंका स्वाभाविक सौंदर्य छोटे छोटे प्राकृतिक दृश्योंके रूपमें प्रतिफलित सा होता हुआ प्रतीत होता है। इन छोटे छोटे बागोंमें आप नन्हें नन्हें पेड़ों और पौधोंको प्रत्यक्षतः फूलोंसे लदा हुआ देख सकते हैं; मानो पुष्प-विद्याके सुचतुर विशेषज्ञोंने ही उनमें यह करामात उत्पन्न कर दी हो। यह प्रकृति-प्रेम—प्रकृतिकी सुन्दर वस्तुओं और लुभावने स्थलोंके प्रति अनन्य अनुराग—जापानियोंकी स्वदेशभक्तिको और भी अधिक प्रगाढ़ बनानेमें सहायक होता है।

(३) सादा जीवन

जापानमें हमें घरू जीवनका बहुत ही मनोरम चित्र देखनेको मिलता है। यद्यपि यह सत्य है कि इसमें बहुत-सी रीति-

रस्में भी भरी हुई हैं; किन्तु ये रीति-रस्में भी सुन्दर बन गयीं हैं। हमेशासे यही होता आया है कि कुछ शिष्ट रिवाज जीवन-की रोज़मर्राकी बातोंमें घुलमिल जाते रहे हैं। सवेरा होते ही घरका मुखिया हाथ-मुहँ धोकर सूर्य भगवान्‌को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता और सिर झुकाये हुए इन सीधे-सादे शब्दोंमें उनका स्वागत करता है—'हे शक्तिसम्पन्न देव, आपकी जय हो।' इसके बाद देवताओंकी वेदीपर रखी हुई पूर्वजोंकी स्मृतिशिला-ओंके सामने चुपचाप प्रार्थना की जाती है। शामके समय लोग अपने अपने कामपरसे घर लौटते हैं। उस समय नहाने-धोने और पानी गिराने आदिकी आवाज़ जहाँ तहाँ सुन पड़ती है। गर्मीके दिनोंमें शामके समय यह एक तरहसे आम रस्म होती है जब कि लोग अपने अपने कठौते दरवाजोंके पास ला रखते हैं और वहीं बैठकर नहाते तथा बातचीत करते या झपकी लेते हैं।

रातके समय मकान तपस्वियोंके आश्रमोंकी तरह बन्द कर लिये जाते हैं, यद्यपि उनके भीतर हम काग़ज़की दीवारोंको हटाते हुए एक कमरेसे दूसरे कमरेमें आ जा सकते हैं। जापानकी बहुत-सी चीज़ोंकी तरह वहाँके मकान भी सरसरी तौरसे देखनेपर बहुत क्षण-स्थायी और तुच्छसे प्रतीत होते हैं, किन्तु उनके सम्बन्धकी अधिक जानकारी हो जाने पर यह भ्रम दूर हो जाता है। देखनेमें कमज़ोर मालूम होते हुए भी उनके नीचे एक ऐसी मजबूत तहसी होती है जो लचीले लोहेकी तरह झुक जानेपर भी धक्का खाकर टूटती फूटती नहीं, यहाँ तक कि भूकम्प इत्यादिके रूपमें ईश्वरीय प्रकोपका भी सामना वह कर सकती है। फूलसे छाये हुए लकड़ीके कमज़ोर ढाँचेसे वे दीख पड़ते हैं। उनके भीतर प्रायः कोई सामान नहीं रहता।

एक भी कुर्सी या आरामकी और कोई चीज़ नहीं देख पड़ती। यहाँतक कि एक वार्निशदार तसलेमें रखी हुई आगके सिवा गरमी उत्पन्न करनेका और कोई साधन भी वहाँ नहीं रहता। इसीके चारों तरफ़ ठंडीसे ठंडी रातोंमें महज़ एक रजाई ओढ़े हुए सब लोग बैठ जाते हैं। मकानके अन्दर एक दो तस्वीरें या सिद्धान्त वाक्य टँगे रहते हैं और दो एक सजावटकी चीज़ें भी देख पड़ती हैं; किन्तु कुर्सी टेबुल या किताबोंका प्रायः अभाव रहता है। खाना-पीना और सोना प्रायः फर्शपर ही होता है। जापानी तरीकेसे रहनेवाले संपन्न व्यक्तियोंके मकान भी प्रायः इसी तरहके होते हैं, यहाँतक कि एक शोगुनके महलका दृश्य भी इससे ज़्यादा भिन्न नहीं रहता। सब जगह खर्चकी किफ़ा-यत देख पड़ती है जिसकी ओर हमारा ध्यान उनके हँसमुख स्वभाव, शिष्टाचार और आवभगतके कारण जाने ही नहीं पाता। यही उनकी कला, संस्कृति और जातिकी गुप्त शक्ति है। सारांश यह कि मामूली कुटुम्बका कुल सामान प्रायः एक सन्दूकमें रखा जा सकता है। दिखावट उनमें प्रायः नामको भी नहीं रहती जिसका कारण उनका अज्ञान, संस्कृतिका अभाव या दरिद्रता नहीं।

जब मैं यह कहता हूँ कि जापानी बहुत सीधे होते हैं तो मेरा मतलब इतना ही है कि रहन-सहनके ढंग, सुखकी वासना और भावनाओंके प्रकट करनेमें उनमें बहुत सादगी देखी जाती है। किन्तु, जहाँतक बुद्धिका सम्बन्ध है, वे काफ़ी विचक्षण होते हैं। यह सादगी शिन्तो-बौद्ध-धर्मका [illegible] ही है। इसी बूतेपर जापानियोंपर यह जो [illegible] जाता है कि वे धर्मके प्रति उदासीन हैं, उसका मैं ज़ोरोंसे खंडन करता हूँ। यंत्रों और भौतिक सुविधाओंके लिए वे लोग जो

उत्सुकता प्रकट करते हैं उसका कारण भी धार्मिक ही है— उनके सर्वोच्च शासक और आध्यात्मिक पिता, ईश्वरके वंशज हिरोहितोने ही उन्हें आधुनिक बातोंका अनुसरण करनेका आदेश दिया है।

जीवन और उसकी ज़िम्मेदारियोंके प्रति उनकी उदासीनता एक तरहसे ऊपरी ही होती है। उनके सामने प्रत्यक्षरूपसे जीवनका एक खाका खिंचा रहता है जिसके अनुसार चलनेका प्रयत्न वे लोग प्रतिदिन करते रहते हैं। खेतोंमें या छोटे-मोटे कारखानोंमें जिन सीधे-सादे और शान्त मनुष्योंको काम करते हुए हम देखते हैं, उनमें अज्ञातरूपसे वह शक्ति विद्यमान रहती है जिसकी प्रेरणासे वे बिना किसी डींग हाँके या बिना चूँ चपड़के राष्ट्रके लिए बड़ेसे बड़ा आत्म-त्याग करने या कोई भी खतरा उठानेको तैयार हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि उनकी यह बाह्य उदासीनता उनके व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय चरित्रका ही एक अंग है।

सार्वजनिक इमारतों तथा उनके भीतर रखे जानेवाले सामान इत्यादिके सम्बन्धमें जापान सरकार अब भी बहुत सादगी और किफ़ायतसे काम लेती है। जहाँ व्यापार-मंडल, बैंक, बीमा कम्पनी आदिके दफ्तर बहुत ख़र्चीले और आकर्षक बनाये जाते हैं, वहाँ सरकारी इमारतें प्रायः बहुत ही सीधी-सादी बनी रहती हैं। जापानका पर-राष्ट्र कार्यालय तक जिसे देखकर विदेशी राष्ट्रदूत जापानके सम्बन्धमें तरह तरहका अनुमान लगा सकते हैं, बनावट तथा बाह्य रूप-रंगमें तड़क भड़कसे रहित और सादा है। वह लकड़ीका बना है। विभिन्न मन्त्रियोंके कार्यालय तथा सरकारके और और दफ़्तर भी इसी तरह सादगीके साथ लकड़ीके बने हुए हैं। अब अलबत्ता सर-

कार अपने लिए कुछ प्रभावोत्पादक भवन बनवा रही है। राष्ट्र-सभाके लिए जो नयी इमारत खड़ी की जा रही है, वह जब बन कर तैयार हो जायगी तब जापानी साम्राज्यको उसपर नाज़ होगा। १९३७ में जबतक वह तैयार नहीं हो जाती, तब तक जापानी डायट (राष्ट्रसभा) को अपने वर्त्तमान लकड़ीके बने भवनसे ही सन्तोष करना होगा। जापान यदि चाहे तो इन सब वस्तुओंमें बहुत पैसा खर्च कर सकता है, किन्तु वह व्यर्थकी शानमें रूपया फूँकनेके लिए उत्सुक नहीं मालूम होता।

सादगी और किफ़ायतशारीका यह भाव स्थल और नौ-सेना-विभागमें भी देख पड़ता है। सादी वर्दी तथा मामूली सुविधाओंके कारण कर्त्तव्य पालन करनेकी उनकी योग्यतामें कोई फर्क नहीं पड़ने पाता। जापानी सैनिकके पालन-पोषणमें उससे भी कम खर्चकी आवश्यकता होती है जितना भारतीय सैनिकके पीछे होता है। इतना होते हुए भी वहाँके सैनिकों और नाविकोंने उच्च नैतिकता तथा राष्ट्रीय भावका जो परिचय दिया है उसकी प्रशंसा सारे संसारने की है। महत्वपूर्ण बातोंपर ही वहाँ ज्यादा रुपया खर्च किया जाता है, ऊपरी रूप-रंग और तड़क-भड़कके लिए नहीं।

जापानमें सार्वजनिक नौकरियोंकी एक विशेषता यह है कि वहाँके कर्मचारी जो जनताके सेवक समझे जाते हैं सचमुच ही सेवा-भावसे प्रेरित होकर जनताकी सेवा करते हैं। छोटेसे छोटे व्यक्तिके साथ भी व्यवहार करते समय उदासीनता या औद्धत्य-का भाव नहीं देख पड़ता। सहायता प्रदान करनेकी प्रवृत्ति आपको सर्वत्र देख पड़ेगी—चाहे सरकारी दफ्तर हो, चाहे उपाहार-गृह या भण्डार-गृह हो। प्रत्येक स्थानपर आप सौजन्य

पूर्ण व्यवहार और आदेश-पालनमें पूर्ण तत्परताकी आशा कर सकते हैं। आज संसारमें संभवतः ऐसी कोई सरकार नहीं है जो अपने देशवासियोंके लिए उससे अधिक कुछ करती होगी जितना जापानकी सरकार करती है। वहाँके उद्योग-व्यवसायकी उन्नति और संसारमें चारों ओर जापानी मालकी बिक्री देखनेसे ही इस बातका पता चल जाता है कि वहाँकी सरकार द्वारा प्रदत्त सहायतासे देशका कितना उपकार हो रहा है।

(४) संस्कृतिका दृढ़ आधार

जापान ही आज एक ऐसा देश है जिसे इस बातका श्रेय प्राप्त है कि उसका बहुत प्राचीन काल तकका इतिहास अविच्छिन्न रूपसे ज्ञात है और जिसका शासन अज्ञात कालसे बराबर एक ही राजवंश द्वारा होता रहा है। जापानियोंके स्वभावकी एक मुख्य विशेषता यह है कि वे अपने पूर्वजों तथा शासकोंके प्रति अनन्य भक्ति प्रदर्शित करते हैं—यहाँ तक कि देवताओंकी तरह उन्हें मानते हैं—और युग युगमें प्राप्त अनुभवोंके आधार-पर बनी हुई परम्पराओंका भी सम्मान करते हैं। अन्य विशेष-ताएँ हैं उनकी सादगी, सौजन्य, प्रकृतिप्रेम, आत्माभिमान, देश-भक्ति, अध्ययनप्रियता, उद्योगशीलता और गहरी राष्ट्रीयता। ये विशेषताएँ उनकी प्राचीन परम्परा तथा जापानकी शासन-व्यवस्थासे ही उत्पन्न हुई हैं। परम्पराके अनुसार यह कहा जाता है कि जापानके शासक 'सूर्य देवी'के वंशज हैं। इसी तरह शासन-विधानकी पहली धारामें कहा गया है कि "जापानके साम्राज्यपर सम्राटोंकी ऐसी शाखा शासन करेगी जिसकी शृंखला अनन्त कालतक अक्षुण्ण बनी रहेगी।"

प्राचीन परंपराओंके भक्त होते हुए भी जापानियोंने पश्चिमकी सभ्यता और संस्कृतिका एक बड़ा अंश अपनानेमें आगा पीछा नहीं किया। इसके विपरीत, परंपरा-प्रेमसे उन्हें इस सभ्यताको अपने पूर्वजोंके अनुभवसे मिलान करनेमें सहायता ही मिली। सम्राट् तथा बड़े बड़े कार्मचारी और मामूली मज़दूर भी पूर्वजोंकी समाधियोंपर जाकर अपने विचारों एवं योजनाओंको उनकी आत्माओंके सामने रखते हैं। जीवनकी बड़ी बड़ी समस्याओंको हल करनेमें सहायता तथा प्रोत्साहन प्रदान करनेके लिए भी वे उनसे प्रार्थना करते हैं।

जापानी अपने देशको एक ऐसा बड़ा कुटुम्ब समझते हैं, जिसमें सम्राट्को सबपर समान रूपसे प्रेम करनेवाले पिताका स्थान प्राप्त रहता है और प्रत्येक पुत्र समस्त कुटुम्बकी सम्पत्ति अर्थात् पितृभूमिका हक़दार होता है। इसी तरह वे अपने अपने शासकोंकी एकमात्र शाखाका देवताओंके साथ सम्बन्ध मानते हैं। इन्हीं दो कारणोंकी वजहसे उनके हृदयमें देशके प्रति इतना प्रगाढ़ अनुराग होता है। अधिक व्यापक सार्वजनिक हितके सामने प्रत्येक जापानी अपने व्यक्तिगत हितकी अवहेलना करनेको तैयार रहता है। लोगोंको यह सुनकर आश्चर्य होता है कि बड़े बड़े बुद्धिमान् जापानी भी अपने सम्राट्को किस तरह ईश्वरका अंश मानते हैं। इस विषयपर वे लोग प्रायः किसी तरहकी बहस नहीं करते, केवल इतना ही कह देते हैं कि यह रुख हमारे स्वभावका ही एक अंग है। जन्मसे ही हमारे हृदयमें यह विश्वास जमा रहता है और चूँकि हज़ारों वर्षोंसे इसकी पुष्टि होती आ रही है इसलिए हमारे जातीय विश्वाससे इसके अलग होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। जिस तरह अपनी इच्छाके अनुसार किसी देशमें जन्म लेना हमारे

अधिकारमें नहीं है, इसी तरह वे लोग बिना किसी बहस-मुबाहसेके अपने शासकके दिव्य जन्मकी बात स्वीकार कर लेते हैं।

इस प्रकार जापानमें सम्राटों और पूर्वजोंका सम्मान किया जाता है, जिसका वहाँवालोंके लिए आश्चर्यजनक परिणाम होता है। पश्चिमकी तरहके बड़े बड़े गिरिजाघरोंके बजाय वहाँ बड़े बड़े समाधि-मंदिर होते हैं। कोई छोटे और कोई बड़े तथा कोई सादे और कोई भव्य। इन समाधि-मन्दिरोंका महत्व इसीलिए होता है कि जिनकी यादगारमें वे बनाये जाते हैं उनके प्रति लोगोंके दिलमें सम्मानकी भावना रहती है। बड़ी नम्रताके साथ जापानी लोग इन समाधि-मंदिरोंके दर्शनार्थ जाते हैं और अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम कर चुपचाप प्रार्थनाके लिए बैठ जाते हैं। यह सच है कि बाहरके यात्री उत्सुकतावश वहाँ जाकर इनकी पवित्रता भंगसी कर देते हैं; फिर भी, दर्शनार्थियोंके अविरत प्रवाहमें कोई कमी नहीं होती।

इन समाधिस्थलोंमें जाने पर ऐसा कुछ आभास सा होने लगता है मानो जीवित व्यक्तियोंके लिए यहाँ मृतात्माओंसे बातचीत करना संभव हो। मुसलिम समाधियोंकी तरह सालमें केवल एक बार नहीं, वरन् बार बार लोग वहाँ जाते हैं और तरह तरहसे उनकी सजावट की जाती है। इस प्रकार लोगोंको वहाँ जानेपर पुनः पुनः उन महापुरुषोंके विचारों, ध्येयों और कृतियोंका स्मरण होता रहता है जिनकी स्मृतिमें उनका निर्माण हुआ हो। उदाहरणके लिए टोकियोमें एक छोटीसी समाधि है जो देखनेमें तो बहुत सादगीसे बनी हुई मालूम होती है किन्तु सर्वसाधारण जिसे बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखते हैं। उसे शायद 'सैंतालीस रोनियोंकी समाधि' कहते हैं।

वह हमें उनकी वफादारी और स्वामिभक्तिका स्मरण दिलाती है। सैंतालीस सामुराइयोंकी इन समाधियोंके पास ही उनके स्वामीकी समाधि भी बनी हुई है, जिसका अन्यायपूर्वक अपमान किया गया था और जिसे बादमें फाँसीकी सज़ा दी गयी थी। अपने सरदारके प्रति किये गये इसी अपमान और अन्यायका बदला लेनेके लिए इन सैंतालीस व्यक्तियोंने आक्रमण कर उस शक्तिशाली सामन्तका वध कर डाला, जो उनके स्वामीकी विपत्तिका कारण था, और फिर सबने मिलकर हाराकीरी (आत्महत्या) कर ली।

जापानकी संस्कृति कई बातोंमें हमारी संस्कृतिसे मिलती जुलती है। देवताओं और प्रेतात्माओंकी पूजा जापानने भारतसे ही सीखी है। जापानी अपने घरमें मृतात्माओंके साथ इस तरह रहता है मानो वे जीवित ही हों और उनके मनमें अपने लिए अभिमानका भाव उत्पन्न करनेका प्रयत्न करता है। यह उसके धर्मका एक बड़ा अंग है। प्रत्येक घरमें देवताओंके लिए एक कोना या छोटी वेदी-सी होती है जो घरके अधिपति तथा उसके पूर्वजोंको मान्य देवताओंके नामपर बनायी जाती है। इसी तरह प्रेतात्माओंके लिए भी एक कोना रहता है जिसे 'बुतसुदन' कहते हैं, जहाँ छोटे छोटे चौकोर पत्थर लगे रहते हैं जिनपर पूर्वजोंके नाम खुदे रहते हैं। इन आत्माओंका स्वागत करना, इन्हें थोड़ासा भोजन-पानी देना और मार्ग बतलानेके लिए एक दीया जलाकर रखना आवश्यक समझा जाता है। तात्पर्य यह है कि जापानी लोग मृतात्माओंसे सम्पर्क बनाये रखते हैं और उनके साथ अपना सुख-दुःख भी बँटाया करते हैं। श्राद्ध करने और पूर्वजोंकी पूजा-अर्चा करनेकी भारतीय रीतिका ही यह रूपान्तर है।

(५) पारिवारिक जीवन

जापानियोंकी एक बड़ी विशेषता उनका स्पृहणीय पारिवारिक जीवन है जो उन्हें सहयोगकी तथा एक दूसरेके हितार्थ आत्मत्यागकी शिक्षा देकर एकताके सूत्रमें बाँधे रहता है। पत्नियाँ और लड़कियाँ सवेरेसे शाम तक बिना किसी तरहकी शिकायत किये पुरुषोंके साथ अत्यधिक परिश्रम किया करती हैं। मज़दूरोंको बहुत कम पारिश्रमिक मिलता है, किन्तु वे इतनी किफ़ायतसे रहते हैं कि उसीमेंसे कुछ बचा लेते हैं। वर्षोंतक नागासाकी बन्दरपर बड़े बड़े जहाज़ोंमें लड़कियाँ ही कोयला देनेका काम किया करती रहीं। पहाड़ी ज़िलोंमें बोझा उठानेका काम स्त्रियाँ ही किया करती हैं और वे इतना ज़्यादा बोझा उठा लेती हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। जापानमें परिवारकी तुलना जीवित शरीरसे की जाती है, जिसके अंगोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अंगीके हितको ही प्रधानता दी जाती है, भले ही इससे अंग-विशेषको क्षति पहुँचती हो। इसकी विस्तृत चर्चा एक स्वतंत्र अध्यायमें की जायगी।

(६) स्वभावगत शिष्टता

संसारकी यात्रा करते हुए मैंने जापानियोंको सबसे अधिक शिष्ट पाया। अमेरिका, इटली, आस्ट्रिया, ईरान और चीन देशके निवासी भी शिष्ट प्रतीत हुए और मैं उनकी शिष्टताका प्रशंसक भी हूँ, फिर भी इस गुणमें और कोई जाति जापानियोंको मात नहीं कर सकती। ब्रिटिश पर-राष्ट्र-विभागकी अनुमति न मिलनेके कारण रूस तो मैं नहीं जा सका, इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि नौकरों और मज़दूरोंके साथ वहाँ

कैसा व्यवहार करते हैं, पर जापानमें अपनी आँखोंसे मैंने देखा कि छोटेसे छोटे मज़दूरों और नौकरों, यहाँ तक कि डोमों मेहतरों तकके साथ, बन्धुओंका सा व्यवहार किया जाता है। नौकर वहाँ परिवारके अन्य सदस्योंके साथ भोजन करने बैठते हैं। मुझे जापानकी यह प्रथा देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके विपरीत, नौकरोंके प्रति हमारा व्यवहार इतना लज्जाजनक होता है कि कहनेकी आवश्यकता नहीं। हम प्रायः उन्हें उच्छिष्ट भोजन ही खानेको और फटे पुराने कपड़े पहनने-को देते हैं। इस विषयमें हमें जापानसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

(७) अपूर्व संघटन

जापान पहुँचने पर जिस बातकी ओर दर्शकका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित होता है, वह है जापानियोंका अपूर्व संघटन। वे जानते हैं कि कर्तव्य क्या चीज़ है। दैवके भरोसे कोई वस्तु छोड़ी नहीं जाती। सारे देशका संघटन एक तरीक़ेपर किया गया है और इसके लिए जो नियम बनाये गये हैं उनके अनु-सार कार्य करनेकी हर तरहसे कोशिश की जाती है। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करता है। परिणाम यह होता है कि निवासियों तथा यात्रियोंके लिए देशमें सुव्यवस्था और सुरक्षा विद्यमान रहती है।

छोटेसे छोटे श्रमिकसे लेकर बड़ेसे बड़े कर्मचारी तकके सम्बन्धमें आप देखेंगे कि वे जिस समय आपसे मिलनेका वादा करेंगे, ठीक उसी वक्त मिलेंगे और हमेशा निर्धारित समयपर ही अपना काम पूरा कर दिखायँगे। भारतमें दर्ज़ी, धोबी, चमार तथा ऐसे ही और पेशेवर लोग इस बातके लिए बद-

नाम है कि वे कभी अपने वादोंको पूरा नहीं करते, किन्तु जापानमें आपको ऐसी बात न देख पड़ेगी। जापानियोंके चरित्रकी यह एक बहुत बड़ी विशेषता है और इसकी रक्षा जो वे अभीतक कर सके हैं, इसकी वजह यह है कि प्रत्येक वस्तु यंत्रके पुरज़ोंकी तरह संघटित है और यंत्र नियमित रूपसे घड़ीकी तरह अपना काम करता रहता है।

(८) बेजोड़ ईमानदारी

जापानके व्यवसायियोंका तो मुझे कोई अनुभव नहीं है किन्तु वहाँके साधारण लोगोंके सम्बन्धमें अवश्य मैं अपने अनुभवसे कुछ कह सकता हूँ, क्योंकि मैं उनके बीचमें रह चुका हूँ। पुराने ज़मानेके भारतीयोंकी तरह जापानी लोग भी बड़े ही ईमानदार और सच्चे होते हैं। आपसके व्यवहारमें वहाँ ईमानदारीका दर्जा बहुत ऊँचा प्रतीत होता है। धनवानोंके तरीक़े भले ही अन्य देशोंके धनवानों जैसे हों, किन्तु ग़रीबों और मध्य श्रेणीके लोगोंमें अवश्य ही ईमानदारीकी मात्रा ज़्यादा देख पड़ती है।

जापानी नौकर बहुत ईमानदार होते हैं। वे अपने स्वामीकी सम्पत्तिको पवित्र धरोहर समझते हैं। टोकियोमें हम कई दिनोंतक घरसे बाहर रहे और यद्यपि न हमारे कमरोंमें ताले लगे थे, न सन्दूकोंमें, फिर भी हमारी एक पैसेकी भी कोई चीज़ कभी चोरी नहीं गयी।

चोरियाँ, हत्याएँ और डकैतियाँ वहाँ क्वचित् ही होती हैं। आपने पढ़ा ही होगा कि पुराने ज़मानेमें भारतीय भी अपने घरोंमें ताले नहीं लगाते थे, क्योंकि लोग बड़े ईमानदार होते थे। आज जापानके देहातोंमें आप वही बात देख सकते

हैं। यहाँ भी भारतीय परम्पराको सुरक्षित बनाये रखनेमें जापान समर्थ हुआ है, यद्यपि भारतमें अब यह प्रथा उत्तरके कुछ पहाड़ी जिलोंमें ही अवशिष्ट रह गयी है, जहाँके लोग ईमानदार, सच्चे और चोरी आदि दुर्गुणोंसे बचे हुए हैं। मैंने हिमालय पहाड़पर स्वयं ऐसे स्थान देखे हैं।

जब सन् १९२७ में हिमालय पहाड़पर मैंने भिन्न भिन्न स्थानोंमें लगभग हजार मीलकी यात्रा की, तब मैंने कई ऐसे स्थान देखे जहाँ चोरी नामको भी नहीं होती थी। हिन्दुस्थानके बिल्कुल उत्तरमें लद्दाखके प्रधान नगर लेहमें सड़कोंपर एक भी पुलीसमैनको न देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। जब मैंने काश्मीर राज्यकी ओरसे तैनात वहाँके भारतीय गवर्नरसे इस सम्बन्धमें प्रश्न किया तो उसने जवाब दिया कि "हमें पुलीसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यहाँ कोई अपराध नहीं करता। पुलीसके आगमनके साथ ही अपराधोंका होना भी जारी हो जायगा।" भारतकी इस विस्तृत भूमिपर ब्रिटिश-राज्यके झंडेकी रक्षा करनेके लिए तैनात भारतीय पुलीसपर कितना गहरा किन्तु साथ ही कितना सच्चा आक्षेप था! फिर भी, पुलीसका इसमें क्या दोष? इसकी जिम्मेदारी तो शासन-विभागपर है जो बिल्कुल अपढ़ और असभ्य लोगोंको कान्स्टे-बुलोंमें भरती करती है ताकि उन लोगोंसे ऐसे निरपराध भारतीय स्त्री, पुरुषों और बच्चोंको पिटवा सकें या गोलीसे उड़वा सकें जो अपने देशकी व्यवस्था स्वयं करनेका अधिकार माँगते हैं—चाहे उसे आप स्वराज्य कहिए या और किसी नामसे पुकारिए।

जापानकी पुलीस यहाँकी पुलीससे बिल्कुल ही दूसरी तरहकी होती है। इंग्लैंडमें मैंने पुलीसवालोंको अपना सबसे

बड़ा दोस्त पाया और यही अनुभव मुझे जापानमें हुआ है। वे बहुत ही सुशिक्षित, निडर, नम्र और मिलनसार होते हैं। उनकी पोशाक भय उत्पन्न करनेवाली नहीं होती जैसा कि ओडायर साहब चाहते थे कि भारतमें हो।

मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि जापानके सभी पुलीस-मैन निन्दासे परे हैं। हालमें लगभग आधे दर्जन मामले ऐसे पकड़े गये हैं जिनमें अपराधियोंके साथ पुलीसवाले भी शरीक थे। मैंने सुना है कि जापानके शिष्ट पुलीसवाले भी कभी कभी गर्हित उपायोंसे काम लेते हैं, खास कर उस समय जब कि उन्हें किसीपर इस बातका सन्देह हो कि वह राजको क्षति पहुँचाने-वाले किसी काम—उदाहरणार्थ, समष्टिवादी प्रचारकार्य—में सम्मिलित है। सौभाग्यवश मुझे इस तरहके व्यवहारका कोई अनुभव प्राप्त नहीं हुआ। जो हो, सब बातोंका विचार कर साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि वहाँ पुलीसके सदाचारसे अपराधोंकी वृद्धि रोकने, मुजरिमोंको दण्ड दिलाने और अपराध करनेवालोंका सुधार करानेमें विशेष सहायता मिलती है। पुलीसके अफ़सर स्वभावतः बड़े दयालु होते हैं और वे इस तरहके सार्वजनिक कार्योंमें भी भाग लेते हैं, जैसे गरीबों और दुखियोंकी मदद करना, जिसके लिए लोग पुलीसके ज़रिए चन्दा प्रदान करते हैं।

(९) अनुशासनका प्राधान्य

अनुशासन जापानके राष्ट्रीय जीवनकी आधारभूत शिला है। मैं साहसपूर्वक यह कह सकता हूँ कि अनुशासनमें जापानने संसारके अन्य सब देशोंको, जर्मनीको भी, मात कर दिया है। स्थल-सेना और नौसेनामें तो सभी देशोंमें अनुशासनकी

प्रबलता होती है, किन्तु जापानमें हमें वह शिक्षालयों, कार-खानों, सिनेमाघरों, खेलके मैदानों, रेलगाड़ियों, मोटरबसों, पार्कों आदिमें भी देख पड़ता है।

स्कूलोंमें सभी बच्चे गहरे नीले रंगकी पोशाक पहने रहते हैं। बालकोंके कपड़े तो फौजी ढंगके किन्तु बालिकाओंके मामूली यूरोपीय ढंगके होते हैं। हजारों विद्यार्थियोंके एक सी पोशाक पहिन कर फौजी ढंगपर क़वायद करते हुए चलनेका दृश्य बड़ा ही भव्य मालूम होता है। लाखोंमेंसे एककी भी रुचि फैशनकी ओर नहीं जान पड़ी। सबके बाल छोटे छोटे कटे हुए होते हैं और सब बन्द कालरके कोट तथा सैनिक ढंगकी टोपियाँ पहनते हैं।

आप कहीं भी चले जायँ आपको यही प्रतीत होगा कि आप एक अच्छे अनुशासनवाले देशमें हैं। हिन्दुस्थानमें रेलके स्टेशनों या सिनेमा-घरोंमें जैसे भद्दे दृश्य देख पड़ते हैं वैसे दृश्य जापानमें नहीं दिखाई देते। न किसीपर गालियोंकी बौछार की जाती है, न टिकट-घरोंके सामने एक दूसरेको धक्का देकर आगे बढ़नेका प्रयत्न होता है और न किसी अन्य तरहका झगड़ा-फसाद देख पड़ता है। यदि गलतीसे किसीके कन्धेका धक्का दूसरेको लग जाता है तो दोनों एक दूसरेको सिर झुका-कर तीन बार क्षमा-प्रार्थना करते हैं। टोकियोकी सड़कों-पर सवारीकी गाड़ियोंमें इतनी ज्यादा भीड़ रहती है कि खड़े होनेके लिए भी प्रायः स्थान नहीं मिलता। एक ही खण्डमें स्त्री, पुरुष और बच्चोंको कन्धेसे कन्धा सटाकर खड़े होना या बैठना पड़ता है, किन्तु कभी किसी स्त्रीको किसीके दुर्व्यवहारकी शिकायत नहीं करनी पड़ी।

हमारे लिए अनुशासनकी आवश्यकता

जापानकी जिस बातसे मैं सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ हूँ वह उनका अनुशासन ही है। जबतक किसी राष्ट्रमें अनुशासन का भाव न हो, तबतक बड़ी बड़ी बातें करना व्यर्थ है। क्या कभी हमारे नेताओंने नवयुवकोंके हृदयमें यह भाव भरने-की चेष्टा की है? क्या पुलीसने राहगीरों और सिनेमा-घरोंके दर्शकों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानोंमें एकत्र होनेवालोंको इसकी शिक्षा देनेकी परवाह की है? रेलके स्टेशनों और रेल-गाड़ियोंके भीतर, तथा नाटक-घरों और सार्वजनिक सभाओंमें देख पड़नेवाले अरोचक दृश्योंको बन्द करनेका क्या कोई उपाय हम नहीं कर सकते? अनुशासनके अभावमें न जाने कितने निरपराध या निर्दोष व्यक्तियोंको अपने प्राण देने पड़े हैं। हर-द्वारके मेलेमें एक दुःखद दृश्य मैंने अपनी आँखोंसे देखा था, जब कि गंगाजीमें डुबकी लगानेकी उतावलीके कारण ३४ यात्री भीड़में कुचल गये थे। इसी तरह न जाने कितनी बार गांधी जीको अनुशासनकी कमीके परिणामोंसे बचानेमें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। अनुशासनका अंगीकार किये बिना क्या हम कभी स्वतंत्र हो सकते हैं? इसकी शिक्षा हमें जापानसे लेनी चाहिए।

जापानका सारा राष्ट्र एक सुव्यवस्थित समूहकी तरह काम करता है। जब किसी कामको करनेका निश्चय एक बार हो जाता है, तब उसके विरोधमें एक भी आवाज़ कहीं सुनाई नहीं देती। वहाँ भी राजनीतिक समस्याएँ हैं और स्वार्थी राजनीतिज्ञोंकी भी कमी नहीं है, किन्तु उनका स्वदेश-प्रेम और नेताओंके प्रति भक्तिका भाव उन्हें समस्त राष्ट्रके

हितके सामने अपने व्यक्तिगत या दलगत हितोंकी अवहेलना करनेको प्रेरित करता है।

जिम्मेदारीका भाव

जब किसी सार्वजनिक पदाधिकारीके अधीनस्थ एकाध कर्मचारी कोई निन्दनीय कार्य कर बैठता है तो जबतक वह अपना त्यागपत्र नहीं दे देता तबतक उसकी आत्माको संतोष नहीं होता। इस तरह त्यागपत्र देनेकी घटनाएँ जापानमें अकसर हुआ करती हैं। उनके लिए किसी तरहका सार्वजनिक या दलकी ओरसे दबाव डालनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। आत्मानुशासन और आत्म-सम्मानकी भावनासे प्रेरित होकर ही प्रायः ऐसे लोग त्याग-पत्र दे दिया करते हैं। खेल-कूद, व्यवसाय-वाणिज्य, प्रेम और युद्धमें भी ऐसा ही हुआ करता है।

हमारे तथा-कथित नेताओंमेंसे कितने ऐसे हैं जिनके हृदयमें ज़िम्मेदारीका भाव, राष्ट्रीय अनुशासनका प्रेम लेशमात्रको भी हो? छोटे छोटेसे मतभेदोंको लेकर वे नयी दलबंदियाँ कर राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको धक्का लगानेके लिए तैयार हो जाते हैं और फिर भी वे राष्ट्रीय दलके नेता माने जाते हैं। यह कैसी शोचनीय स्थिति है!

निस्सन्देह भारतके स्वतंत्र होने पर शुरूमें ही हम लोगोंको अनुशासनकी आवश्यकता प्रतीत होगी और राजनीतिके क्षेत्रमें प्रत्येक दल, समूह या व्यक्ति अपना अपना स्वार्थ साधनेके लिए जो चेष्टा करता है उसका नियंत्रण करना आवश्यक होगा। अवश्य ही, हमें अपनी आवश्यकताओंके अनुरूप ही अपनी शिक्षाप्रणालीका पुनर्निर्माण करना पड़ेगा और उसे

ऐसा बनाना पड़ेगा जिससे हमारे यहाँके नवयुवकोंमें एकताका भाव तथा ऊँचे दर्जेकी स्वदेशभक्ति उत्पन्न हो सके।

जो हो, मेरा खयाल है कि नवयुवकोंमें वास्तविक अनुशासनका भाव भरनेके लिए इससे भी अधिक बड़ी शक्ति किंवा संस्थाकी आवश्यकता होगी। जापानकी सेना अन्य रूपसे देशकी चाहे जो सेवा कर रही हो, पर मैं तो समझता हूँ कि जापानके नवयुवकों तथा सर्वसाधारणमें अनुशासनका भाव जागरित कर वह देशका सबसे बड़ा उपकार कर रही है। वहाँके लोगोंपर आज उसका जितना नैतिक प्रभाव पड़ रहा है उतना और किसी एक संस्थाका नहीं पड़ रहा है।

(१०) ऊँची नैतिकता

नैतिकतासे यहाँ मेरा मतलब कामवासना सम्बन्धी सदाचारसे नहीं है, जैसा कि प्रायः हमारे देशमें समझा जाता है। जापानियोंमें शराब पीनेकी जो बुरी लत पायी जाती है और वहाँ जो निन्दनीय वेश्यावृत्ति देख पड़ती है, उसकी चर्चा मैं यहाँ न करूँगा। मेरा उद्देश्य इस अध्यायमें उनके नैतिक जीवनके उजले पहलूका वर्णन करना ही है। इस सम्बन्धमें मैं कह सकता हूँ कि उनकी नैतिकता बहुत ऊँचे दर्जेकी है। जापानी भाषा गाली देनेके या गन्दे शब्दोंसे बिलकुल मुक्त है। अन्य किसी भाषाके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती। गाली देनेके लिए वहाँ एक ही शब्द है—बाका (जैसे बँगलामें 'बोका')=मूर्ख।

वहाँ सड़कोंपर या घरोंमें अपशब्द कभी नहीं सुन पड़ते। मुझे यह लिखते हुए शरम मालूम होती है कि हमारे देशके कुछ कुटुम्बोंमें, चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित, बच्चोंको

घुड़कते समय मा-बाप अक्सर बहुत अशिष्ट और कभी कभी गन्दे शब्दोंका प्रयोग करते हैं, किन्तु जापानमें ऐसे शब्द प्रचलित ही नहीं हैं। क्रुद्ध होने पर वहाँ माता-पिता अपने बच्चोंसे सिर्फ इतना ही कहते हैं 'क्या तुम जापानी नहीं हो जो ऐसा काम करते हो' ? यह सुन कर लड़के लज्जित हो जाते हैं, क्योंकि इससे उनके आत्मसम्मानको चोट लगती है। कहाँ तो जापानमें बालकों तकको जापान तथा जापानी वस्तुओंका अभिमान होता है और कहाँ हमारे देशमें पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कुछ लोग 'भारतीय समय, भारतीय चित्र, भारतीय गप्प' इत्यादि कहकर अपने देशकी खिल्ली उड़ाते हैं। ईश्वर करे, हम लोग अपने चरित्र-निर्माणकी ओर अधिक ध्यान दें, क्योंकि चरित्र-निर्माण ही तो राष्ट्र-निर्माण है।

पाँचवाँ अध्याय

अनिवार्य शिक्षा

मैं शिक्षाका विशेषज्ञ नहीं हूँ और न मैं ऐसे महत्वपूर्ण विषयपर टीका-टिप्पणी करनेका दावा ही कर सकता हूँ। मैं तो पाठकोंके सामने जापानकी शिक्षाके संबंधमें केवल कुछ मुख्य मुख्य बातें ही रख देना चाहता हूँ। इसे पढ़कर पाठक स्वयं ही समझ जायँगे कि सच्ची शिक्षा ईश्वरका कितना बड़ा आशीर्वाद है और क्यों ७० वर्षके भीतर ही जापान शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य तथा संयुक्त राज्य अमेरिकाकी ईर्ष्याका कारण बन गया, जब कि १८० वर्षतक ब्रिटिश अभिभा-

बकतामें रहकर भी भारतको संसारमें कोई स्थान प्राप्त न हो सका। इसका रहस्य जापानमें अनिवार्य शिक्षाका जारी किया जाना ही है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज वहाँके ९९ प्रतिशत निवासी पढ़े लिखे हैं, जब कि भारतका औसत प्रतिशत ९ ही है।

गाँव-गाँवमें शिक्षाका प्रकाश

मार्च १९३१ में जापानमें ४५८९८ स्कूल तथा विद्यालय थे और इनमें १२८४७७३० शिक्षार्थी थे। ये स्कूल सारे देशमें प्रति १० वर्ग मीलमें ३ के हिसाबसे फैले हुए थे और प्रति १०० व्यक्तियोंकी आबादीमेंसे औसतन २० उनमें शिक्षा पाते थे।

इसका मतलब यह हुआ कि जापानमें कोई ऐसा गाँव नहीं जहाँ लोगोंको हम पढ़ते लिखते न देखते हों। वहाँकी गरीबसे गरीब जनतामें भी बहुत ही थोड़े व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो अपने विचार लिखकर न प्रकट कर सकते हों। अनिवार्य सैनिक सेवाके लिए वहाँ जो वार्षिक परीक्षाएँ हुआ करती हैं उनसे यह स्पष्ट प्रमाणित हुआ है कि सैनिक सेवाके लिए आवश्यक उम्रवाले विद्यार्थियोंमें शायद ही ऐसा कोई हो जो पढ़ना-लिखना और मामूली हिसाब न जानता हो। मामूली आदमीको यह देखकर आश्चर्य होगा कि जापानने, जिसे यूरोप और अमेरिकाके संपर्कमें आये हुए अभी अर्द्ध शताब्दीसे कुछ ही अधिक समय हुआ होगा, शिक्षामें इतनी ज़्यादा उन्नति इतने थोड़े समयके भीतर कर ली। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि जापान एक प्राचीन देश है और जिस समय वहाँ पश्चिमी सभ्यताका प्रवेश होना शुरू हुआ उस समय वह उसे ग्रहण कर आत्मसात् करनेके क़ाबिल हो चुका था।

सम्राट् मीजीके शासनकालके पूर्व बौद्ध तथा कनफ्यूशियन प्रभावके कारण जापानने शिक्षासंबंधी विचारोंमें कई बार परिवर्तन किये, किन्तु वहाँके लोग इन विदेशी विचारोंको अपने अनुरूप बना सके और अपनी राष्ट्रीय शासन-व्यवस्था तथा भावनाओंकी सहायतासे उन्होंने अपनी एक विशेष संस्कृति बना ली। शासनकालके प्रारंभमें जापानवाले पश्चिमी सभ्यताको अंगीकारकरनेके लिए इतने उत्सुक हो उठे थे कि उन्होंने पश्चिमकी प्रत्येक बातको ग्रहण करना शुरू कर दिया और शिक्षाके काममें लगे हुए लोगोंने सब तरहके सिद्धान्तोंका अनुसरण करनेका निश्चय किया। इसपर अक्तूबर १८९० में शिक्षाके संबंधमें एक शाही आदेश जारी किया गया, जिससे देशके लिए शिक्षा-संबंधी निश्चित नीति निर्धारित कर दी गयी। देशके सभी स्कूलोंने इसी नीतिका अनुसरण किया। परिणाम यह हुआ कि अब वहाँ ऐसी शिक्षाका प्रसार हो सका है जो सब तरहसे राष्ट्रीय आवश्यकताओंके अनुकूल है। आज वहाँकी शिक्षा किसी भी बातमें पश्चिमी देशोंकी तुलनामें किसी तरह कम नहीं है। पश्चिमी और पूर्वीय सभ्यताओंका इस तरह सफलतापूर्वक सम्मिश्रण करनेके कारण जापान बधाईका पात्र है।

उपर्युल्लिखित शाही फरमानके एक अंशका अनुवाद नीचे दिया जाता है—

"हे प्रिय प्रजागण, अपने माता-पिताके प्रति भक्ति और भाई बहनोंके प्रति स्नेहका व्यवहार करो। दम्पत्तिकी हैसियत से परस्पर मिलकर रहो। सच्चे मित्र बनो। नम्रता धारण करो। सभीका उपकार करो। विद्याके अध्ययन तथा कलाओंके अभ्यास द्वारा अपनी मानसिक और नैतिक उन्नति करो। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक हित तथा सम्मिलित लाभकी वृद्धि

करो। सर्वदा शासन-व्यवस्थाका आदर करो और क़ानूनोंका पालन करो। यदि संकटका समय आ उपस्थित हो तो साहसके साथ राजको आत्मसमर्पण कर दो, इस प्रकार हमारी शाही गद्दीकी रक्षा करो और उसकी उन्नतिका सिलसिला जारी रखो। इस तरह तुम केवल हमारे सच्चे प्रजाजन ही न होओगे वरन् अपने पूर्वजोंकी श्रेष्ठ परम्पराकी गौरव-वृद्धि करोगे इत्यादि, इत्यादि।"

वर्त्तमान शिक्षा-प्रणालीकी स्थापना सन् १८७२ में हुई थी। वह फ्रांस तथा संयुक्तदेश अमेरिकामें प्रचलित शिक्षापद्धतिके आधारपर बनायी गयी थी, किन्तु कन्फ्युशियन प्रणालीकी सभी अच्छी बातें उसमें रहने दी गयी थीं। नूतन शासनकी स्थापना होनेके चार वर्ष बाद उसके अनुसार काम होना शुरू हुआ।

सरकारी नियंत्रण

इस समय सरकार ही शिक्षा-विभाग द्वारा यहाँकी शिक्षा-प्रणालीका नियंत्रण करती है, यद्यपि अंशतः यह कार्य स्थानीय सार्वजनिक संस्थाओंके भी सिपुर्द है, जिसका उद्देश्य स्थान-विशेषकी आवश्यकताओंकी ओर ध्यान देना है। दूसरे लोग भी कुछ शर्त्तोंपर खानगी स्कूल तथा अन्य शिक्षा-संस्थाओंकी स्थापना कर सकते हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा

जापानमें २५६०० प्रारम्भिक शालाएँ हैं, जिनमें लगभग ९९ लाख विद्यार्थी पढ़ते हैं। मामूली दर्जेका पाठ्यक्रम ६ वर्षका है और ऊँचे दर्जेका २ या ३ वर्षका। सन् १८७२ में बने हुए क़ानूनके अनुसार प्रत्येक बच्चेके लिए, चाहे वह किसी भी

सामाजिक स्थितिका हो, ४ वर्षतक, (६ वर्षसे १० वर्षकी अवस्थातक) पाठशालामें जाना लाज़मी था। कुछ समयके बाद अवधि ६ वर्षकी कर दी गयी और अब ऐसा प्रतीत होता है कि शीघ्र ही वह बढ़ाकर ८ वर्ष कर दी जायगी। प्रारम्भिक शालाओंमें सारी पढ़ाई जापानी भाषाओं द्वारा होती है। बड़े शहरोंके थोड़ेसे स्कूलोंको छोड़कर और कहीं भी विदेशी भाषा नहीं पढ़ायी जाती। जो बच्चे स्कूलोंमें जाने लायक अवस्थाके हैं (६ से १२ वर्ष तक) उनमेंसे ९९.४८ प्रतिशत बच्चे स्कूलोंमें जाते हैं। यह औसत काफी ऊँचा है और संसारके किसी भी देशके साथ इसकी तुलना की जा सकती है। प्रारम्भिक शिक्षाका आश्चर्यजनक प्रसार हो जानेसे वहाँवालोंका कितना मानसिक तथा नैतिक विकास हुआ है, यह इसीसे स्पष्ट है कि अनिवार्य सैनिक सेनाके लिए परीक्षामें भर्ती होनेवाले अपढ़ लोगोंका औसत जहाँ सन् १९२६ में '८२१ था वहाँ १९३० में '४८२ ही रह गया।

प्रत्येक नगर और प्रत्येक गाँववालोंका यह फ़र्ज़ समझा जाता है कि वे अपने यहाँ एक या एकसे अधिक स्कूल चलावें। गाँववालोंपर खर्चका भार अधिक न पड़ने पावे, इस खयालसे सरकार काफ़ी मदद देती है। पढ़ाई कैसी हो, अध्यापकोंकी कमसे कम योग्यता कितनी हो, सफाई इत्यादिका ध्यान कहाँ तक रखा जाय, पाठ्य-पुस्तकोंका चुनाव कैसे हो—इत्यादि विषयोंके सम्बन्धमें सरकारने कुछ नियम बना दिये हैं और यद्यपि वहाँके अध्यापकोंको अच्छी अच्छी तनखाहें दी जा रही हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता, फिर भी मामूली मुल्की कर्मचारियोंकी तुलनामें उन्हें अधिक उदारतापूर्वक पेंशन दी जाती है। सारांश यह कि जापानकी प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणाली

वहाँकी एक ऐसी विशेषता है जिसके लिए जापानको गर्व हो सकता है।

अनिवार्य शिक्षाका परिणाम

अनिवार्य शिक्षासे जापानको क्या लाभ हुआ है, यह बतानेके लिए डाक्टर निटोबी नामक विद्वान्‌की पुस्तक 'जापान' से एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"हमारी स्कूल स्थापित करनेकी प्रणालीके अति-सङ्गठनके सम्बन्धमें चाहे जो दोष देख पड़ें किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इससे देशको आश्चर्यजनक लाभ हुआ है। प्रान्तीय बोलियोंमें पहले जो बहुत ज्यादा अन्तर रहा करता था वह अब नहीं रह गया है। कुछ ही वर्ष पहले उत्तर-पश्चिमका कोई भी आदमी दक्षिण-पूर्वके अपने ही देशभाईसे ठीक तरहसे बातचीत नहीं कर सकता था। एक ही तरहकी शब्दावली और समान वाक्य-विन्यासका उपयोग करते हुए भी दोनों एक दूसरेको नहीं समझ सकते थे, क्योंकि उनके बोलने और उच्चारण करनेके ढङ्गमें आकाश-पातालका अन्तर था।

"अनिवार्य शिक्षाका एक प्रभाव यह और हुआ कि सारे देशमें मासिक-पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रोंका बहुत अधिक प्रचार हो गया है। इनमेंसे दो ऐसे हैं जिनकी १५ लाख कापियाँ प्रतिदिन छपती हैं। देशव्यापी शिक्षा-प्रचारका इससे भी अधिक स्पष्ट प्रमाण यह है कि वहाँके प्रायः सभी दैनिक समाचार-पत्रों-का प्रथम पृष्ठ सिर्फ किताबों और पत्रपत्रिकाओंके विज्ञापनसे भरा रहता है।

लाज़िमी तालीमका सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव तो शायद सर्वसाधारणकी मानसिक और सामाजिक स्थितिपर हुआ

है। जापानी स्कूलोंमें श्रेणीगत अन्तर नहीं दिखाई देता, जन्म या धन-दौलतके कारण किसी तरहका भेद-भाव बिल्कुल नहीं दिखाई देता। लोक-तन्त्रके प्रचारके लिए स्कूल सबसे शक्तिशाली साधन है। वह इस कार्यको सब छात्रोंके प्रति एकसा व्यवहार प्रदर्शित कर पूरा करता है। जापानमें कभी कोई धनवान् माता-पिताओंको यह शिकायत करते नहीं सुनता कि हमारे कुलीन बच्चोंके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा कि ग़रीब बच्चोंके साथ और न कभी कोई ग़रीब माता-पिता ही यह कहते हुए सुने जाते हैं कि स्कूलमें हमारे प्यारे बच्चोंका तिरस्कार किया जाता है। यद्यपि बहुतसे अमीर-उमरा अपने बच्चोंको कुलीनोंके स्कूलोंमें भेजते हैं, जो खास तौरसे उनके लाभार्थ खोले गये हैं, फिर भी इसमें मध्य-वित्त लोगोंके बच्चे भी बिना किसी रुकावटके भरती कर लिये जाते हैं।"

माध्यमिक शिक्षा

प्रारम्भिक शालाओंसे प्रति वर्ष जो १८ लाख लड़के और लड़कियाँ निकलती हैं उनमेंसे १० प्रतिशत लड़के और ६ प्रतिशत लड़कियाँ माध्यमिक शालाओंमें अपनी पढ़ाई जारी रखती हैं। लड़कोंके लिए कुल १५१२ माध्यमिक [illegible] [illegible] हैं। इनमेंसे ५५५ मिडिल स्कूल और २५७ [illegible] [illegible] स्कूल हैं। मिडिल स्कूलोंमें ५ वर्षकी पढ़ाई होती है और पाठ्य विषयोंमें नीति-विज्ञान, जापानी साहित्य, चीनका प्राचीन साहित्य, अंग्रेजी, जर्मन या फ्रान्सीसी भाषा, इतिहास, भूगोल, गणित, पदार्थविज्ञान, रसायनशास्त्र, क़ानून और अर्थ-शास्त्र, व्यावसायिक शिक्षा, चित्रकला, गाना और व्यायाम

शामिल है। औद्योगिक शालाओंमें ११९ बढ़ईगिरी इत्यादिके, ३२९ कृषि-सम्बन्धी, २९६ व्यापार-सम्बन्धी, १२ समुद्रविद्या सम्बन्धी और १९१ अन्य स्कूल हैं। इसके अतिरिक्त १५००० से अधिक विशेष औद्योगिक स्कूल हैं जिनका उद्देश्य सामान्य औद्योगिक स्कूलोंमें शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियों-को दो तीन वर्षतक विशेष रूपसे व्यावसायिक शिक्षा देना है। जैसे लड़कोंके लिए मिडिल स्कूल हैं वैसे ही लड़कियोंके लिए हाई स्कूल स्थापित हैं, जिनकी पढ़ाई चारपाँच वर्षमें खतम होती है। लड़कियोंके हाई स्कूलोंकी संख्या ९७० है। इन स्कूलों-की एक विशेषता यह है कि इनमें शिष्टाचार भी सिखाया जाता है जिसमें चाय तैय्यार करने और परोसनेका तरीक़ा तथा फूलोंके सजानेकी कला भी शामिल है। इस उद्देश्यसे स्कूलमें एक ख़ास मकान बनाया जाता है जिसमें एक कमरा होता है जिसे हम आचार-व्यवहारकी प्रयोगशाला कह सकते हैं। विवाहकी उम्र धीरे धीरे बढ़ रही है। अधिकतर लड़कियाँ अब २२, २३ वर्षकी उम्रमें विवाह करती हैं, इसलिए डिगरी हासिल करने और विवाहित होनेके बीचका समय घर-गृहस्थीका काम करने या कपड़ेकी सिलाई, सङ्गीत, चाय-परोसना, फूलोंकी सजावट तथा गृह-विज्ञान आदिके सीखनेमें लगाया जाता है। बड़े शहरोंकी लड़कियोंमें अब दफ़्तरोंमें काम करनेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है।

उच्च तथा विशेष शिक्षा

जो युवक या युवतियाँ विश्वविद्यालयकी शिक्षा प्राप्त करना चाहती हैं उन्हें पहले उच्चतर विद्यालयोंमें प्रवेश करना पड़ता है, जिनमें कुछमें ऊँचे दरजेकी पढ़ाई होती है और कुछमें नीचे

तथा ऊँचे दोनों दरजोंकी पढ़ाई होती है। पहलेके लिए तीन वर्ष और दूसरेके लिए सात वर्षका समय देना पड़ता है। जापान-में इस तरहके ३२ उच्चतर विद्यालय हैं। उच्च कक्षाओंमें प्रवेश पानेके लिए उतनी ही योग्यताकी आवश्यकता है जितनी मिडिल स्कूलोंके पाँचवें वर्षकी योग्यता होती है और निम्न कक्षाओंमें प्रवेश करनेके लिए उतनी ही योग्यता होनी चाहिये जितनी मिडिल स्कूलोंमें प्रवेश पानेके लिए होती है।

४६ विश्वविद्यालय

जापानमें ६ शाही विश्वविद्यालय हैं। सिउल (कोरिया) और ताईहोकू (फ़ारमोसा) के विश्वविद्यालय अपनी अपनी औपनिवेशिक सरकारोंके अधीन हैं। इनके अतिरिक्त १२ सरकारी, दो सार्वजनिक और २४ खानगी विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सभी उच्च श्रेणीके विद्यालय बड़े शहरोंमें ही स्थापित हैं।

उच्च श्रेणीके बहुसंख्यक व्यावसायिक विद्यालयोंमें १८ उपयोगी कलाओं-संबंधी, ११ कृषिसंबंधी, ११ व्यापारके और २ नाविक-विद्याकी शिक्षा देनेवाले विद्यालय हैं, जिनमें माध्य-मिक विद्यालयोंसे निकले हुए स्नातकोंको उच्चतर पाठ्यक्रमकी शिक्षा दी जाती है। उनमें तीन वर्षकी पढ़ाई होती है और उनका दर्जा विश्वविद्यालयसे कुछ नीचा होता है। इस तरह-के बहुतसे विद्यालय खानगी तौरपर भी चलाये जाते हैं।

अध्यापकोंकी शिक्षाके लिए १०५ मामूली नार्मल स्कूल तथा ३ उच्च नार्मल स्कूल वहाँ हैं। इनके सिवाय १४०० किण्डर गार्टन स्कूल, ७३ अन्धोंके स्कूल, १२२ गूँगे बहरोंके स्कूल और १८८० अन्य स्कूल हैं।

कुछ विशेषताएँ

अब मैं जापानी शिक्षाकी कुछ विशेषताओंका उल्लेख करता हूँ। वहाँकी शिक्षा-प्रणाली इतनी व्यापक और सर्वतोमुखी है कि ऐसा कोई भी विषय, जिसमें मनुष्य दिलचस्पी लेता हो या जो उसके लिए उपयोगी हो, छूटने नहीं पाया है, और न वहाँके नागरिक जीवनका कोई पहलू ऐसा है जिसके लिए पूरी-से पूरी शिक्षाका प्रबन्ध न किया गया हो। आरंभिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य है और उसने अब बहुत ज्यादा तरक्की कर ली है। वहाँके बालकोंकी तन्दुरुस्ती, स्फूर्ति और प्रफुल्लता उल्लेखनीय है। सड़कोंपर जब हम समान वेषभूषा धारण किये हुए अनुशासित विद्यार्थियोंकी लंबी कतारें देखते हैं तो हमें वे सम्यग् शिक्षा प्राप्त सैनिकों जैसे दीख पड़ते हैं। प्रत्येक जापानी छात्र अपने देशका एक सैनिक ही है।

शिक्षाका माध्यम

भारतके देशभक्त शिक्षा-विशेषज्ञ चिरकालसे इस बातपर ज़ोर देते आ रहे हैं कि भारतीय भाषाएँ ही शिक्षाका माध्यम बनायी जायँ, किन्तु विश्व-विद्यालयोंपर सरकारी आधिपत्यके कारण इसमें बाधा पड़ती रही है। कुछ संकुचित मनोवृत्ति-वाले लोगोंका यह खयाल है कि अंग्रेज़ीको ही शिक्षाका माध्यम बने रहने देना चाहिए। यदि वे जापान आवें तो यहाँ छोटे दर्जेसे लेकर बड़े दर्जेतककी कुल पढ़ाई जापानी भाषा द्वारा होती देखकर उनकी आँखें खुल जायँगी। यहाँके विश्वविद्या-लयोंके प्रत्येक विभागमें जो पाठ्यपुस्तकें रखी गयी हैं, उन सबकी तथा अनुसन्धान और विज्ञान-सम्बन्धी सब पत्र-पत्रि-

बच्चोंकी क़वायद

काओंकी भाषा जापानी ही होती है। भारतवर्षमें भी हैदराबादके उसमानिया विश्वविद्यालयने उर्दूको शिक्षाका माध्यम बनाकर हमारे सामने जो उदाहरण उपस्थित किया है, उसका अनुसरण करनेमें अन्य विश्व-विद्यालयोंको क्या कठिनाई है, यह मेरी समझमें नहीं आता।

प्रारम्भिक शिक्षापर अधिक व्यय

सन् १९३१ में जापानने शिक्षाके पीछे कुल ६४,९६,६७,४२१ येन खर्च किया। इसमेंसे १४३,२०,००२ येन सरकारी खजानेसे और ४०,६३,४७,४२९ येन सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा लगाया गया। इसी समय भारतवर्षमें शिक्षाके पीछे २७,४२,८२,०१८ रुपये खर्च किये गये। इसमेंसे १७५,००३,५४४ सार्वजनिक संस्थाओंसे प्राप्त हुए। हमारे देशमें प्रति विद्यार्थीके पीछे लगभग २३ रु० १० पाई खर्च पड़ता है, किन्तु जापानका औसत ७ येनसे ८॥ येनके बीचमें है। इसका कारण यह है कि भारतमें तथा-कथित उच्च शिक्षाके पीछे (अर्थात् प्रिन्सिपलों और प्रोफेसरोंको मोटी मोटी तनखाहें देनेमें) ज्यादा रुपये खर्च किये जाते हैं किन्तु जापानमें कुल शिक्षा-व्ययका ½ से भी ज्यादा प्रारम्भिक शिक्षामें खर्च किया जाता है।

शिक्षा और धर्म

भारतकी वर्त्तमान साम्प्रदायिक समस्या उन लोगोंके कारण उत्पन्न हुई है, जो धार्मिक विद्यालयोंमें साम्प्रदायिक ढङ्गकी शिक्षा पाते रहे हैं। पञ्जाब ऐसे धार्मिक विद्यालयोंका प्रधान केन्द्र है। इसीसे वह साम्प्रदायिक झगड़ोंका प्रधान क्षेत्र बना हुआ है। इस सम्बन्धमें हमें जापानसे सबक़ लेना चाहिए।

वहाँ स्कूलोंके पाठ्यक्रममें धर्मको नामके लिए भी स्थान नहीं दिया गया है। कोई धार्मिक संस्था अपनी तरफसे जो स्कूल चलाती है, उसमें वह नियमित पाठ्यक्रमके भीतर अपने सिद्धान्तोंको भी स्थान दे सकती है। फिर भी धार्मिक विद्यालयोंमें जो शिक्षा दी जाती है उसमें धर्मान्धतापर ज़ोर नहीं दिया जाता और न भारतके साम्प्रदायिक विद्यालयोंकी तरह वहाँ असहिष्णुता अथवा अन्य धर्मोंके प्रति घृणाका भाव ही फैलाया जाता है।

यदि मुझे एक दिनके लिए भारतवर्षका अधिनायक बननेका मौक़ा मिल जाय तो पहला काम जो मैं करूँगा वह यह है कि इन साम्प्रदायिक विद्यालयोंको एकदम बन्द कर दूँ और इस प्रकार विषाक्त तथा अराष्ट्रीय भावोंसे लाखों नवजवानोंकी रक्षा करूँ। मैं इस बातको माननेसे तो इनकार नहीं कर सकता कि देशमें साक्षरता और राजनीतिक जाग्रति फैलानेमें इन विद्यालयोंने भी मदद पहुँचायी है। किन्तु साथ ही मुझे यह कहना पड़ता है कि उन्होंने नवयुवकोंके कोमल हृदयोंमें द्वेष और फूटके बीज बोकर देशकी बड़ी भारी हानि की है और इस प्रकार भारतवर्षमें अपनी सत्ता अक्षुण्ण बनाये रखनेमें अंग्रेज़ोंकी सहायता की है व अब भी कर रहे हैं।

"तितलियों" की आवश्यकता नहीं

हमारे देशके महिला-विद्यालय प्रायः ऐसी नवयुवतियाँ तैयार करनेमें ही व्यस्त हैं जिन्हें रङ्ग-बिरङ्गी पोशाक पहननेके कारण हम नारी रूपमें तितलियाँ कह सकते हैं और जो बड़ी आसानीसे क्षय-रोगकी शिकार बन जाती हैं, क्योंकि वे घर-गृहस्थीका ऐसा कोई काम नहीं करतीं जिससे किसी तरहका व्यायाम हो सके। इसके विपरीत, जापान अपने यहाँकी

लड़कियोंको सच्ची शिक्षा प्रदान कर अत्यन्त स्वस्थ, शक्ति-सम्पन्न और प्रतिभायुक्त नारीवर्गकी सृष्टि कर रहा है, जिसका प्रत्येक सदस्य देशका भविष्य सुधारनेमें सम्यग् रूपसे हिस्सा बँटा रहा है। लड़कियोंके स्कूल प्रायः देशभक्त और कार्यक्षम माताओंकी शिक्षाके केन्द्रोंका काम देते हैं। हाई स्कूलोंमें लड़कियोंको सङ्गीत, चित्रकारी, नृत्य और फूल सजानेकी कलाका ज्ञान कराया जाता है। इन ललित कलाओंके अतिरिक्त भोजन बनाना, कपड़े धोना, दर्जीगिरी और गुलकारी इत्यादि उपयोगी कलाएँ भी सिखलायी जाती हैं।

लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंके स्कूलोंके रूपरङ्ग इत्यादिमें स्थानीय परिस्थितिके अनुसार अधिक भेदभाव हुआ करता है। किन्तु जहाँतक मुख्य बातोंका सम्बन्ध है वहाँतक उनमें प्रायः समानता ही रहती है। इन स्कूलोंकी लोकप्रियता इसीसे स्पष्ट है कि इनमें लड़कियोंकी बहुत बड़ी संख्या—लगभग ८० हज़ार—१४ वर्षकी उम्रमें प्रारम्भिक शालाओंकी पढ़ाई समाप्त करनेके बाद भरती होती है और ४-५ वर्षतक विद्याध्ययन करती है। मध्यवित्त श्रेणीकी लड़कियोंके विवाहका सन्तोषजनक सम्बन्ध करानेके लिए स्कूलका उपाधि-पत्र प्राप्त करना एक तरहसे अनिवार्य-सा हो गया है।

हम पहले कह चुके हैं कि जापानमें विवाहकी उम्र बढ़ती जा रही है। इसीसे अधिकतर स्त्रियाँ अब २२-२३ वर्षकी उम्रके पहले विवाह नहीं करतीं। १८ वर्षसे लेकर २२ वर्षतककी अवस्थाका समय किस काममें लगाया जाय, यह एक महत्व-पूर्ण प्रश्न है। इसका समाधान सम्भवतः इस तरह किया जा सकता है कि स्त्रियोंको घरमें ही रहने दिया जाय और उन्हें पढ़ने-लिखने तथा कला-सम्बन्धी संस्थाओंसे पृथक् न करते

हुए गृहस्थीके कामोंमें लगाया जाय। सामान्यतया जो लोग शहरोंमें रहते हैं उन लोगोंके सम्बन्धमें तो यह बात संभव मालूम होती है, क्योंकि वहाँ संगीत, चित्रविद्या, कपड़े तैयार करना और फूल सजाने आदिकी कला सीखनेकी सुविधाएँ रहती हैं, किन्तु जो लड़कियाँ देहातोंमें रहती हैं उन्हें इन सुविधाओंके न रहनेके कारण कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। उनके लिए तीन मार्ग खुले हैं—(१) ऐसी अवस्थामें जल्द उनकी शादी कर दी जाती है, (२) या उन्हें घरके काम-काजमें फँस जाना पड़ता है, (३) नहीं तो फिर वे भीतर ही भीतर असन्तुष्ट रहती हैं। जो ग्रामीण लड़कियाँ वर्षोंतक शहरमें शिक्षा प्राप्त करनेके बाद अपने देहाती घरोंको लौट आती हैं, उनमेंसे दो-एक ही अपने समाजमें किसी तरहका सामाजिक काम करनेका श्रीगणेश कर सकती हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियोंके मानसिक विकासमें निकट भविष्यमें उल्लेखनीय उन्नति होगी, अन्यथा शिक्षा-विस्तारसे लाभ ही क्या? हम तो यहाँतक कह सकते हैं कि वहाँकी स्त्रियोंके मानसिक विकासमें अब भी काफी उन्नति हो चुकी है और यह बावजूद इसके कि वहाँकी शिक्षा प्रणालीका उद्देश्य उनका पद ऊँचा करनेका नहीं रहा है। स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता तो वहाँकी शिक्षा-प्रणालीका एक अप्रत्यक्ष परिणाम है, जिसकी पहलेसे कोई कल्पना नहीं की गयी। उसे देखकर बहुतोंको आश्चर्य हुआ और किसी किसीको इससे बुरा भी मालूम हुआ।

भारतसे तुलना

सारे भारतमें विश्वविद्यालयोंकी संख्या १५ से अधिक नहीं है। जापानमें अकेले टोकियोमें ही १६ विश्वविद्यालय हैं और देश-

भरके विश्वविद्यालयोंकी संख्या, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ४६ है। इनमेंसे केवल १७ ही सरकारी विश्वविद्यालय हैं। ५ का संचालन सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा होता है और शेष सब खानगी संस्थाएँ हैं। १९३१ में इन विश्वविद्यालयोंमें कुल ६९६६६ विद्यार्थी पढ़ते थे, जब कि भारतवर्षमें १९२९-३० की संख्या ६४८३० ही थी। स्मरण रहे कि भारतकी आबादी जापानसे लगभग ५ गुनी है।

वहाँके विश्वविद्यालय अपने सामने दो ध्येय रखते हैं। एक तो यह कि विद्यार्थियोंका इतना काफी विकास हो जाय कि स्नातक होनेके बाद नयी बातोंकी रचनाकी शिक्षा भलीभाँति प्राप्त हो जाय और दूसरा यह कि उन्हें ऐसी व्यावसायिक योग्यता हासिल हो जाय कि वे राष्ट्रके औद्योगिक तथा आर्थिक जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें योग्यतापूर्वक भाग ले सकें।

जापान प्रधान रूपसे एक व्यावहारिक राष्ट्र है, इसीसे वहाँके लोग केवल सामान्य शिक्षासे संतुष्ट नहीं हो सकते। उनकी शिक्षा-योजनामें यह बात स्पष्ट रूपसे मान ली गयी है कि बहुसंख्यक नवयुवक गरीब हैं और शिक्षा-श्रेणीके उच्च सोपानोंतक चढ़नेमें असमर्थ हैं, किन्तु जीविका प्राप्त करनेके लिए किसी न किसी तरहकी व्यावसायिक शिक्षा पर्याप्त रूपसे प्राप्त करना उनके लिए आवश्यक है। दो वर्षके पाठ्यक्रम द्वारा उन्हें जो उच्च-आरंभिक शिक्षा दी जाती है उसका उद्देश्य उन्हें किसी उद्योग-व्यवसायके योग्य बनाना ही है। इतना होते हुए भी कभी कभी ऐसे उदाहरण देख पड़ते हैं जब उनमेंसे कुछको उचित समयसे पहले ही जीवन क्षेत्रमें प्रवेश करना पड़ता है और तब उन्हें उस कार्यके लिए जिसे उन्होंने अपनाया है कुछ और विशेष शिक्षाकी आवश्यकता प्रतीत होती है। ऐसे नौजवानोंके लिए भी

ऐसे खास स्कूल खोले गये हैं जिनमें वे काम करते हुए भी व्याव-सायिक शिक्षा प्राप्त करनेका सिलसिला जारी रख सकते हैं।

प्रारंभिक शिक्षाका पाठ्यक्रम समाप्त होनेके बाद माध्यमिक शिक्षा शुरू होती है। यहाँपर पहुँच कर पाठ्यक्रममें कई विषयोंका समावेश कर दिया जाता है, जिसमें शिक्षार्थी अपनी अपनी स्थितिके अनुकूल विषयोंका चुनाव कर सकता है। जापानी लोग बड़े पल्ले दर्जेके किफायतशार होते हैं। वे लोग प्रायः इस तरह तर्क किया करते हैं कि जब चीज़ें जीर्ण-शीर्ण हो जाती हैं, उनकी उपयोगिता तो ज़रूर कम हो जाती है, परन्तु वे बिलकुल निस्सार नहीं हो जातीं। उनका ध्यान हमेशा इस बातकी ओर लगा रहता है कि जो अंश निकम्मा कहकर फेंक दिया जाता है उससे किस तरह लाभ उठाया जाय। कालेजकी प्रयोगशालाओंमें प्रवेश करने पर दर्शकोंकी दृष्टि अकसर रद्दी कागज़के उस ढेरपर पड़ती है जो वहाँ कूड़ेखानोंसे बटोरकर रखा जाता है। इस कागज़का प्रयोग वे इस बातकी समीक्षा करनेमें करते हैं कि किस तरह इससे नया कागज़ तैयार किया जा सकता है। व्यावसायिक विद्या-लयोंसे जो स्नातक निकलते हैं वे जापानके व्यावसायिक क्षेत्रमें सुशिक्षित रँगरूटोंका काम देते हैं। १९३१ में इन स्कूलोंकी संख्या १७५ थी जिनमें २८८६८१ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

हमारी शिक्षाके दोष

अब मैं एक स्वदेशभक्त सुप्रसिद्ध भारतीय द्वारा बताये गये भारतीय शिक्षाके कुछ प्रमुख दोषोंका उल्लेख करूँगा।

(१) हमारी शिक्षाका भारतके बाहर कोई व्यावसायिक मूल्य नहीं है। भारतमें भी वह हमें सरकारके ऊपर प्रायः

पूर्ण रूपसे अवलम्बित बना देती है या फिर ऐसे पेशोंका मुखापेक्षी कर देती है जो शासनके कामसे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध हैं—जैसे वकालत, अध्यापन या दफ़्तरका काम—और जिन्हें हम एक तरहसे अर्द्ध-सरकारी काम कह सकते हैं। इस तरहकी शिक्षाकी व्यर्थताका पूरा पूरा ज्ञान तबतक नहीं होता जबतक हममेंसे किसीको देशके बाहर जीविका कमानेका मौक़ा नहीं आता। एन्ट्रेन्स, एफ० ए० या बी० ए० पास भारतीय अमेरिकामें जाकर यह दुःखद अनुभव प्राप्त करता है कि घरसे आवश्यक खर्च न पहुँचने या देरसे पहुँचने पर वह केवल ऐसे ही काम कर सकता है जैसे होटलोंमें रकाबियाँ धोना या खानेकी चीज़ें परोसना, परिवारोंमें सफाई इत्यादिका काम करना या खेतों और सड़कोंपर शिक्षित मज़दूरों जैसा काम कर रोज़ी कमाना। इन कामोंको करते समय भी उसे पता चलता है कि उसने स्वदेशमें जो शिक्षा पायी है, उसके कारण इनमें भी बाधा उपस्थित होती है। उसे अपने हाथसे काम करनेकी शिक्षा दी ही नहीं गयी। १०-१५ वर्षतक भारतीय स्कूलों, कालेजोंमें साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद वह देखता है कि रकाबियाँ धोने, कमरा बहारने या खेतों और सड़कोंपर काम करनेके लिए हाथ चलानेका अभ्यास करना उसके लिए बहुत ही कठिन काम है।

(२) साधारण तौरसे भोजन बनाना, सीना अथवा घायलोंकी मरहम-पट्टी करना उसे नहीं आता और यदि आता भी है तो बिलकुल नाममात्रको। उनमेंसे बहुतसे तो तैरना अथवा नाव खेना भी नहीं जानते। उन्हें आत्म-रक्षाकी कलाका प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं होता, क्योंकि शिक्षाके इस अङ्गकी ओर कभी किसीने ध्यान ही नहीं दिया। अगर

उन्हें कोई बात मालूम है तो यह कि मामूली काम-काजके लिए किस तरह अंग्रेजी भाषाका प्रयोग करना। इसमें सन्देह नहीं कि जिन देशोंमें अंग्रेजी बोली जाती है उनमें इससे बड़ी मदद मिलती है और इससे वे असहाय होकर भटकनेसे बच जाते हैं।

(३) शिक्षाके कलात्मक अङ्गका भी उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता। न तो उन्हें सङ्गीतकी ही परख होती है और न वे किसी तसवीर या चित्रकी क़द्र कर सकते हैं। इस दृष्टिसे तो पञ्जाबियों और संयुक्तप्रान्तवालोंकी अपेक्षा बङ्गालियों तथा मरहठोंकी हालत बेहतर होती है, क्योंकि कौटुम्बिक प्रभावके कारण इन विषयोंमें वे बिलकुल कोरे नहीं होते। यदि आप उत्तर हिन्दुस्तानके किसी भारतीयसे आसपासके लोगोंका दिलबहलाव करनेकी प्रार्थना करें तो उसे तरह तरहके बहाने पेश करते देखकर बड़ा कौतूहल होता है। न तो वह गा सकता है, न कोई बाजा बजा सकता है, न अपनी याददाश्तसे कोई मनोरञ्जक चीज़ ही पढ़कर सुना सकता है। यहाँतक कि वह कहानी कहने तकमें असमर्थ होता है। यदि उसे किसी सङ्गीत-मण्डली या ललितकलाओंकी प्रदर्शनीमें ले जायँ तो वहाँ उसे ऐसा अनुभव होने लगेगा मानों वह जेलखानेमें बन्द कर दिया गया हो। न तो इन बातोंमें उसे कोई आनन्द आता है और न वह उनकी प्रशंसा ही कर सकता है। अवकाशके समय एकान्तवासका सूनापन मिटानेके लिए उसे एकाध राग गुनगुनाना भी नहीं आता। वह केवल इतना ही कर सकता है कि भारतके प्राचीन गौरवकी डींग हाँके, भले ही उसे इस बातका पता न हो कि वह गौरव किस बातमें था। अथवा यदि उससे यह न बन पड़े तो सम्भवतः वह इसकी खिल्ली उड़ायेगा।

लाला लाजपतरायका मत

यह अध्याय समाप्त करनेके पूर्व इस विषयपर स्वर्गीय लाला लाजपतरायजीने जो भाव प्रकट किये थे, उन्हें उद्धृत करना मैं ज्यादा अच्छा समझता हूँ, क्योंकि वे ऐसे भाव हैं जो उन स्वदेशभक्त भारतीयोंके हृदयमें उत्पन्न होते हैं जिन्होंने कभी जापान, यूरोप या अमेरिकाकी यात्रा की हो। लालाजीने २० वर्ष पहले जो कुछ लिखा था उसका एक अंश यह है—

"जापानी शिक्षामें मन और शरीर दोनोंके विकासकी गुंजाइश रखी गयी है। उनकी शारीरिक शिक्षा-प्रणाली सर्वोत्तम है। वहाँ प्रत्येक नवयुवकसे इस बातका आग्रह किया जाता है कि वह आत्म-रक्षाकी कला भली-भाँति सीख ले। उसे पैतरेबाज़ी, घूँसेबाज़ी, तीरन्दाज़ी, निशानेबाज़ी और तैरने तथा दौड़नेकी शिक्षा दी जाती है। सब तरहके स्कूलोंमें, चाहे वे धार्मिक हों या अधार्मिक, सामान्य शिक्षाके हों या व्यावसायिक शिक्षाके, शारीरिक शिक्षाके संबंधमें परस्पर ख़ूब प्रतियोगिता चलती है। टेनिस, फुटबाल इत्यादि खेलोंके लिए तो वहाँ काफ़ी प्रबन्ध रहता है, पर अधिक ज़ोर ऐसे खेलोंपर दिया जाता है जिनसे मनुष्यमें आक्रमण करने और अपना बचाव करनेकी योग्यता आती है। सौंदर्यके लिए जापानियोंमें स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, किन्तु उनकी रुचिका पूर्ण विकास शिक्षाकी सहायतासे होता है। नवयुवक जापानीकी शिक्षाका एक आवश्यक अंग यह है कि उसे जीवनकी मामूली आवश्यकताओंकी प्रत्येक वस्तुका थोड़ा थोड़ा ज्ञान अवश्य होता है। उदाहरणके लिए भोजन बनाना, कपड़े सीना इत्यादि भी उसे जानना पड़ता है। इस समय जापानी सारी पृथ्वीपर उत्तरी ध्रुवसे लेकर दक्षिणी ध्रुवतक, जापानसे कैलिफोर्नियातक फैले हुए हैं। घर-गृहस्थीके कामपर वे तुरन्त

नियुक्त कर दिये जाते हैं। चीनियोंके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। किन्तु भारतीयोंका प्रत्येक काम करनेका तरीका इतना भद्दा होता है कि उन्हें जीविकाका साधन प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनाई होती है। कारण यह है कि उन्हें ऐसी शिक्षा नहीं मिलती जो उन्हें किसी विशेष काममें दक्ष न बनाते हुए भी, कामकाजका आदमी बना दे।

"संस्कृत और अंग्रेजी भाषाके विद्वानोंकी हमें आवश्यकता है, इसमें मुझे सन्देह नहीं। हमें वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, डाक्टरों, ऐतिहासिकों, अर्थशास्त्रज्ञों आदिकी भी आवश्यकता है किन्तु सबसे पहले हम ऐसे समझदार आदमियोंको चाहते हैं जो चाहे वे कैसी ही परिस्थितमें रख दिये जाँय, अपनी सामान्य आवश्यकताओं और सुविधाओंकी ओर उचित ध्यान दे सकें, जो संकटके समय अपने पैरोंपर खड़े हो सकें और आवश्यकताके समय जो चीज़ उनके हाथमें आ जावे उसीसे चार पैसे कमा लें। यही वह शिक्षा है जिसके ऊपर उच्च तथा विश्वविद्यालयकी शिक्षाकी इमारत खड़ी की जानी चाहिये। देशको सबसे बड़ी आवश्यकता अधिक अच्छे शिल्पकारों, योग्य बढ़इयों, बिजलीके चतुर कारीगरों और सुयोग्य रासायनिकोंकी है, जो औद्योगिक क्षेत्रमें विदेशोंसे टक्कर लेनेमें भारतकी सहायता कर सकें। वैयाकरणों, कोषकारों और वक्ताओंकी तो भरमार है, जो दर्शनशास्त्र धर्म और आध्यात्मिकताके सम्बन्धमें घण्टोंतक विवाद कर सकते हैं, किन्तु जिनकी समझमें यह बात नहीं आती कि खाली पेट रहना ऐसी स्थिति नहीं है जिसमें ऊँचे विचारोंका उद्भव हो सके। जो राष्ट्र हर तरहसे असहाय, पराधीन, सामान्य बुद्धिसे हीन और जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके लिए पर-मुखापेक्षी हो वह धर्मकी केवल डींग ही हाँक सकता है, उसके अनुसार आचरण नहीं कर सकता। धर्म विज्ञानकी तो हमारे देशमें हद हो चुकी, अब इसकी ज़रूरत नहीं मालूम होती।

जीवित धर्मकी आवश्यकता

इस समय ऐसे जीवित धर्मकी आवश्यकता है जो हमें अधिक पवित्र कार्यों और उच्चतर ध्येयोंका अनुकरण करनेको प्रोत्साहित करे। विचारोंकी तो हमें आवश्यकता है ही किन्तु जीवनकी आवश्यकता और भी अधिक है। हमें आत्मा चाहिये, किन्तु इस समय तो उससे भी अधिक शरीर चाहिये। ऊँचे आदर्शोंकी अपेक्षा हमें व्यावहारिक आदर्शोंकी ही ज़रूरत ज़्यादा है। हमारे दार्शनिक विचारों, हमारे रहस्यवाद, हमारे आत्मज्ञानकी संसारमें पर्याप्त प्रशंसा हो रही है। फिर भी लोग हमें तुच्छ भावसे देखते हैं, क्योंकि हममें उन बातोंकी कमी है जो आत्माभिमान, स्वावलम्बन और आत्मविश्वासके लिए आवश्यक हैं। हम वर्त्तमान स्थितिमें संसार भरमें सबसे अधिक तिरस्कृत जाति हैं। हमारे शिक्षित भाइयोंकी भी कहीं इज़्ज़त नहीं की जाती, क्योंकि उनमें सच्ची शिक्षाका अभाव है। लानत है हमारी ऐसी शिक्षापर! यह कितने दुःखकी बात है कि कभी-कभी हम सचमुच अपने मनमें ऐसा सोचने लगते हैं कि ऐसी शिक्षा पानेके बजाय हम अशिक्षित ही रह गये होते तो जीवन-संग्राममें कदाचित् अधिक सफल हुए होते।

बीस वर्ष पहले लालाजीने इस वस्तुस्थितिकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया था, फिर भी अपनी शिक्षा-प्रणालीका सुधार हम अभीतक न कर सके। माना कि इस मामलेमें सरकार जान बूझकर हमारी सहायता नहीं करती, किन्तु हम स्वयं जन-समाजको शिक्षित बनानेके लिए क्या प्रयत्न कर रहे हैं? सर्वसाधारणको शिक्षित बनाना प्रत्येक पढ़े लिखे भारतीयका कर्त्तव्य है और यदि हम अपने मनमें इसे पूरा करनेका निश्चय कर लें तो दस वर्षके भीतर सारा देश सुशिक्षित बन सकता है। एक बार यदि हमारे देशमें सर्वसाधारणमें शिक्षाका प्रचार हो

जाय तो फिर संसारकी कोई शक्ति ऐसी नहीं जो हमें पराजित कर सके।

जापानमें सामाजिक शिक्षा

स्कूलोंकी शिक्षा-प्रणाली यद्यपि जापानमें पूर्णरूपसे संतोष-जनक है, किन्तु इतनेपर भी वहाँवालोंकी जिज्ञासाकी तृप्ति करनेमें वह असमर्थ है। स्कूल छोड़ देनेके बाद भी लोग ऐसे साधन ढूँढ़नेकी फिक्रमें रहते हैं, जिनसे वे आगे भी पढ़ना-लिखना जारी रख सकें और जो क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुना है उसमें संसारके अन्य अन्य भागोंमें क्या हो रहा है तथा अन्य सामान्य बातोंकी उन्नति किस तरह हो रही है इसका पता उन्हें लगता रहे। इस माँगकी पूर्ति प्रायः सामाजिक शिक्षा-के प्रसारसे हो रही है, जिसको प्रोत्साहन देनेमें सरकारका बड़ा भारी हाथ है। समाचार-पत्रों आदिसे भी इसमें बड़ी मदद मिलती है। जापानी पाठकोंको मौलिक ग्रन्थों और अनुवादोंके रूपमें प्रचुर पठनीय सामग्री बराबर मिलती रहती है। इधर कुछ समयसे वहाँ औसतन बाईस हजार मौलिक पुस्तकें प्रति वर्ष प्रकाशित होती हैं और लगभग ५० हजार पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती हैं।

सामाजिक शिक्षाका संबंध पुस्तकालयोंसे भी है, जिनकी संख्या वहाँ ४॥ हजारसे भी अधिक है। समय समयपर विभिन्न व्यक्तियों और सार्वजनिक संस्थाओंकी ओरसे लोकप्रिय तथा वैज्ञानिक विषयोंपर व्याख्यान भी हुआ करते हैं। शिक्षा फैलानेके उद्देश्यसे सिनेमाओंका प्रचार करने और उन्हें सुधा-रनेके लिए बड़े बड़े समाचार-पत्रोंने अपनी ओरसे एक नियमित विभाग खोल रखा है।

समाजमें शिक्षा फैलानेकी सबसे महत्वपूर्ण संस्थाएँ वे हैं जो नवयुवकों और नवयुवतियोंकी संस्थाएँ कहलाती हैं। इनके सदस्य वे लोग होते हैं जो प्रारंभिक शालाओंसे निकलनेके बाद भिन्न भिन्न पेशोंमें लग जाते हैं और इनका उद्देश्य उनमें सच्ची नागरिकताका विकास करना होता है। हरएक शहर तथा ग्राममें इनकी शाखाएँ फैली हुई हैं। इस समय नवयुवकोंकी १५२०० संस्थाएँ हैं, जिनमें २५॥ लाख सदस्य हैं। युवतियोंकी संस्थाओंकी संख्या १३३३० है, जिनमें १५॥ लाख सदस्याएँ हैं। इनकी ओरसे सभाएँ होती हैं, रातकी पाठशालाएँ चलायी जाती हैं, गर्मीमें पढ़ाईका प्रबंध किया जाता है तथा अन्य कई प्रकारके सामाजिक कार्य किये जाते हैं। इसके सिवा बालचरों द्वारा भी अच्छा काम हो रहा है, जिनकी संख्या ७१९२० है।

देशमें १०० संग्रहालय भी हैं तथा बहुत-सी जन्तु-शालाएँ और वनस्पति-उद्यान भी हैं, जिनसे जनता लाभ उठा सकती है। सर्व-साधारणकी भलाईके लिए शिक्षा-संस्थाओं द्वारा पठनीय पुस्तकों, सिनेमाके उत्तम चित्रों और ग्रामोफ़ोनके अच्छे तवोंकी सूची समय समयपर प्रकाशित की जाती है। रेडियो द्वारा प्रचार करनेका तरीक़ा भी वहाँ खूब चल पड़ा है जिनके सुननेवालोंकी संख्या १ करोड़से ऊपर है।

जापानने हमारे सामने इस बातका जीवित उदाहरण उपस्थित कर दिया है कि शिक्षाका प्रसार हो जानेसे राष्ट्र क्या क्या नहीं कर सकता। मैं चाहता हूँ कि हमारे नेता इस सत्य वाक्यको भलीभाँति समझ लें कि करोड़ों अशिक्षित आदमी अपने अज्ञानके कारण ऐन मौकेपर हमारे लिए खतरनाक और धोखा देनेवाले साबित हो सकते हैं। किन्तु एक बार यदि

वे शिक्षा रूपी शस्त्रसे सम्पन्न हो जावें तो फिर उन्हें हम अनुशासित क्षेत्रकी तरह देशके मक़सदके लिए मर-मिटनेके लिए उद्यत पावेंगे। यदि हम स्वतन्त्रताके संग्राममें जनताको सचमुच अपने साथ ले चलना चाहते हों तो 'प्रत्येक घरमें विद्याका प्रचार करो' इसीके नारे हमें लगाना चाहिए।

छठाँ अध्याय

जापानकी महिलाएँ

'श्रमके लिहाजसे जापानकी औद्योगिक क्रान्तिमें वहाँकी महिलाओंका प्रधान स्थान है।'—डा० जेम्स ए० बी० शेरर।

पूर्वीय संस्कृतिके रङ्गमें रँगी हुई किसी जापानी महिलासे कहीं भेंट हो जानेपर मेरा मस्तक आप ही आप आदरसे झुक जाता है और मेरा मन नारीत्व सम्बन्धी भारतके प्राचीन आदर्शमें मग्न हो जाता है। जापानी और भारतीय महिलाओंके रूपरङ्ग, व्यवहार, विनम्रता और मृदुलामें मुझे कोई अन्तर नहीं देख पड़ता। दोनोंकी संस्कृतिका उद्गम-स्थान एक ही है; ऐसी हालतमें अन्तर ही क्यों हो?

पाश्चात्य देशोंके जड़वादी प्राच्य समाजमें माताओंके महान् पद और दायित्वकी हँसी उड़ा सकते हैं, क्योंकि आध्यात्मिकता, प्रेम और पारस्परिक दायित्वकी भाषामें उनके लिए विचार करना सम्भव नहीं है।

त्यागकी मूर्ति

प्राच्य महिलाएँ तो त्याग, पवित्रता और शालीनताकी मूर्त्ति ही होती हैं पर पाश्चात्य देशोंकी महिलाएँ (कुछको छोड़कर) केवल सम्पत्ति और स्वार्थका ही चिन्तन करनेके लिए अभ्यस्त करायी जाती हैं।

प्राच्य देशकी महिलाएँ वस्तुतः अपने बच्चोंपर शासन करती हैं और उनपर उनका काफी प्रभाव होता है पर पश्चिमकी महिलाएँ साधारणतः बच्चा पैदा करनेवाली कल हुआ करती हैं। जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोणमें मौलिक भेद होनेके कारण वे एक दूसरीकी स्थितिको आसानीसे नहीं समझ सकतीं। जापानकी महिलाएँ नहीं जानतीं कि व्यक्तिवाद किस चिड़ियाका नाम है; वे परिवारके लिए ही जीवित रहती तथा अर्थोपार्जन करती हैं, और उसीके लिए आवश्यकता पड़नेपर अपने प्राण भी विसर्जन करती हैं। उनका वात्सल्य-प्रेम, माता-पिताके प्रति आदर-भाव और पतिभक्ति स्तुत्य है।

हिन्दू-धर्म-शास्त्रकार मनुने स्त्री-जीवनके लिए जो आदर्श निश्चित किया है, ठीक वही जापानका भी आदर्श है।

आदर्श बुरा नहीं

यह सत्य है कि पूर्वीय देशोंमें स्त्रियोंको समान अधिकार नहीं मिले हैं और कभी कभी स्वार्थी तथा नासमझ पति उनके प्रति अन्याय भी कर बैठते हैं, पर इससे यह नहीं माना जा सकता कि पुराना आदर्श ही बुरा है।

भारत तथा जापानके इतिहासमें ऐसे कई ज्वलन्त उदाहरण देख पड़ते हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि प्राचीन कालमें और

हालमें भी स्त्रियोंको पुरुषोंके समान अधिकार प्राप्त थे। वे केवल विदुषी, दार्शनिक, कवि, कलाकार और वीर ही नहीं थीं, बल्कि कई दशकोंतक उन्होंने अपने देशपर योग्यतापूर्वक शासन भी किया था।

कुछ उदाहरण

महारानी होल्कर, झाँसीकी रानी, नूरजहाँ और रज़िया-बेगमको भारतमें कौन नहीं जानता? भारतके भिन्न भिन्न भागोंकी युद्धवीर महिलाओंकी कथासे हिन्दुओंका इतिहास भरा पड़ा है। स्थानाभावसे हम भारतकी इन वीर रमणियोंका विस्तृत विवरण देनेमें असमर्थ हैं।

इसी प्रकार जापानने भी प्राचीन कालमें महिलाओंको बहुत ऊँचा स्थान दे रखा था। जापानमें कई महिलाएँ सम्राज्ञी हो चुकी हैं। जापानी इतिहासके अनुसार सम्राज्ञी जिंगोने कोरिया-पर विजय प्राप्त करनेके लिए सैन्यका सञ्चालन किया था।

सरकारी विवरणके अनुसार जापानकी सम्राज्ञियोंकी संख्या १० कही जाती है, यद्यपि १८८९ के बादसे क़ानूनके मुताबिक महिलाओंके लिए सिंहासनपर बैठाये जानेकी मनाही कर दी गयी।

सुप्रसिद्ध नारा-कालके आठ शासकोंमें चार स्त्रियाँ ही थीं। इनमें से सम्राज्ञी कोकनने बड़ी दृढ़ताके साथ शासन किया था। प्राचीन कालमें स्त्रियों और पुरुषोंको प्रायः समान रूपसे शिक्षा दी जाती थी और भारत तथा जापान दोनों देशोंमें इन्हें प्रायः बराबरका सामाजिक पद प्राप्त था। मध्य कालमें पुरुष वर्गका लालच बढ़ गया और उसने स्त्रियोंके आत्मत्याग तथा भक्तिमयी स्नेहशीलताका दुरुपयोग करना शुरू किया किन्तु अब

फिर इतिहासकी पुनरावृत्ति हो रही है और स्त्रियाँ अपने खोये हुए स्वत्वोंको पुनः प्राप्त करनेको तैयार हैं। मनु महाराज कह गये हैं "वह घर सचमुच स्वर्ग है जहाँ स्त्रियोंका सम्मान किया जाता है और वे सुखसे रहती हैं।" वह समय दूर नहीं जब भारत और जापान इस कथनका अनुसरण करेंगे।

स्त्रियोंकी पराधीनता

जिस तरह हमारे यहाँ पौराणिक कालमें स्वार्थी पुरोहितों द्वारा स्त्रियाँ गुलाम बना दी गयी थीं, उसी तरह स्त्रियोंकी गुलामी कनफ्यूशियन कालकी एक विशेषता थी जिसपर तोकूगावाके पहले शोगुनने ज़ोर दिया था। कैबारा इक्कनने इस मतका प्रतिपादन किया कि "स्त्रीको पतिकी इस तरह सेवा करनी चाहिये मानो वह ईश्वर हो, और उसे हमेशा उसके सामने सिर झुकानेके लिए तैयार रहना चाहिये। ऐसा करनेसे ही वह दैवी अभिशापसे बच सकती है।"

विवाह-विच्छेद या तलाक़के लिए इन महाशयने जो सात कारण बतलाये हैं, उनमेंसे कुछ ये हैं "सास-ससुरकी आज्ञा न मानना, बन्ध्यापन, ईर्ष्या और बहुत ज्यादा बातचीत करना या बड़बड़ाना इत्यादि।"

स्त्रियोंके अच्छे दिन

जब तोकूगावाके आधिपत्यका अन्त हुआ और मीजीके शासनका आरम्भ हुआ, तब इस युवक सम्राट्ने सबसे बड़ा काम यह किया कि सन् १८७१ में एक आदेश जारी कर दिया जिसमें अन्य बातोंके साथ साथ इस बातपर भी ज़ोर दिया गया था कि जब अमीर लोग देशके बाहर

जाया करें तब वे अपनी पत्नियों, कन्याओं और बहिनोंको भी साथ ले जाया करें, ताकि "वे अपनी आँखोंसे देख सकें कि जिन जिन देशोंमें वे जाती हैं उनमें स्त्रियोंकी शिक्षाका क्या प्रबन्ध है"। सम्राट्का यह भी आदेश था कि "समाजमें स्त्रियोंको अभीतक कोई पद प्राप्त न था क्योंकि यह समझा जाता था कि उनमें बुद्धि नहीं है किन्तु यदि वे सुशिक्षिता और बुद्धिमती हों तो उन्हें उचित सम्मान मिलना चाहिये।"

सम्राट्के उदार संरक्षणमें जापानकी पाँच लड़कियाँ सन् १८७१ में अमेरिका भेजी गयीं। उद्देश्य यह था कि वहाँ अमेरिकन तरीकेपर उनकी परवरिश और शिक्षा आदिका प्रबन्ध हो और वहाँ उन्हें जो अच्छी अच्छी बातें दीख पड़ें उनका प्रचार स्वदेश लौटनेपर वे जापानी नवयुवतियोंमें करें, "प्रस्थान करनेके पहले उन्हें टोकियो आनेका आदेश मिला। वहाँ मिकाडोकी सद्भावनाके प्रमाण-स्वरूप तथा एक पुरानी प्रथाके अनुसार इनमेंसे प्रत्येकको दरबारियोंने किरमिज़ी रङ्गके सुन्दर वस्त्र भेंट किये और यह आज्ञा प्रकाशित की गयी कि जबतक वे अमेरिकामें रहें तबतक उनका कुल खर्च सरकार द्वारा दिया जाय।"

उन लड़कियोंमें ऊमी सूदा नामकी लड़की सबसे छोटी थी। उसकी उम्र उस समय सात वर्षकी थी। आगे चलकर इसी लड़कीने टोकियोमें महिलाओंके लिए अंग्रेजीका महाविद्यालय स्थापित किया जिससे जापानी महिला-समाजका विशेष उपकार हुआ। निश्चय ही किसी सरकारने सभ्य कहे जानेका हक़ इतनी अच्छी तरह साबित नहीं किया जितनी अच्छी तरह जापान सरकारने अपने इन कार्यों द्वारा किया।

जो हो, तोकूगावा शासन-कालमें ढाई सौ वर्षोंमें जो अत्याचार हुए थे, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न आरम्भ करनेमें भी काफी

देर लगी। 'रेस्टोरेशन' (पुनः प्रतिष्ठा) के बाद २० वर्ष बीत जाने पर कहीं स्त्रियोंके व्यक्तिगत अधिकार राष्ट्रके कानूनोंमें माने जा सके। सन् १८९८ में सिविल क़ानूनका संशोधन होनेपर बहुविवाह नाजायज़ ठहराया गया। किसी स्त्रीको उसकी इच्छाके खिलाफ विवाह करनेके लिए मजबूर करना भी क़ानूनन बन्द कर दिया गया। २५ वर्षसे अधिक अवस्थावाली स्त्रियोंको यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी पसन्दके अनुसार पुरुषोंसे विवाह करें, चाहे ऐसा करनेसे माता-पिता या अभिभावकोंकी इच्छाकी अवहेलना ही क्यों न होती हो। स्त्रियोंको अलगसे अपनी सम्पत्ति रखनेकी अनुमति दी गयी। विवाहित स्त्रियोंको उनके पतियोंकी रज़ामन्दीसे इस बातकी इजाज़त दी गयी कि यदि वे चाहें तो खुद किसी स्वतन्त्र व्यवसायमें अपने आपको लगावें। यही उस क़ानूनकी मुख्य बातें हैं जिसके अनुसार स्त्रियोंको वे हक़ प्राप्त हो गये जो पुरुषवर्गकी तुलनामें कम होते हुए भी अभीतक उन्हें बिलकुल प्राप्त न थे।

दस वर्ष बाद स्त्रियोंकी पहली संस्था 'देशसेवक महिला-समाज'* स्थापित हुई, जिसके सदस्योंकी संख्या इस समय पाँच लाखतक पहुँच गयी है। १९११ तक जापानमें इस तरहकी इतनी अधिक संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं कि कुल मिलाकर कोई तीस लाख स्त्रियाँ उनकी सदस्य थीं। सन् १९२० में नूतन महिला-समाजकी संस्थापना हुई। उसमें राजनीतिक मामलोंमें दिलचस्पी लेनेवाली स्त्रियाँ शामिल हुईं। यद्यपि कुछ समयके बाद यह संस्था टूट गयी, फिर भी इसने पाँच ऐसी संस्थाओंको जन्म दिया जिन्होंने १९२३ के भूकम्पके समय देशकी बड़ी सेवा की। इससे स्त्रियोंके आन्दोलनको विशेष लाभ हुआ।

* Women's Patriotic Association.

टोकियो भरकी सब तरहके विचारोंवाली स्त्रियोंने एक ही उद्देश्यसे प्रेरित होकर काम करना शुरू किया। उन्होंने अनुभव किया कि राजनीतिक अधिकारोंसे वञ्चित होनेके कारण पद पदपर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। इसके बादवाले वर्षमें स्त्रियोंको अधिकार दिलानेवाली संस्था क़ायम हुई और अब व्याख्यानों, पुस्तिकाओं तथा स्त्रियों सम्बन्धी मासिक पत्रिकाओंके प्रचार द्वारा देशकी अधिकाधिक महिलाओंको इन उद्देश्योंका ज्ञान कराया जाता है जिन्हें सामने रखकर स्त्रियोंके अधिकारोंके लिए आन्दोलन किया जा रहा है।

स्त्रियोंकी कठिनाइयाँ

अपनी जापानी बहिनोंकी वर्त्तमान परिस्थितिपर प्रकाश डालती हुई श्रीमती कीकूई ईदे ११ फरवरी १९३४ के 'ऐडवर्टाइज़र' में लिखती हैं—

"केवल इतना कह देना ही पर्याप्त नहीं है कि जापानमें स्त्रियोंका पद पुरुषोंसे बहुत नीचा है। वे केवल प्रार्थना कर सकतीं और राजनीतिक सभाओंमें श्रोताओंके रूपमें ही उपस्थित हो सकती हैं। राजनीतिक दलोंमें वे सम्मिलित नहीं की जातीं और न वे क़ानून बनानेके काममें शरीक हो सकती हैं। वे अभीतक नागरिकताके अधिकार पानेमें असमर्थ हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि इधर कुछ दिनोंसे विशेषकर सन् १९२५ के तथाकथित सामान्य निर्वाचन क़ानूनके बादसे जापानकी स्त्रियाँ देशकी राजनीतिमें उचित स्थान ग्रहण करनेके लिए ज़ोरोंसे प्रयत्न करने लगी हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि मत देनेका अधिकार प्राप्त हुए बिना स्त्रियोंकी स्थिति सुरक्षित नहीं बनायी जा सकती।

शासन-सम्बन्धी अधिकार भी स्त्रियोंको कुछ प्राप्त हुए हैं। वे ऐसी स्वशासित सार्वजनिक संस्थाओंमें पद ग्रहण कर सकती हैं जिन्हें अपना

संगठन-विधान स्वयं बनानेका अधिकार प्राप्त है, जैसे कृषि-सम्बन्धी संस्थामें टेक्स कमेटियाँ इत्यादि।

शिक्षा-विभागकी सरकारी नौकरीमें भी वे स्थान पा सकती हैं किन्तु अन्य स्थानोंकी तरह यहाँ भी वे छोटे छोटे पदोंपर ही नियुक्त की जा सकती हैं।...समान अवसरका सिद्धान्त अभीतक स्वीकार नहीं किया गया। सरकारी या सार्वजनिक विश्वविद्यालयोंमें वे प्रोफेसरोंके पदपर नियुक्त नहीं की जा सकतीं। हाई या मिडिल स्कूलोंमें हेडमास्टर अथवा प्रधानका पद किसी भी स्त्रीको नहीं दिया गया।

जापानकी स्त्रियाँ अपनी आर्थिक स्थितिके सम्बन्धमें भी अब उदासीन नहीं रह सकतीं। इस समय उन्हें बराबर कामके लिए बराबर मजदूरी पानेका कोई भरोसा नहीं और न उनके लिए आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र रहनेकी ही गुञ्जाइश है।

अपने पिताका कर्ज़ चुकानेके लिए कोई भी लड़की अपनेको बेच दे सकती है अथवा पिता स्वयं ही किसी उद्देश्यसे बेच सकता है। इन्हीं सब कुरीतियोंके कारण वर्त्तमान समाजमें स्त्रियोंका पद इतना गिर गया है किन्तु अब शिक्षाकी उन्नति होनेसे महिला-समाजमें जाग्रति फैल रही है। क़ानून द्वारा नाजायज़ ठहराये गये विवाहोंकी बढ़ती हुई संख्या तथा ऐसी अन्य सामाजिक प्रतिक्रियाओंसे यह स्पष्ट है कि जापानकी स्त्रियाँ अपनी वर्त्तमान स्थिति और घर, समाज तथा देशसे अपना उपयुक्त सम्बन्ध समझने लगी हैं।

सरकारी विभागोंमें स्त्रियोंकी स्थितिके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, उसके अतिरिक्त ख़ानगी क़ानूनकी दृष्टिमें भी स्त्रियोंकी हालत उतनी ही पिछड़ी हुई है जितनी तीस वर्ष पहले थी किन्तु यहाँपर यह स्मरण रखना चाहिये कि 'परम्परासे प्रतिष्ठित' क़ानूनकी भाषा भले ही ज्यों की त्यों बनी रही हो पर अदालतके बहुतसे फैसलोंमें परिवारके सम्बन्धमें स्त्रीकी उपयुक्त स्थिति अब स्वीकार कर ली गयी है। इसका एक उदाहरण यह है कि

अब तलाक द्वारा अलग की गयी पत्नीको उसकी सन्तान सौंपी जा सकती है, यद्यपि क़ानून ऐसा करनेकी इजाज़त नहीं देता। हालमें एक ऐसा संशोधन स्वीकृत हुआ है जिसके अनुसार १९३६ के बाद स्त्रियाँ क़ानून पढ़ सकेंगी और वकालतका पेशा अपना सकेंगी।

उन्नति शीघ्रतासे हो रही है

श्रीमती ईदे एक सुप्रसिद्ध जापानी महिला हैं जिन्होंने महिलाओंके कोबे कालेजके लिए अपने आपको अर्पित कर दिया है। एक और क्रिश्चियन कालेजके अध्यक्ष डा० एलन फाउस्ट यद्यपि यह कहते हैं—"राष्ट्रीय विपत्तिका आह्वान करनेका यदि कोई सुनिश्चित उपाय है तो यह कि जापानी महिलाओंको फौरन जीवनके समस्त क्षेत्रोंमें पुरुषोंके बराबर अधिकार दे दिये जायँ," किन्तु साथ ही वे यह भी कहते हैं कि "गत पच्चीस वर्षोंके भीतर जापानी महिलाओंकी स्थितिमें उतना परिवर्त्तन हो गया है जितना यूरोपमें पाँच सौ वर्षोंमें हुआ था।"

इसी तरह डा० जेम्स शैरेर उक्त कथनका समर्थन करते हुए कहते हैं—"पच्चीस वर्षके बाद जापान लौटने पर सबसे बड़ा परिवर्त्तन मुझे वहाँके स्कूलोंमें जानेवाली लड़कियों तथा अन्य नवयुवतियोंके चेहरोंपर देख पड़ा। दुबली पतली देहयष्टि और शरीरके फीके रङ्गके बजाय मुझे हृष्टपुष्ट शरीर और गुलाबी मुखड़े देख पड़े। उनकी गतिमें भी अब सुकुमारताके बजाय स्वास्थ्यके चिह्न अधिक स्पष्ट देख पड़े। सार्वजनिक पाठशालाओंमें कराये जानेवाले व्यायामका परिणाम यह हुआ है कि जापानी महिलाओंकी ऊँचाईका औसत दो इञ्च बढ़ गया है और उनके वज़नमें भी इसी अनुपातसे वृद्धि हुई है।

सातवाँ अध्याय

जापानका उन्नतिशील महिला-समाज

टोकियोके भीषण भूकम्प और अग्निकाण्डके बाद जापानियोंकी रहन-सहनमें जो क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए हैं, उनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय वह है जो वहाँकी स्त्रियोंकी वेष-भूषा तथा उनके व्यवहारमें हुआ है। तोकूगावा शोगूनके शासन-कालकी समाप्तिसे १९०५ ई० तक अर्थात् रूस-जापान युद्धके पहलेतक विदेशी लोग जापानी महिलाओंके रीति-रिवाज़ और व्यवहारोंकी जानकारी हासिल करनेके लिए जो चित्र अपने अपने देशोंको ले जाते थे, उनमें प्रत्येक स्त्री चाहे वह समाजकी किसी भी श्रेणीकी हो, बैठी हुई मुद्रामें हाथोंको आस्तीनके भीतर छिपाये हुई दिखाई जाती थी। जिन चित्रोंमें वह कुर्सीपर बैठी देख पड़ती थी, उनमें भी प्रायः एक आस्तीन गोदमें रखकर उसके भीतर दूसरा हाथ डाले हुई दृष्टिगोचर होती थीं। मालूम होता है कि बैठनेका यह तरीक़ा उस समय महिला-समाजमें आमतौरपर प्रचलित था।

फोटो उतरवाते वक्त ही स्त्रियाँ इस मुद्रामें बैठ जाती रही हों, ऐसी बात नहीं है। जब वे सड़कोंपर चलती थीं तब भी अपने हाथोंको छिपाये रखनेकी शक्ति भर कोशिश करती थीं। जिस दिन खूब ठण्ढ पड़ती थी उस दिन वे कुछ सिकुड़ कर धीरे धीरे कदम बढ़ाती हुई चलती थीं और अपने हाथ आस्तीनके भीतर छिपाकर छातीपर रख लेती थीं। इस तरह सामने झुकी हुई धीरे धीरे पग बढ़ानेवाली जापानी महिलाकी मुद्राको देखकर यूरोप तथा अमेरिकामें यह चाल सी पड़ गयी है कि यदि कोई

अभिनेत्री किसी पूर्वीय महिला, विशेषकर जापानी महिला, का अभिनय करना चाहती है तो इसी तरह रङ्ग-मञ्चपर पदार्पण करती है।

जापानी महिलाएँ अपने हाथोंको खुला रखनेमें जो इस तरह लज्जाका अनुभव करती थीं, उसका कारण सामन्त कालकी वह नैतिक व्यवस्था थी जो स्त्रियोंको पुरुषोंकी तरह घरके बाहर काम करनेसे रोकती थी और यह सिखलाती थी कि स्त्री-का सबसे अच्छा गुण कठोर परिश्रम करना नहीं, प्रत्युत गृहस्थीका प्रबन्ध करना तथा बच्चोंकी शिक्षा और स्वामीकी सहायताका ख़याल रखना है।

रूस-जापान-युद्धके बाद जब जापान आश्चर्य-जनक शीघ्रता-से औद्योगिक उन्नति करने लगा, तब जापानी महिलाओंके लिए आस्तीनके भीतर हाथ छिपाये रखना असह्य प्रतीत होने लगा। अब कारखानोंमें प्रत्येक जगह औरतोंकी ज़रूरत पड़ने लगी, क्योंकि वे कम मज़दूरीपर मिल सकती थीं। इसके सिवा यंत्रों-से काम लेनेके लिए पुरुषोंके सबल हाथोंकी ऐसी कोई आव-श्यकता न थी।

यद्यपि यह सत्य है कि कारखानोंमें काम करनेके लिए जिन स्त्रियोंकी ज़रूरत पड़ी वे श्रीमानोंके कुटुम्बकी न थीं, किंतु समाज तो एक जीवित-संस्था है और उसके किसी एक हिस्से-में जब कोई बड़ा परिवर्त्तन होता है तो उसका असर जल्द या देरमें समूचे समाजपर पड़ता है। यही वजह है कि कारखानों-में निम्न श्रेणियोंकी स्त्रियोंके काम करने लगनेका प्रभाव शीघ्र ही उच्चवर्गीय रमणियोंपर भी पड़ने लगा।

मीजीकालके अन्तिम वर्षोंसे लेकर ताइशोके प्रारम्भ काल तक जापानी महिलाओंमें पुस्तकें पढ़नेकी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न

हो गयी, इसीसे स्त्रियोंके लिए कई मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं जिनकी ग्राहक-संख्या लाखोंतक पहुँच गयी। इन पत्रिकाओंके आवरण पृष्ठपर अच्छे कुटुम्बोंकी सुन्दर रमणियों-के चित्र प्रकाशित होते थे। कुछ पत्रिकाओंने तो ऐसे चित्रोंका प्रकाशित करना ही अपना विशेष उद्देश्य बना लिया था।

इन चित्रोंको देखनेपर सबसे पहली बात जो हमें आकर्षित करती है यह है कि इनमें स्त्रियाँ अपने दोनों हाथोंको बिलकुल स्वच्छन्दताके साथ खुला रखे हुई हैं। उन दिनोंमें विदेशी तर्ज-के कपड़े पहननेकी ओर वैसा झुकाव न था जैसा आज है और न बाल सँवारनेकी ही प्रवृत्ति थी। वे लम्बी आस्तीनवाले पुराने तरीकेके कपड़े और छींटके साये पहनती थीं। उनके दोनों हाथ बिना किसी संकोचके बिलकुल खुले रहते थे। यह ऐसी मनोरञ्जक बात है जो जापानी महिलाओंकी रहन-सहनके परिवर्तनकी सूचक है।

स्त्री-शिक्षा

जापानमें स्त्री-शिक्षाका प्रारम्भ इस उद्देश्यसे नहीं किया गया कि स्त्रियाँ पढ़ लिखकर पुरुषोंकी बराबरी करने लगें, प्रत्युत उसकी मंशा यह थी कि वे आदर्श-गृहिणियाँ और आदर्श-माताएँ बनें। यदि महिला-विद्यालयका प्रधानाध्यापक कुछ उन्नत विचारोंका अनुयायी होता तो उसे इस बातका बड़ा ख़याल रखना पड़ता था कि वह अपनी छात्राओंमें ऐसे भाव न उत्पन्न होने दे जिनसे अनुप्राणित होकर वे अच्छी पत्नियाँ और बुद्धिमती माताएँ बननेके बजाय पुरुषोंकी बराबरी करनेका प्रयत्न करने लगें। यदि वह इसका ध्यान न रखकर अपने विचारोंके अनुसार बालिकाओंको शिक्षा देता तो समझा जाता था कि वह अपने विचारोंके अनुसार बालकोंकी शिक्षा करता है तो सर्व-

साधारण और स्कूलके सञ्चालक उसे सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगते हैं। दोनों ही उसके इस कार्यको देशके उत्तम रीति-रिवाज़ों और वहाँकी कुटुम्ब-प्रणालीके खिलाफ समझते हैं।

स्त्रियोंको अच्छी पत्नी और बुद्धिमती माताएँ बनाने तक ही स्त्री-शिक्षाको सीमित रखनेके लिए पुराणपन्थी समाजके हज़ार प्रयत्न करनेपर भी सामाजिक स्थितिमें होनेवाले परिवर्तनोंका प्रभाव उसपर पड़े बिना न रह सका। ज्यों ज्यों रोटी कमानेकी कठिनाइयाँ बढ़ती गयीं, त्यों त्यों पुरुषोंको क्रमशः अधिक उम्रमें विवाह करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि बहुत-सी स्त्रियाँ विवाह न होनेके कारण मजदूरी करनेको लाचार हुईं। इस प्रकार प्रति वर्ष पुरुषोंके क्षेत्रमें उनके आक्रमण होने लगे।

जब स्त्रियाँ पुरुषोंके क्षेत्रमें घुसने लगीं, तब पुरुषोंको रोज़ी प्राप्त करनेमें और भी ज़्यादा दिक्कत होने लगी। साथ ही उन्हें वेतन भी अपेक्षाकृत कम दिया जाने लगा। इससे ३०-३५ की उम्र हो जानेपर भी वे अविवाहित रहने लगीं। स्त्रियोंका पाणिग्रहण करनेके लिए उद्यत पुरुषोंकी कमी होनेसे स्त्रियाँ और भी अधिक संख्यामें कारखानोंमें काम करनेको जाने लगीं। इस प्रकार यह कुचक्र रूस-जापान युद्धके लगभग दस वर्ष बादतक चलता रहा, जबतक कि अच्छी पत्नियाँ और बुद्धिमती माताओंवाला सिद्धान्त कमज़ोर न पड़ गया। अब तो सब लोग यह समझने लगे हैं कि स्त्रियोंमें यह भाव भर देना आवश्यक है कि वे भी पुरुषोंके ही समकक्ष प्राणी हैं। वे उन्हें भी विज्ञान तथा कलाकी शिक्षा देनेका समर्थन करने लगे हैं। आज अध्यापन, डाक्टरी, वकालत, जजी, सरकारी नौकरी आदि किसीमें उनके लिए प्रवेश निषिद्ध नहीं है।

मीजी कालके अन्तिम वर्षोंतक जब कि 'आदर्श गृहिणी' वाले सिद्धान्तपर बहुत ज़ोर दिया जाता था, स्त्रियोंको सब तरहकी पुस्तकें पढ़ने तथा शारीरिक व्यायाम करनेकी आज़ादी न थी। औरतें ऐसी ही पुस्तकें पढ़ सकती थीं जो खासतौरसे स्त्रियोंके लिए उपयोगी होतीं। उस समय यदि स्त्रियाँ अपनी विद्वत्ताका गर्व करतीं या पुरुषोंसे वादविवाद करतीं तो इससे उनकी कीर्त्तिको हानि पहुँचती और यह खयाल होता कि इससे उनकी मातृत्व शक्ति भी नष्ट हो जायगी। ऐसी रुकावटोंका, जिनपर समकालीन घटनाओंकी दृष्टिसे विश्वास भी नहीं होता, काफी प्रभाव पड़ता था। इसीसे उस समय कोई स्त्री यदि गाड़ी या ट्राममें बैठकर समाचारपत्र या पुस्तकें पढ़नेका प्रयत्न करती तो उसका यह कार्य धृष्टतापूर्ण और निन्दनीय समझा जाता।

उन दिनोंमें यदि मध्यवर्ग या उससे नीचेके वर्गकी किसी स्त्रीको कामकी तलाश होती तो उसके लिए प्रायः ऐसा ही काम ढूँढ़ निकालना पड़ता जो स्त्रियोंके लिए अधिकसे अधिक उपयुक्त होता। स्त्रियोंको काम करनेसे रोकना तो नामुमकिन था, फिर भी इस बातका प्रयत्न होता था कि जहाँतक बन पड़े उन्हें ऐसा काम न दिया जाय जिससे उनकी सुकुमारता और सौम्य भावपर आघात पहुँचे। इस बातका भी ध्यान रहता था कि उन्हें ऐसा कोई काम न मिले जिससे उनकी मातृत्वशक्तिको जो स्त्री-जीवनका विशेष लक्ष्य है, नुकसान पहुँचे। इस तरहके विचार उस समय पढ़े-लिखे लोगोंमें प्रायः व्यापक रूपसे पाये जाते थे।

इतना होते हुए भी ज्यों ज्यों लड़कियोंकी पाठशालाओंमें शारीरिक शिक्षाका प्रसार होता गया और धीरे धीरे स्त्रियोंके लिए व्यायाम सम्बन्धी रुकावटें दूर होती गयीं, त्यों त्यों जापानी

स्त्रियोंकी शारीरिक गठनमें आश्चर्यजनक सुधार दृष्टिगोचर होने लगा। परिणाम यह हुआ कि कुछ समयके बाद स्त्रियों और पुरुषोंके कार्यक्षेत्रोंमें कोई खास भेद नहीं रह गया।

यूरोपीय युद्धका समय

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि गत महायुद्धके समय यूरोपीय राष्ट्रोंने आत्मरक्षाके लिए जिन उपायोंसे काम लेना शुरू किया था, उनका जापानकी सभ्यतापर आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही दृष्टियोंसे कितना गहरा प्रभाव पड़ा। जैसे जैसे युद्धकी प्रगति होती गयी तैसे तैसे यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा प्रयुक्त आपत्कालीन उपायोंको देखकर समस्त जापान इतना प्रभावित हो उठा जितना और किसी बातसे नहीं हुआ।

सबसे बड़ी आवश्यकता उसे इस बातकी मालूम हुई कि सारे राष्ट्रको युद्धकी सम्भावनाके लिए कैसे तैयार किया जाय। चीन-जापान और रूस-जापान-युद्धके थोड़ेसे अनुभवको छोड़कर अभीतक ऐसी कोई राष्ट्रीय नीति निर्धारित नहीं की गयी थी जिससे आपत्कालमें कठिनाइयोंका सामना किया जा सके। एक ही उपाय जापानियोंके मनमें था और वह उनका यह विश्वास था कि यदि देशके पास अच्छी स्थायी सेना हो तथा लोगोंमें देशभक्तिका भाव भरा हुआ हो तो जापान विदेशी आक्रमणका सामना कर आत्मरक्षा करनेमें समर्थ हो सकता है। जो हो, युद्धमें लगे हुए राष्ट्रोंकी गतिविधिसे उन्हें यह बात अच्छी तरह विदित हो गयी कि उपर्युक्त विचारमें उन्हें पर्याप्त संशोधन करना पड़ेगा।

जापान स्पष्ट रूपसे यह समझ गया कि एकाएक आयी हुई विपत्तिके समय राष्ट्रके एक अंश (अर्थात् केवल सेना) के

युद्धके लिए तैयार रहनेसे देशकी रक्षा नहीं हो सकती जबतक कि सभी अवस्थाओंके उसके समस्त नर-नारी संकटको दूर करनेके प्रयत्नमें सामान्य रूपसे भाग नहीं लेते। यह भी उन्होंने देखा कि अन्तर्राष्ट्रीय संकटके समय कोई राष्ट्र कठिनाइयोंपर विजय पाकर अपनी रक्षा तभी कर सकता है जब उसके अधिकांश निवासियोंका स्वास्थ्य और जीवित रहनेकी क्षमता सन्तोषजनक हो।

सरकारकी नीतिमें परिवर्त्तन

यही वजह है कि ताइशोके शासनकालके पाचवेंसे सातवें वर्षके भीतर—अर्थात् १९१६ से १९१८ तक—सरकारी नीतिमें महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। इसे एक लेखकने ताइशोकी "शान्ति-मय क्रान्ति" कहा है। इस क्रान्तिके दो मुख्य अङ्ग सामाजिक शासनकी स्थापना और स्त्री-शिक्षामें, विशेषकर शारीरिक व्यायाम-सम्बन्धी शिक्षाकी नीतिमें, आमूल परिवर्त्तन थे। अभीतक जापानमें वस्तुतः सामाजिक शासनका अभाव-सा था। सामाजिक राजनीति, समाजवाद और साम्यवाद (कम्यु-निज्म) इन सबको वहाँकी सरकार खतरनाक विचार समझती थी। १९१६ और १९१८ में जाकर एक तरहसे सामाजिक शासनका प्रारम्भ हुआ।

यूरोपीय युद्धसे जो सबक मिला उसकी सत्यता प्रगति-विरोधी दलवालोंको भी स्वीकार करनी पड़ी। वे समझ गये कि राष्ट्रके भावी संकटके समय जब युद्धका सामना करनेके लिए सारे राष्ट्रको तैयार होनेकी आवश्यकता आ पड़े, तब स्त्रियोंको उन सब महत्त्वपूर्ण कार्योंके करनेमें पुरुषोंका हाथ बँटाना चाहिये जो सैनिक आयोजनके अनुसार इनके जिम्मे पड़े।

निस्सन्देह पहले भी 'सारे साम्राज्यके ऐकमत्य' की दुहाई दी जाती थी और युद्धके समय स्त्रियोंको भी कई बार असाधारण काम करने पड़ते थे। उदाहरणके लिए युद्ध-क्षेत्रके अस्पतालोंमें उपसेविकाओंका काम करना, गोला बारूद भेजनेमें सहायता देना अथवा लड़ाईमें गये हुए सैनिकोंके कुटुम्बोंकी मदद करना किन्तु ये सब काम भी इतने हलके, सरल और सौम्य थे कि ये वस्तुतः नारी-जातिकी शक्ति और सामर्थ्यसे बाहर अथवा उनकी प्रकृतिके प्रतिकूल नहीं कहे जा सकते। महायुद्धके समयकी परिस्थितिसे नसीहत लेकर जो राष्ट्रीय सैनिक आयोजन किया गया उसके अनुसार स्त्रियोंसे जिन कामोंको करनेके लिय कहा गया वे इन बिलकुल भिन्न और "नारी जाति" की विशेषताओंके क्षेत्रसे परे थे।

इस प्रकार परिस्थितिके कारण उचित-अनुचितकी पुरानी परिभाषाका परित्याग कर जापानमें स्त्री-शिक्षाकी नीति अशातरूपसे बदलती गयी। इसमें सन्देह नहीं कि अविवाहित रहनेके कारण स्त्रियोंको अधिकाधिक संख्यामें जो कारखानोंमें जाकर काम करनेके लिए बाध्य होना पड़ा उसका भी इस परिवर्त्तनमें बड़ा हाथ था। शारीरिक तथा मानसिक शिक्षा-सम्बन्धी जो थोड़ी बहुत रुकावटें रह गयी थीं वे भी धीरे धीरे दूर कर दी गयीं।

भूकम्पका व्यापक प्रभाव

जापानी स्त्रियोंके जीवनमें वास्तविक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन तो सन् १९२३ के भूकम्पके बादसे हुआ। इस महती विपत्तिके कारण वहाँकी बहुसंख्यक स्त्रियोंको रहन-सहनका नया तरीका अख्तियार करना पड़ा और व्यवसाय-वाणिज्यके उन दफ्तरोंमें



जापानकी वीर बालाएँ

भी वे काम करने लगीं जिनमें अभीतक उनका प्रवेश निषिद्ध था। संकटके समय उनसे काम लेनेका आयोजन किया गया, क्योंकि उजड़े हुए स्थानको फिरसे बसानेके विशाल कार्यमें प्रत्येक वयस्क व्यक्ति स्त्री हो या पुरुष सबकी आवश्यकता थी।

जिस तरह विश्वव्यापी युद्धके कारण अमेरिका और यूरोपकी स्त्रियोंको व्यवसाय-वाणिज्यके उन क्षेत्रोंमें प्रवेश करनेका मौक़ा मिला, जिनमें प्रायः अबतक पुरुष वर्ग ही काम करता था, उसी तरह १९२३ के भूकम्पके बाद किमोनो धारण करनेवाली जापानी महिलाओंको जो अभीतक केवल घर-गृहस्थीके ही कार्योंमें फँसी रहती थीं, अपने पतियों और भाइयोंके क्षेत्रोंमें प्रवेश करनेका अवसर मिला।

दफ़्तरोंमें काम करनेपर स्त्रियोंको शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि उन टूटे-फूटे और भूकम्प-ध्वस्त अस्थायी कार्यालयोंमें ढीलेढाले और महँगे किमोनो धारण करना व्यर्थ खर्च बढ़ाना है। यही वजह है कि वहाँकी बहुत-सी स्त्रियों और लड़कियोंने यूरोपीय स्त्रियों जैसी कामकाजू पोशाक धारण करना शुरू किया। इसके साथ ही स्वभावतः विदेशी पाउडरों, क्रीमों, और ओठ लाल करनेके मसालों आदिका प्रयोग होने लगा, यहाँ तक कि कुछ औरतोंने अपने सिरके बाल भी कतरवाने शुरू कर दिये।

अधिक ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि स्त्रियाँ खुद इस नयी परिस्थितिमें रहना पसन्द करने लगीं। एक बार दफ्तरोंमें काम पा जाने पर वे इस प्रकार प्राप्त अपने "अधिकारों" का परित्याग करनेके लिए तैयार नहीं होती थीं। थोड़ेमें यही वहाँकी महिलाओंकी मूक क्रान्तिका इतिहास है।

नूतनताका भूत

जापानकी महिलाओंपर इस समय नूतनताका भूत सवार-है। ओंठ रँगने और गर्दनतक छँटे हुए बाल धारण करनेका फैशन जापानके शहरोंमें खब देख पड़ता है। नाचना, शराब पीना, और इसीसे मिलते-जुलते पश्चिमके अन्य दोष भी शीघ्रता-पूर्वक फैलते जा रहे हैं। पश्चिमकी तड़क-भड़कको अपनानेके लिए जापानी लोग क्यों मरे जा रहे हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। जो हो, मुझे जापानके विवेकशील व्यक्तियोंकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शितामें विश्वास है। इनकी संख्या जापानके मुल्की कर्मचारियोंकी अपेक्षा सैनिक कर्मचारियोंमें ज्यादा है, यद्यपि पाठकोंको यह बात कुछ विचित्रसी मालूम होगी।

भयका कारण नहीं

जापानवाले विदेशी वस्तुओंका उत्तमसे उत्तम प्रयोग करनेके लिए प्रसिद्ध हैं। यद्यपि बाहरी तौरसे वे पश्चिमके रङ्गमें रँगे हुएसे मालूम पड़ते हैं, फिर भी आन्तरिक रूपसे वे पूर्णतया जापानी ही हैं। दफ्तरोंमें वे विदेशी पोशाक पहनते हैं, किन्तु घरपर प्रधान मन्त्रीसे लेकर मामूली मज़दूरतक किमोनो अर्थात् जापानकी राष्ट्रीय पोशाक धारण करते हैं। इसलिए इस बातकी शंका करनेके लिए कोई कारण नहीं है कि एक दिन जापान बिलकुल पश्चिमी सभ्यतामें सराबोर हो जायगा।

मैं स्वयं पश्चिमी बातोंका अत्यधिक अनुकरण करनेका पक्षपाती नहीं हूँ, इसलिए मुझे यह देख कर बड़ी खुशी होती है कि जापानकी स्त्रियाँ पश्चिमकी वेशभूषा धारण करती हुई भी जापानी पोशाक और जापानी तौर-तरीकोंसे विशेष प्रेम करती

हैं। उदाहरणके लिए, सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेनेवाली कई प्रमुख स्त्रियाँ बड़ी बड़ी सभाओंमें भाषण करते समय भले ही विदेशी पोशाकमें उपस्थित होती हों, किन्तु घरमें उनके सन्दूक शानदार किमोनो वस्त्रोंसे ही भरे रहते हैं। श्रीमानोंकी अनेक लड़कियाँ पश्चिमके बेढंगे वस्त्रोंकी अपेक्षा अपनी राष्ट्रीय पोशाकमें अधिक सुन्दर प्रतीत होती हैं।

पश्चिमके अनुकरणकी धुन

यदि आज कोई टोकियोकी यात्रा करे तो वहाँपर केवल एक हफ्ते रहनेके बाद ही उसे यह देखकर आश्चर्य होगा कि किस तरह वहाँकी युवतियाँ और लड़कियाँ अधिकाधिक संख्यामें अपनी परम्परागत प्रथाओंका परित्याग कर पश्चिमके तौर-तरीकोंको अख्तियार कर रही हैं। यह परिवर्त्तन केवल बाहरी बातोंमें ही नहीं हो रहा है, बल्कि वहाँकी स्त्रियोंके विचार भी बड़ी शीघ्रताके साथ बदल रहे हैं, यद्यपि हालमें ही बाहरसे आये हुए व्यक्तिको स्वभावतः इसका पता नहीं चलता। टोकियोकी गिंज़ा सड़कपर, जहाँ दिल्लीके चाँदनी चौकके समान चहल-पहल रहती है, शामके समय आधीसे अधिक लड़कियाँ यूरोपीय वेषभूषामें दिखाई देंगी, यद्यपि कुछ ही वर्ष पहले मुश्किलसे १० फीसदी स्त्रियाँ ही ऐसी पोशाकमें बाहर निकल सकनेकी हिम्मत कर सकती थीं, क्योंकि उन्हें डर था कि लोग उन्हें नयी सभ्यताके पीछे दीवानी कहकर उनकी निन्दा करेंगे।

लोकरुचिमें परिवर्त्तन

जापानी भाषामें आधुनिक ढँगकी नवयुवतीको 'मोगा' कहते हैं। वहाँके शहरोंमें ऐसी युवतियोंके रंग-ढंग लोगोंको प्रायः

पसन्द आने लगे हैं। जापानके पुराने ढंगके रङ्गीन चित्रोंमें स्त्रियोंके लम्बे लम्बे विचित्रसे लगनेवाले चेहरे चित्रित किये जाते थे और उस समय लोगोंको वे बड़े भले मालूम होते थे, किन्तु अब ऐसे चित्रोंको देखकर कोई मुग्ध नहीं होता। जिस तरहकी युवतियाँ आजकल आकर्षक समझी जाती हैं, उनके बाल हालीउडकी अभिनेत्रियोंकी भाँति सँवारे हुए रहते हैं और वे अपने ओंठों तथा कपोलोंपर विदेशी पाउडरका प्रयोग करती हैं।

जापानमें अमेरिकन और यूरोपीय लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ कम ही हैं, इसलिए वहाँकी स्त्रियाँ साधारण तौरसे अमेरिकन चित्रपटोंमें देख पड़नेवाले बनाव-शृङ्गारको अपना आदर्श बनाती हैं। जोन क्राफर्ड, कान्सटैन्स बेनेट, के फ्रान्सिस और केरोल लोम्बार्ड—प्रायः इन्हींपर वहाँकी नवयुवतियाँ अपनेको न्यौछावर किये हुए हैं। यद्यपि यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होती है, फिर भी यह सही है कि ये युवतियाँ अपनी इष्ट अभि-नेत्रियोंके उठने-बैठने और चाल-ढालका अनुकरण कर पश्चिमी स्त्रियोंकी तरह चलना सीख लेती हैं।

प्रेमका अर्थ

जापानकी लड़कियाँ अमेरिकन चलचित्रोंसे केवल सुन्दर चालका अनुकरण करना ही नहीं बल्कि और भी बहुत-सी बातें सीख रही हैं। उदाहरणके लिए 'प्रेम' शब्दका जो अर्थ पश्चिममें लगाया जाता है वही अब उन्होंने भी ग्रहण कर लिया है, यद्यपि उनकी अपनी भाषामें उसका कोई विशेष अर्थ नहीं। लड़कियोंके माता-पिताके लिए इसका परिणाम भयानक हुआ। वहाँ बहुतसे माता-पिता अब भी इस पुराने ख़यालके अनुयायी

हैं कि विवाहसंबंध स्वयं उन लोगों द्वारा निश्चित न किये जाने चाहिए जिनका उनसे मुख्य संबंध है बल्कि विवेकशील बाहरी व्यक्तियों द्वारा ही तय किये जाने चाहिए, जिनमें दोनों पक्षोंके गुण-दोषोंको निष्पक्ष भावसे देखनेकी क्षमता हो। इतना होते हुए भी जापानियोंपर पश्चिमका इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि बूढ़े-सयानोंके प्रतिवादकी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता और बातकी बातमें नये तरीके अख्तियार कर लिये जाते हैं।

पश्चिमके अनुकरणसे लाभ

अनेक विचारशील जापानियोंका विश्वास है कि जापानी महिलाओंके पश्चिमी सभ्यताके रंगमें रँग जानेसे राष्ट्रको लाभ पहुँचा है। जबसे उन्होंने किमोनोका परित्याग कर पश्चिमी वेष-भूषा धारण की है, तबसे उनमें काफी शारीरिक सुधार हुआ है। किमोनोके कारण चलने-फिरने तथा उठने-बैठनेमें बाधा होती थी और उसके कारण लड़कियोंके शरीरकी बाढ़ समुचित रूपसे नहीं होने पाती थी। पश्चिमी पोशाक पहननेसे लड़कियोंको चलने-फिरनेमें कोई रुकावट नहीं होती और वे श्रमसाध्य खेल-कूदमें भाग ले सकती हैं, जिससे उनके शारीरिक विकासमें सहायता पहुँचती है।

नूतन आदर्शकी सृष्टि

आधुनिक जापानकी लड़कियाँ पूर्वीय सौन्दर्यका जो नया आदर्श निर्माण कर रही हैं, उसे हम पश्चिमकी कोरी नक़ल नहीं कह सकते। यही वजह है कि टोकियोमें होनेवाली सौन्दर्य-प्रतियोगिताके निर्णायकोंको इस बातका पूरा विश्वास है कि जापानमें सौंदर्यके लिए पुरस्कार पानेवाली लड़कियोंकी तुलना

अन्य देशोंकी ऐसी ही लड़कियोंसे मज़ेमें की जा सकती है। वे प्राच्य सौन्दर्यकी पाश्चात्य प्रतिमूर्त्ति ही न होकर एक ऐसी मनोरम सृष्टि होंगी जिसमें दोनों गोलार्द्धोंकी उच्च विशेषताओंका समन्वय हुआ हो। पश्चिमके अनुकरणका समर्थन करनेवालोंका कथन है कि जापानी वेषभूषा शहरोंके जीवनके लिए महँगी और अव्यवहार्य है। वहाँकी स्त्रियोंके लिए दफ़्तरोंमें पहननेके लिए पश्चिमी ढंगके कपड़े तैयार कराना ज़्यादा सस्ता पड़ता है।

ऊँचाईमें वृद्धि

स्वराष्ट्र-विभाग द्वारा की गयी जाँच-पड़तालसे यह आश्चर्य-जनक बात प्रगट होती है कि आजकलकी चौदहसे लेकर उन्नीस वर्षकी लड़कियोंकी ऊँचाईका औसत एक पुश्त पहलेकी लड़कियोंकी अपेक्षा लगभग इञ्च सवा इञ्च बढ़ गया है। अवश्य ही यही वह उम्र है जब कि लड़कियाँ बाहरी खेलोंमें शरीक होती हैं। इस दिशामें जापानी लड़कियोंने कितनी उन्नति कर ली है, यह इसीसे स्पष्ट है कि अब वे खेलोंकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगितामें भी भाग लेने लगी हैं।

शरीर और चेहरेके सिवा जापानी लड़कियोंकी और और बातोंमें भी काफी परिवर्त्तन हो गया है। उदाहरणके लिए, उनके सिरोंकी पोशाक अब बिलकुल बदल गयी है। बाल सँवारनेका ढंग बदल जानेसे उनकी बाहरी शकल-सूरतपर बहुत ज़्यादा असर पड़ा है। कारण यह है कि बाल सँवारनेका पुराना जापानी तरीक़ा अमेरिका और यूरोपके तरीक़ेसे बिलकुल भिन्न था। पश्चिममें बालोंको घूँघरवाले या लहराते हुए रखनेका फैशन है किन्तु जापानमें यह तरीक़ा घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था। बालोंके एक दो छल्लोंका गालपर लट-

कते रहना पश्चिममें सौन्दर्यका चिह्न समझा जाता है, किन्तु जापानमें यह पसन्द नहीं किया जाता । इसी तरह पश्चिममें सुनहले बाल सौन्दर्यकी अद्वितीय निधि समझे जाते हैं किन्तु पुराने तरीकेपर चलनेवाले जापानियोंको काले काले चमकदार बालोंके सिवा और किसी भी तरहके बाल पसन्द नहीं। पश्चिमकी स्त्रियाँ बालोंमें बहुत कम तेल डालती हैं किन्तु जापानमें इसका प्रयोग प्रचुर मात्रामें होता है।

बाल सँवारनेका पुराना तरीका बदल जानेकी वजहसे ही जापानी लड़कियोंके बाह्य रूपमें आश्चर्य-जनक परिवर्त्तन हो गया है। फलतः अब वहाँ सौन्दर्यकी कसौटी भी बदल गयी है। पहले जिस तरह बाल सजाये जाते थे, उसमें लम्बा और पतला चेहरा अच्छा मालूम होता था किन्तु अब पश्चिमी ढङ्गसे बालोंको सँवारनेके कारण गोल चेहरा पसन्द किया जाता है। जो हो, हाइडपार्क, हॉलीवुड तथा पेरिसके फैशनोंमें अभी पर्याप्त सुधार करना होगा, तभी जापानी लड़कियोंके रूप-रङ्गके साथ उनका सामंजस्य स्थापित हो सकेगा। यही बात दूसरी चीजोंके बारेमें भी कही जा सकती है।

आधुनिक नवयुवतियाँ

सड़कपर अन्य किसी भी दृश्यसे विचारशील दर्शकका मन उतना आकर्षित नहीं होता जितना माताके बगलमें चलती हुई आधुनिक जापानी नवयुवतीको, जिसे वहाँकी ठेठ भाषामें 'मोगा' कहते हैं, चलते हुए देखकर होता है। जैसा कि डाक्टर फाउस्टका कथन है, "दुर्बलताके साथ ही सुकुमारताका घनिष्ठ सम्बन्ध है यह पुराना ख्याल अब जापानसे दूर हो रहा है। वहाँवाले यह जान गये हैं कि यदि हमें देशमें बलिष्ठ सन्तान

उत्पन्न करनी है तो पहले बलवती माताओंकी आवश्यकता है।"
हम देखते हैं कि अब [illegible] हो रही हैं और साथ ही उनके सौन्दर्यको भी कोई क्षति नहीं पहुँच रही है। वहाँकी युवतियाँ अब मोटरगाड़ियाँ दौड़ातीं, वायुयानोंका सञ्चालन करतीं और आकाशसे गुब्बारों (पैराशूट) के ज़रिए नीचे उतरती हैं।

आठवाँ अध्याय

कारखानोंमें स्त्रियोंकी प्रधानता

संसारके अन्य किसी भी देशमें इतनी मेहनती और आत्म-त्याग करनेवाली किन्तु साथ ही किसी तरहकी भी शिकायत न करनेवाली और हमेशा प्रसन्नमुख रहनेवाली स्त्रियाँ आपको न मिलेंगी जैसी जापानमें देख पड़ती हैं। मैं उनकी उत्सर्ग-भावनाकी भक्ति और उनकी प्रफुल्लताकी प्रशंसा करता हूँ। वे ही उन महीन कपड़ोंका अस्सी प्रतिशत अंश तैयार करती हैं जिन्हें भारत तथा अन्य देशोंके लोग प्रेमके साथ खरीदते हैं। वे देश भरके होटलों, भोजनालयों, नाट्यशालाओं, सिनेमागृहों, नृत्यशालाओं, भण्डारों, मोटरबसों और ट्रामगाड़ियोंमें काम करती हैं। प्रत्येक स्थानपर वे मृदु मुसक्यानके साथ आपका स्वागत करेंगी और जब आप जाने लगेंगे तब "एरीगतो" (धन्यवाद) शब्दका उच्चारण करेंगी।

अद्वितीय आत्म-बलिदान

मैं यह दावेके साथ कह सकता हूँ कि जापानकी औद्योगिक उन्नतिका आधेसे अधिक श्रेय वहाँकी [illegible]

दानको है। भारतमें लड़की अपने मा-बापके लिए भारस्वरूप समझी जाती है किन्तु जापानमें उसकी गणना ईश्वरके आशीर्वादकी तरह की जाती है। मा-बापके प्रति उसके हृदयमें आश्चर्यजनक भक्ति होती है। प्रतिवर्ष सैकड़ों लड़कियाँ अपने दुर्दशाग्रस्त और भूखों मरते हुए मा-बापकी रक्षाके लिए अपने आपको बेच डालती हैं। लड़कियाँ ही वस्तुतः जापानकी रक्षिकाएँ हैं। उदाहरणके लिए वहाँके कारखानोंको लीजिये।

कारखानोंमें स्त्रियोंकी तादाद

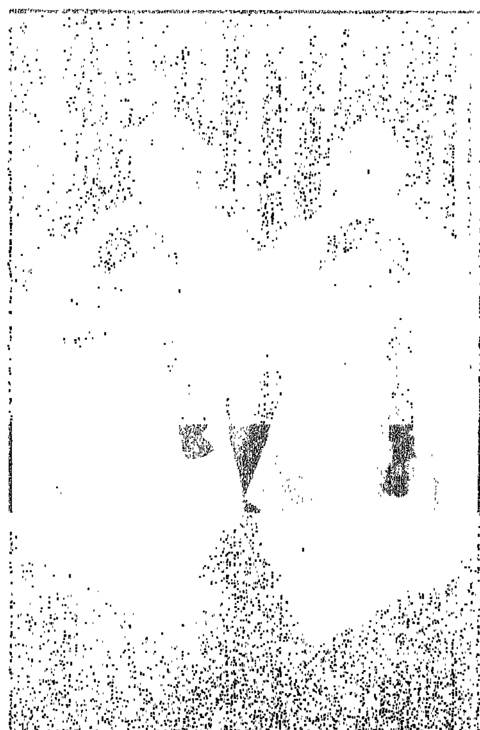
बिलकुल हालके सरकारी आँकड़ोंसे विदित होता है कि कताई और बुनाईके कारखानोंमें कुल काम करनेवालोंमें ८२·४ प्रतिशत स्त्रियाँ ही हैं। अन्य बहुतसे कारखानोंमें उनकी तादाद ५४·३ प्रतिशत है। यद्यपि लकड़ीके कारखानों, यन्त्रों, रासायनिक वस्तुओं, खाद्य सामग्री, वर्त्तन, मुद्रण, जिल्दसाजी, गैस और बिजली लोहे पीतल आदिके उद्योग-धन्धोंमें पुरुषोंकी संख्या स्त्रियोंसे ज्यादा है, फिर भी सब कारखानोंमें काम करनेवालोंकी संख्याका जोड़ लगानेपर स्त्रियों और लड़कियोंकी तादाद ही ज्यादा (६३·४) ठहरती है।

यदि हम जाँचका क्षेत्र कुछ बढ़ा दें और उन सब उद्योग-धन्धोंके सम्बन्धमें भी विचार करें जिनसे पैसा मिलता है, तो हमें विदित होगा कि जापानकी दो करोड़ नब्बे लाख स्त्रियोंमेंसे ९९ लाख २० हज़ार स्त्रियाँ मजूरी कमानेवाली हैं। जो उद्योग-व्यवसाय केवल स्त्रियोंके लिए उपयुक्त समझे जाते थे, उन्हें छोड़कर अब वे लोहा पीतल इत्यादि और यन्त्रों आदिके क्षेत्रमें प्रवेश कर रही हैं। इसी तरह शारीरिक कार्योंसे अब मानसिक कार्योंकी ओर उनकी प्रवृत्ति हो रही है। सन्

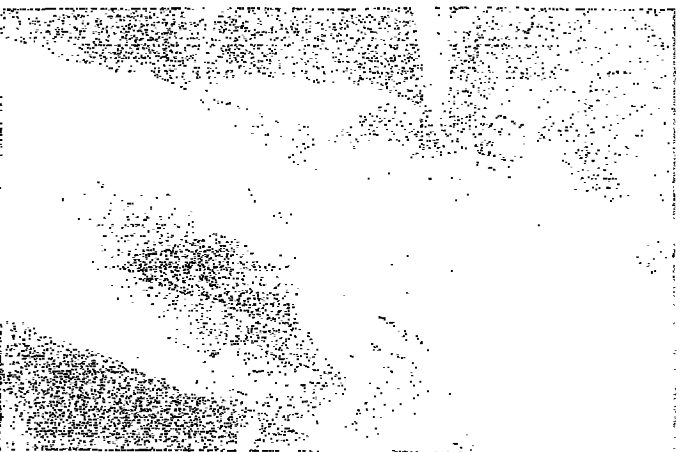
१९३१ में ३९८६ स्त्रियाँ वैद्यक सम्बन्धी या अखबारोंका काम करती थीं और १५४१५३ स्त्रियाँ दाईगिरी या रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषाका काम करती थीं। सन् १९२८ में ९६०८१ स्त्रियाँ अध्यापिकाएँ थीं, ४६७३७ तार टेलीफोन इत्यादिमें काम करती थीं और ९४५२ रेलोंमें नियुक्त थीं। टोकियोमें जो १७००० स्त्रियाँ काम करती हैं उनमेंसे ७६·५७ अपनी जीविका कमानेके साथ साथ अपने कुटुम्बकी परवरिशमें भी सहायता देती हैं। इनमेंसे अधिकांश १६ से २५ वर्षतककी उम्रवाली हैं और ये औसतन ३० येन माहवार कमा लेती हैं।

मजदूर स्त्रियोंके प्रति व्यवहार

मैंने अनेक स्थानों विशेषकर कोबेके 'कानेगाफूची' मिलमें अपनी आँखोंसे देखा है कि काम करनेवाली लड़कियोंके साथ प्रेम और कृपाका व्यवहार किया जाता है। वे अपने कामको सुखमय कर्तव्य समझकर करती हैं, हमारे देशके मजदूरोंकी तरह बेगार समझकर नहीं। मैंने उन लड़कियोंको, जिनके मुखपर आश्चर्यजनक स्फूर्ति, सजगता और प्रसन्नताके भाव देदीप्यमान हो रहे थे, अपना काम प्रशंसनीय ढंगसे करते देखा। वहाँ काम करने और रहनेकी जगहमें इतनी सफाई रहती है कि उससे बहुतसे देश नसीहत ले सकते हैं। मिलसे सम्बद्ध सुन्दर पार्क, सिनेमा घर, स्कूल और अस्पताल इस बातके सबूत हैं कि वहाँ श्रमिकोंके साथ कैसा अच्छा व्यवहार किया जाता है। उनके बिस्तर, पहननेके कपड़े और रहनेके कमरे सचमुच ही हमारे देशके कई लखपतियोंसे ज्यादा साफ रहते हैं। जब मैंने छुट्टीके समय उन लड़कियोंको अपने रङ्ग-बिरङ्गे किमोनो पहने हुए पार्कमें इधर उधर घूमते हुए देखा तो मेरी



जापानकी मजदूर लड़कियाँ



रेशमके कोये

आत्माको इस बातका विश्वास ही न हुआ कि ये कारखानोंमें काम करनेवाली लड़कियाँ हैं। इनकी आज़ादी और प्रसन्नता देखकर यहाँकी रानियोंको भी ईर्ष्या हो सकती है।

उक्त पुतलीघरमें काम करनेवाली स्त्रियोंको शिक्षा तो मुफ्तमें मिलती ही है, साथ ही स्वास्थ्यके बीमा और डाक्टरी सहायता-के लिए भी उन्हें कुछ नहीं देना पड़ता। इसके अतिरिक्त जब वे काम छोड़कर जाने लगती हैं, तब पहले सालकी नौकरीके लिए डेढ़ या दो महीनेकी तनख्वाह तथा उसके बादके प्रत्येक वर्षके लिए १० से २० प्रतिशत अंश और पुरस्कारके रूपमें दिया जाता है। औसतन उन्हें ढाई वर्ष काम करना पड़ता है। काम छोड़ जानेका कारण मामूली तौरसे विवाह-बन्धन ही होता है। काम शुरू करनेके पहले उनसे किसी तरहकी प्रतिज्ञा नहीं करायी जाती और सामान्य अनुशासनके लिए आवश्यक दो एक शर्तोंके सिवा अन्य कोई रुकावट उनकी स्वतन्त्रतामें नहीं डाली जाती।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका यह आशय नहीं सम-झना चाहिये कि कारखानेमें काम करनेवाली प्रत्येक लड़कीके साथ ऐसा ही व्यवहार होता है। कारखानेकी छोटाई-बड़ाई, उसकी पूँजी और उसमें होनेवाले कामके अनुसार व्यवहारमें भी अन्तर हो जाया करता है। छोटे कारखानोंमें इतने सुभीते नहीं होते किन्तु काम करनेके घण्टे वहाँ भी घटाये जा रहे हैं।

कारखानोंके निरीक्षकोंकी १९३० की रिपोर्टमें लिखा है कि "काम करनेके घण्टे सामान्य तौरसे घटाये जा रहे हैं किन्तु यह स्मरण रहे कि अतिरिक्त समयमें काम करना भी जारी है, विशेषकर अधिक उम्रवाले उन मजदूरों द्वारा जो यंत्र तैयार करनेवाले कारखानोंमें काम करते हैं।" सन् १९३१ में वहाँके कारखानोंमें औसतन १० घण्टे काम होता था जिसमें

आध घण्टेसे कुछ अधिक छुट्टी बीचमें दी जाती है। १९३३ की एक और रिपोर्टसे पता चलता है कि "पिछले कुछ वर्षोंके भीतर कारखानोंसम्बन्धी क़ानूनमें बहुत कुछ सुधार हुआ है और अब वह अन्य देशोंकी बराबरीपर आगया है।" कारखानों तथा खानों सम्बन्धी क़ानूनमें मातृत्वकी रक्षाके लिए भी एक धारा जोड़ दी गयी है। युवराजके जन्मकी खुशीमें १९३४ के शुरूमें सम्राट्ने साढ़े सात लाख येनकी जो रक़म दानमें दी थी, उसका माताओं और बच्चोंकी रक्षा सम्बन्धी कार्यपर अच्छा प्रभाव पड़ रहा है।

मजदूरोंकी दशा प्रायः उन्हीं कारखानोंमें सन्तोषजनक नहीं है जो या तो बिलकुल संघटित नहीं हैं या केवल अल्प मात्रामें ही संघटित हैं। अधिकतर स्त्रियाँ कपड़े तैयार करनेवाले बड़े बड़े कारखानोंमें काम करती हैं और ये बहुत अच्छी तरह संघटित हैं। इन कारखानोंमें औसतन जो दैनिक मजदूरी मिलती है, वह इस प्रकार है—

	पुरुष	स्त्री
कताईके कारखानोंमें	१·७ येन[१]	१·२ येन
बुनाईके कारखानोंमें	१·५ येन	१·० येन
रेशमके कारखानोंमें	१·४ येन	१·८ येन
रंगाईके कारखानोंमें	२ येन	·९ येन

तसवीरका दूसरा पहलू

इस अध्यायको समाप्त करनेके पहले मैं तसवीरका दूसरा पहलू भी पाठकोंके सामने रख देना चाहता हूँ। यद्यपि वास्त-

[१] येन इस समय लगभग १२ आनेका होता है।

विक स्थिति उतनी शोचनीय नहीं है जितनी नीचेके अवतरण-से मालूम होती है, फिर भी इसको पढ़ लेना अच्छा ही होगा।

इस विषयकी चर्चा करते हुए एक यूरोपियन संवाददाता लिखता है "कहा जाता है कि संसारके किसी भी देशमें स्त्रियों-के साथ इतना ज्यादा अत्याचार नहीं होता जितना जापानमें होता है। यह तो कदाचित् सत्य नहीं है, फिर भी सरकारी आँकड़ोंसे मालूम होता है कि निम्न श्रेणीकी प्रत्येक दस पत्नियोंमें-से एक उसके पति द्वारा परित्यक्त की जाकर अपने पिताके घर भेज दी जाती है। पूर्व कालमें तीन पत्नियोंके पीछे एकका औसत पड़ता था।

"ऊँची श्रेणीके लोगोंमें ऐसी घटनाएँ कम ही होती हैं, किन्तु समाजके निम्न वर्गकी हालत तो अभीतक इतनी खराब है कि उनके सम्बन्धमें कहे जानेवाले इस कथनमें बहुत कुछ सचाई है कि जापानमें किसी पुरुषको अपनी पत्नीका परित्याग करनेके लिए यदि कुछ करनेकी आवश्यकता है तो केवल इतनी ही कि वह उसे दो तीन आना गाड़ीका किराया दे दे और उसे आज्ञा दे कि वह चुपचाप अपने बापके घरका रास्ता ले। (वास्तवमें यह बात सच नहीं है)

"यह बात आश्चर्यजनक न मालूम होगी यदि इस बातका खयाल रखा जाय कि जापानी स्त्रियोंपर जो शिष्टा-चार लादा जाता है उसमें वस्तुतः भयका ही अंश प्रधान रहता है जो कि पुराने जमानेकी उस नीति-परम्परासे उत्पन्न हुआ है जिसमें बिना किसी पशोपेशके गुरुजनोंकी आज्ञा माननेका हास्यास्पद निर्देश रहता है। प्रत्येक स्त्रीको अपने पिता, पति और भाइयोंकी आज्ञाका हर हालतमें भय एवं नम्रताके साथ पालन करना पड़ता था।

"इस तरह आँख मींचकर आज्ञापालन करनेकी बात अब असंभव हो गयी है, विशेषकर इसलिए कि अब स्त्रियाँ अपनी रोजी अपने आप कमाने लगी हैं—इस समय १५ लाखसे अधिक स्त्रियाँ कारखानों आदिमें काम कर रही हैं। इसके अतिरिक्त अब जापानी लड़कियोंको अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंका ज्ञान भी हो गया है।"

ऊपर तसवीरका जो दूसरा पहलू दिखलाया गया है, यद्यपि उसमें अतिशयोक्तिसे बहुत काम लिया गया है, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतकी ही तरह जापानी स्त्रियाँ अभीतक पुरुषोंके समकक्ष पद नहीं प्राप्त कर सकी हैं, और इस बातकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

नवाँ अध्याय

कुटुम्ब-प्रथा

संस्कृति, धर्म और तटकर-व्यवस्था तथा ऐसी ही अन्य कई बातोंकी तरह कुटुम्ब-प्रथा भी जापानने भारतसे ही ग्रहण की है और उससे लाभ उठाते हुए अबतक सचाईके साथ उसकी रक्षा कर रहा है। भारतमें तो दरिद्रता, सामाजिक बुराइयों तथा गुलामीके कारण यह प्रथा अब छिन्न भिन्न-सी हो गयी है और चारों ओरसे उसे नष्ट कर देनेकी ही पुकार मची हुई है। किन्तु प्रतियोगिताके इस ज़मानेमें इसी प्रथाके कारण जापान अपनेको बचा सका है। मेरा यह विश्वास है कि कुटुम्ब-प्रथा स्वयं कोई बुरी चीज़ नहीं है, क्योंकि उससे

वास्तविक सहयोग और परिवारके सम्मिलित हितके लिए आत्मत्यागकी शिक्षा मिलती है। हमारे देशमें कुटुम्बके अन्य व्यक्ति कमानेवाले व्यक्तिके लिए भार स्वरूप होते हैं, किन्तु जापानमें प्रत्येक व्यक्ति काम करता है और कुटुम्बके लिए सहायक होता है—यही वहाँकी कुटुम्ब-प्रथाकी खूबी है।

जापानकी तथा यूरोप और अमेरिकाकी कुटुम्ब-प्रथाओंमें जो स्थूल अन्तर है वह यह है कि जापानमें माता-पिता और बच्चे ही कुटुम्बके केन्द्र समझे जाते हैं किन्तु यूरोप-अमेरिकामें दम्पत्तिका ही प्राधान्य रहता है। जापानी कुटुम्ब प्रायः बड़ा और अधिपति-नियंत्रित होता है किन्तु यूरोप और अमेरिकाका कुटुम्ब छोटा और आधुनिक ढङ्गका होता है। जापानी कुटुम्बमें स्थायित्व, वंशके नामकी रक्षा, वंशपरम्परा, रहन-सहन, पेशा और परिवारकी सामान्य सम्पत्तिकी रक्षाके विचारपर ज़ोर दिया जाता है। इसके विपरीत यूरोपीय तथा अमेरिकन कुटुम्बमें वंश-परम्परा, वंशानुगत पेशा, या वंशकी सम्मिलित सम्पत्तिका कोई सिलसिला नहीं रह जाता। स्त्री और पुरुष मिलकर एक नये कुटुम्बकी स्थापना करते हैं, जो उनकी मृत्यु होने या एक दूसरेसे अलग हो जाने पर खतम हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कुटुम्ब तभीतक क़ायम रहता है।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे कुटुम्बमें भी जिसमें दम्पत्तिका प्राधान्य रहता है बच्चे शामिल रहते ही हैं, फिर भी उसमें दम्पत्तिका स्थान ही मुख्य होता है, माता-पिता और बच्चोंके सम्मिलनका विशेष महत्त्व नहीं होता। माता-पिता और बच्चोंके बीचके बन्धनकी अपेक्षा दाम्पत्य बन्धन अधिक मज़बूत होता है। पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा माता-पिता और बच्चे

कितनी ही मज़बूतीके साथ एक दूसरेसे सम्बद्ध क्यों न हों, बादमें बच्चे बड़े होकर जब विवाह कर लेंगे तब वे उस कुटुम्बसे पृथक् होकर नये कुटुम्बोंकी स्थापना करेंगे। ये लोग पुराने कुटुम्बके सदस्य तो रह ही नहीं जाते, अतः उसकी रहन-सहन-का अनुगमन भी नहीं करते और न वंश-परम्पराका ही अनुसरण करते। वे जहाँ चाहते हैं वहाँ रहकर माता-पितासे पृथक् स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं। यदि नये दम्पत्ति अपने माता-पितासे कोई वस्तु वरासतमें पाते हैं तो सिर्फ भौतिक सम्पत्ति-ही, जिसका मूल्य बाज़ारमें आँका जा सकता है। आध्यात्मिक विचार उन्हें अपने माता-पिताके कुटुम्बसे नहीं मिलते।

जापानी कुटुम्बमें दम्पत्तिका स्थान गौण होता है। वे तो कुटुम्बके सदस्य मात्र हैं। सबसे महत्वकी बात यह है कि कुटुम्ब-नाम, वंशपरम्परा, वंशागत पेशा एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीको हस्तान्तरित होते रहते हैं। दम्पतिका महत्त्व इस बातमें ही है कि वे उत्तराधिकारियोंको जन्म देकर कुटुम्बकी रक्षामें सहायक होते हैं। यदि वंशपरम्परा या कुटुम्बकी रहन-सहनकी रक्षाके लिए कोई बाहरी अधिक समर्थ हो तो दम्पत्ति-की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे कुटुम्बको हम बड़ा कुटुम्ब कहते हैं किन्तु इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह नहीं है कि इसमें कई सदस्य होते हैं। कुटुम्ब कितना ही बड़ा क्यों न हो, यदि उसका लक्ष्य वंश-परम्परा आदिकी रक्षा करना नहीं है तो उसे बड़ा या अधिपति-नियन्त्रित कुटुम्ब नहीं कह सकते। इसके विपरीत, कुटुम्ब छोटा ही हो जिसमें माता-पिता और नवदम्पत्ति हों तो भी वह अधिपति-नियन्त्रित कुटुम्ब कहा जा सकता है, यदि उसमें कुटुम्बके स्थायित्वपर ज्यादा ज़ोर दिया जाता हो।

जापानी कुटुम्ब चाहे छोटा हो या बड़ा, उसका प्रधान लक्ष्य उसका सिलसिला बराबर बनाये रखना होता है। उसमें केवल भौतिक सम्पत्तिका ही उत्तराधिकार नहीं प्राप्त होता वरन् कुटुम्बके नाम, परम्परा इत्यादिकी चिरकालतक रक्षा की जाती है। पढ़े-लिखे लोगोंके मनमें भी ऐसी इच्छा होती है, तब फिर पुराणपन्थी लोगोंके लिए तो ऐसी आकांक्षा करना और भी स्वाभाविक है। कुटुम्बके सम्बन्धमें प्रायः सारे राष्ट्रके ही ऐसे विचार हैं, इसीसे वहाँ कुटुम्बके स्थायित्वकी रक्षाके लिए कई संस्थाओंकी स्थापना की गयी है। उनमेंसे कुछका विवरण नीचे दिया जाता है।

वहाँ पत्नी अपने पतिकी अर्द्धाङ्गिनी समझी जाती है और साथ ही अपने पतिके कुटुम्बकी नयी सदस्या भी। पत्नी होनेकी हैसियतसे उसे अपने पतिके प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित करना चाहिये और अपने भाव पतिके भावमें मिला देने चाहिये। किन्तु कुटुम्बकी एक नयी सदस्या होनेकी वजहसे उसे उसके परम्परागत जीवन-क्रमका सचाईसे अनुसरण करना चाहिये। उसके हृदयमें पतिके प्रति चाहे कितनी ही प्रगाढ़ भक्ति क्यों न हो, वह इस नये कुटुम्बकी सदस्या बननेके योग्य तबतक नहीं कही जा सकती जबतक वह उसकी परम्पराओंसे भी प्रेम नहीं करने लगती। ऐसी पत्नीके प्रति कुटुम्बके अन्य सदस्य रूखा व्यवहार कर सकते हैं और सम्भव है कि उसको तलाक भी दे दिया जाय। जापानमें यदि कोई स्त्री अपने पतिके कुटुम्बकी वंशपरम्परा आदिकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होती, तो यह उसके परित्यक्त किये जानेका मुख्य कारण समझा जाता है। यह प्रथा इस बातका सुबूत है कि वहाँ पत्नीके महत्त्वकी कसौटी कुटुम्बके स्थायित्वकी रक्षा ही मानी गयी है।

पतिके कुटुम्बका सिलसिला चलाये रखनेके लिए जो कुछ करते बन सके वह तो पत्नीको करना ही चाहिये, साथ ही उसे यदि सम्भव हो तो एक उत्तराधिकारीको भी जन्म देना चाहिये और वंशपरम्पराका सच्चा रक्षक बनानेके उद्देश्यसे उसका पालन-पोषण करना चाहिये। यदि दुर्भाग्यसे उसके कोई सन्तान न हो, अथवा यदि उसमें बच्चोंका पालन-पोषण करनेकी क्षमता न हो, तो उसमें उन मुख्य गुणोंका अभाव समझा जाता है जो ऐसे कुटुम्बकी पत्नीमें होने चाहिये, फिर चाहे उसमें अन्य विषयोंकी कितनी ही योग्यता क्यों न हो और अपने पतिके प्रति चाहे कैसा ही दृढ़ अनुराग क्यों न हो। इस समय तो अवश्य निस्सन्तान होनेकी वजहसे परित्यक्त की जानेवाली स्त्रियोंकी संख्या कम हो गयी है, किन्तु प्राचीन कालमें पत्नीका निस्सन्तान होना विवाह-विच्छेदका मुख्य कारण समझा जाता था।

जिस तरह पत्नीमें विभिन्न गुणोंका होना आवश्यक है, उसी तरह बच्चोंके सम्बन्धमें भी वहाँ कुछ प्रतिबन्ध रखे गये हैं। सबसे अधिक महत्त्व उस लड़केको दिया जाता है जो वंशका उत्तराधिकारी हो। उसके लिए माता-पिताकी मृत्युके बाद कुटुम्बके जीवन-क्रमकी रक्षा करना और उसकी आन्तरिक व्यवस्थाको बनाये रखना आवश्यक है। सामाजिक उत्सवोंके समय कुटुम्बका प्रतिनिधित्व करनेकी जिम्मेवारी उसीके सिरपर रहती है। यह उत्तराधिकारी हमेशा बड़ा लड़का ही होता है। वह कुटुम्बमें अन्य सब बालकोंसे पृथक् और खास तरहके व्यवहारका अधिकारी होता है। उसे कुटुम्बके शासन करनेका तथा उसकी चल एवं अचल सम्पत्तिकी निगरानी करनेका वह उत्तराधिकार प्राप्त हो जाता

है जो पहले उसके पिताको प्राप्त था। इन अधिकारोंके बदले उसे कुटुम्बकी परम्पराको अपनाना और सचाईसे उसकी रक्षा करना पड़ता है। उसके लिए कुटुम्बके सदस्योंको रोटीका आश्वासन देना भी आवश्यक है। उसमें इतने महत्त्वपूर्ण गुण होनेकी ज़रूरत है, इसीसे लड़कपनसे ही उसे ख़ास तरहकी शिक्षा दी जाती है। इस कुटुम्ब-प्रणालीको देखते हुए यह एक स्वाभाविक बात है कि वह अपनी इच्छाके अनुसार किसी स्त्रीसे विवाह नहीं कर सकता, क्योंकि जैसी उसकी पत्नी होगी वैसा ही प्रभाव कुटुम्बपर पड़ेगा। वही स्त्री पत्नी चुनी जाती है जिसके सम्बन्धमें कुटुम्बके मुखियाको तथा अन्य सम्बन्धियोंको यह विश्वास हो जाय कि उससे कुटुम्बका हित होगा। जिस उत्तराधिकारीके साथ इस तरहका विशेष व्यव-हार किया जाता है, वह यदि कुटुम्बकी शिक्षा तथा परम्पराके अनुरूप न चले तो उससे उत्तराधिकार छीन लिया जाता है। कुटुम्बका मुखिया स्वयं उसे अधिकारच्युत कर देता है, फिर चाहे उसका उसपर कितना ही अधिक स्वाभाविक प्रेम क्यों न हो, और किसी दूसरे व्यक्तिको उत्तराधिकारी बनाता है।

जापानी कुटुम्बमें उत्तराधिकारीकी स्थिति इतनी महत्त्वपूर्ण होनेकी वजहसे ही वहाँके क़ानूनमें उस विधिका निर्देश कर दिया गया है जिसके अनुसार अवस्था-विशेषमें बाहरका व्यक्ति उत्तराधिकारी बनाया जा सकता है। यह व्यक्ति एक तरहका दत्तक पुत्र होता है जो कुटुम्बके बाहरका होते हुए भी अब उसका सदस्य बन जाता है और कुटुम्ब तथा वंशपरम्पराकी रक्षाका भार उसपर पड़ जाता है। अवश्य ही इससे वंशानुक्रमकी रक्षा नहीं हो सकती। जापानके अधिपति-नियन्त्रित कुटुम्बकी विशेषता ही यह है कि वंशानुक्रममें भले ही व्यतिक्रम पड़ जाय

पर कुटुम्बका सामूहिक जीवन जैसा एक बार निश्चित हो जाय वैसा ही बना रहे।

प्रश्न हो सकता है कि जापानी लोग कुटुम्बकी रीति-रस्म एवं वंश-परम्पराको हमेशा चलाये रखनेके लिए क्यों इतना ज़ोर देते हैं? इनका सिलसिला जारी रखनेसे लाभ ही क्या है? इसका उत्तर यह है कि एक बार जिस सामूहिक जीवन अर्थात् कुटुम्बकी प्रतिष्ठा हो जाती है उसे उसके सदस्य सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं, क्योंकि वे उसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते हैं। सामूहिक जीवनको वे इसी कारणसे महत्त्व देते हैं कि उसमें वे स्नेह और प्रेमसे आबद्ध होकर भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्मिलित जीवन व्यतीत कर सकें। एक ही कुटुम्बके होनेकी वजहसे प्रत्येक सदस्यके सुख-दु खमें अन्य सब सदस्य हिस्सा बँटाते हैं।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि इस तरहकी कुटुम्ब-प्रणालीके कारण जापानियोंका भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन स्थायी हो जाता है। जापानी कुटुम्ब एक तरहकी सहकार-समिति होती है, जिसका प्रत्येक सदस्य उसकी उन्नतिमें सहायक होता है। यह देखते हुए हम लोगोंको भी भारतमें कुटुम्ब-प्रथाको नष्ट न होने देना चाहिये। हाँ, उसमें जो दोष आ गये हैं उन्हें दूर करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। यदि जापानको उससे लाभ हो सकता है तो हमें क्यों न होना चाहिये, जब कि हमीं वस्तुतः इस सहकार-प्रथाके जन्मदाता हैं?

दसवाँ अध्याय

व्यावसायिक सफलताके कारण

[रुईकी उत्पत्तिका आदि स्थान भारतवर्ष ही है किन्तु आज वह अपने कपड़ेंके लिए लंकाशायर तथा जापानका मुखापेक्षी हो रहा है। जापानकी औद्योगिक उन्नतिका हाल नीचे पढ़िये ।]

संक्षिप्त इतिहास

सामन्तशाहीकी प्रथासे पीछा छुड़ाकर आधुनिक ढङ्गकी आर्थिक पद्धतिका अवलम्बन लेनेका निश्चय किये जापानको अभी लगभग सत्तर वर्ष ही बीते होंगे। संसारको यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतने थोड़े समयके भीतर जापानका कैसा काया-पलट हो गया है—कहाँ तो यह बिलकुल कृषि-प्रधान देश था जहाँ प्रारम्भिक अवस्थावाले घरू उद्योग-धन्धे और हाथके व्यवसाय प्रचलित थे और कहाँ आज संसारके बड़े बड़े व्यावसायिक देशोंमें उसकी गिनती है। भीतरी झगड़ोंकी एक लम्बी परम्पराके बाद सन् १८६८ (संवत् १९२५) में जापानने नूतन युगमें पदार्पण किया। नयी सरकारने महसूस किया कि देशका आर्थिक विकास उद्योग-व्यवसायकी उन्नतिपर मुनहसर है, इसीसे उसने उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन देनेकी ओर सबसे अधिक ध्यान देनेकी नीति ग्रहण की।

पहला काम तो उसने यह किया कि जापानमें जहाँ तहाँ सरकारी कारखाने स्थापित कर दिये। उनमें कई विदेशी इञ्जी-नियर नियुक्त किये गये। सूत कातने व लपेटने, ऊनसे सूत तैयार करने तथा लोहे, सीमेण्ट, कागज, शीशे आदिके कारखानोंका

विकास इसी तरह किया गया। इनमेंसे अधिकतर कारखानोंके सम्बन्धमें यह स्पष्ट हो गया कि वे दस-बीस वर्षोंके भीतर स्वावलम्बी बन सकते हैं, अतः वे खानगी देखरेखमें रख दिये गये।

ये कारखाने क्रमशः उन्नत होते गये और जापानके बढ़ते हुए उद्योग-व्यवसायके केन्द्र बन गये। सन् १८८५ के बाद गमनागमनके साधनोंकी उन्नति हो जाने, मुद्राप्रणालीके सुधार, नोटोंकी पुनर्व्यवस्थासे पूँजीकी वृद्धि होने और व्याजकी दर घट जानेके कारण इनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगयी। इनके कारण बहुतसे घरू उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें भी सहायता मिली। १८९४ ई० के चीन-जापान युद्धके पहले ही दियासलाई, कागज और मोज़ा-गञ्जीके कारखाने इतने उन्नत हो गये कि उन्होंने विदेशोंसे आनेवाली इन चीज़ोंको बाज़ारसे निकाल बाहर किया। इतना ही नहीं जापानी कारखानोंका कुछ माल बाहर भी खपने लगा। सन् १८८८ में जापानसे जितना माल बाहर भेजा गया, उसमेंसे तैयार वस्तुओंका अंश केवल ११ प्रतिशत था किन्तु १८९३ में वह २४·५ हो गया। इसके विपरीत बाहरसे आनेवाले तैयार मालका अनुपात ४५·५ से घटकर ३३·१ रह गया।

चीन-जापान-युद्धके बाद आधुनिक ढंगके कारखानोंकी उन्नति और भी शीघ्रतासे होने लगी। जिन कारखानोंमें बीससे अधिक आदमी काम करते थे, उनकी संख्या १८९२ में २७६७ थी। सन् १८९५ में यह ७१५४ और १९०२ में ८२७४ हो गयी। सन् १८९३ में जहाँ २४·५ प्रतिशत तैयार माल बाहर भेजा गया था, वहाँ १९०२ में २९ प्रतिशत भेजा गया। रूस-जापान-युद्ध (१९०४-५) के बाद जापानी उद्योग-व्यवसायकी उन्नति आश्चर्यजनक गतिसे होने लगी। काफी पूँजी लगाकर बड़े बड़े

कारखाने खोले गये जिनमें विशाल यन्त्रोंकी स्थापना की गयी। इन कारखानों द्वारा तैयार होनेवाले मालकी तादाद बराबर बढ़ती गयी और पहलेकी अपेक्षा वह ज्यादा अच्छा बनने लगा। सन् १९११ में तटकर-सम्बन्धी व्यवस्थामें जो सुधार हुआ और वहाँके कारखानोंको जो संरक्षण प्राप्त हुआ, उससे उन्नतिका क्रम और भी अधिक शीघ्रतासे बढ़ने लगा। इसके बाद यूरोपीय महायुद्धके समय जापानी उद्योग-व्यवसायोंकी जितनी उन्नति हुई, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी, क्योंकि विदेशी मालका आयात कम हो जाने या बिलकुल बन्द हो जानेकी वजहसे स्वदेशी चीज़ोंकी खपत बढ़ गयी और उनका मूल्य भी अधिक मिलने लगा। इसके सिवा विदेशोंमें भी जापानी वस्तु-ओंकी माँग बढ़ गयी।

नये नये कारखाने बराबर स्थापित होते गये और पुराने कारखानोंमें सुधार होता गया। काम करनेवालोंकी व्यावसा-यिक दक्षता भी बढ़ गयी। विदेशियोंकी प्रतियोगिताके कारण जो कारखाने अभी तक अपने पाँवोंपर खड़े नहीं हो सके थे, उन्होंने इस अवसरसे लाभ उठाया।

सन् १९१४ का संसारव्यापी युद्ध

ईमानदार, चतुर, और सन्तुष्ट मज़दूर, प्रबन्धकी सादगी, उपयुक्त व्यावसायिक तरीक़ोंका प्रयोग—केवल इन्हीं कारणोंसे जापानके उद्योग-धन्धोंकी उन्नति नहीं हुई। इनके अतिरिक्त और भी ऐसी कई बातें हैं जिन्हें जापानकी औद्योगिक उन्नतिका श्रेय दिया जा सकता है। इनमेंसे एक सन् १९१४ का संसार व्यापी युद्ध था, जो जापानके लिए मानो ईश्वर-प्रदत्त सहायता-के रूपमें ही उपस्थित हुआ था।

सन् १९१४ तक जापान अपने नवयुवकोंकी व्यावसायिक शिक्षाके लिए अधिकांशमें प्रायः जर्मनीपर ही अवलम्बित था। उन बहुसंख्यक रासायनिक तथा व्यावसायिक वस्तुओंके लिए भी वह जर्मनीका मुखापेक्षी था, जिन्हें तैयार कर सकनेका कोई खयाल उसे कभी स्वप्नमें भी नहीं हुआ था। शारलोटन-बर्ग या अन्य किसी स्थानमें व्यावसायिक शिक्षा समाप्त करनेके बाद जापानी नवयुवक प्रायः जर्मनीके ही बड़े बड़े कारखानोंमें विशेषज्ञोंकी तरह काम करने लगते थे। युद्ध छिड़नेके साथ ही जर्मन वस्तुओंका जापान भेजा जाना बन्द हो गया और वहाँके जापानी नवयुवकोंको भी बोरिया-बँधना बाँधकर स्वदेश-की राह लेनी पड़ी।

इसके दो परिणाम हुए। एक तो जिन वस्तुओंके लिए जापान अभीतक जर्मनीका मुँह देखा करता था, उन्हें स्वदेशमें ही तैयार करनेके लिए कारखाने खोले जाने लगे। दूसरे, वहाँके व्यावसायिकोंको उद्योग-धन्धोंकी व्यवस्थाके लिए केवल अपने ही बुद्धि-बलसे काम लेनेको बाध्य होना पड़ा। इस तरह गत महायुद्धने व्यापारकी बहुत सी वस्तुएँ स्वदेशमें ही तैयार करनेकी दृष्टिसे जापानको स्वावलम्बी बना दिया। साथ ही उसने जापानके उत्साही और सुशिक्षित नवयुवकोंको उद्योग-व्यवसायकी ओर विशेष रूपसे प्रवृत्त कर दिया।

स्वदेशकी माँग पूरी करनेकी ही समस्या जापानके सामने न थी। उसे उन सब देशोंकी विविध माँगोंकी तरफ भी ध्यान देना पड़ा, जो युद्धमें फँसे रहनेके कारण गोला-बारूद और अस्त्र-शस्त्र प्रस्तुत करनेमें इतने व्यस्त थे कि उन्हें अन्य आवश्यक वस्तुएँ तैयार करनेकी फुरसत ही न थी। युद्धमें थोड़ा बहुत हिस्सा बँटाने पर भी उसे प्रत्यक्ष रूपसे किसी बड़ी

लड़ाईमें भाग नहीं लेना पड़ा। इसीसे उसे गोला-बारूद तथा लड़ाईका अन्य सामान ही नहीं, प्रतिदिनके कामकी और भी बहुत सी वस्तुएँ मित्र राष्ट्रोंके हाथ बेचनेका मौक़ा मिला। बड़ी फ़ुरती और बड़ी चतुरताके साथ उसने उनकी कुल माँगोंकी पूर्ति करनेका प्रयत्न किया, जिससे युद्धके चार वर्षोंके भीतर उसने बहुत पैसा बटोर लिया।

जिस समय युद्धकी घोषणा हुई थी, उस समय जापान क़रीब क़रीब दिवालिया होने जा रहा था, किन्तु नये कारखानों द्वारा तैयार की गयी वस्तुओंकी बिक्रीसे उसे इतनी ज्यादा आमदनी हुई कि युद्धकालमें वहाँकी राष्ट्रीय सम्पत्तिमें २८ अरब येनकी वृद्धि हो गयी। नये कारखानोंमें लगी हुई पूँजीकी मात्रा १ करोड़ येनसे बढ़कर ३५.६ करोड़ येन हो गयी। इस बीचमें पुराने कारखानों द्वारा प्रस्तुत मालकी तादादमें भी वृद्धि हुई। सन् १९१३ में २.४ लाख टन कच्चा लोहा बाहर भेजा गया था, पर १९१८ में ६.९ लाख टन भेजा गया (टन=२७½ मन)। इसके सिवा वस्तुओंकी मूल्य-वृद्धिसे भी उसने लाभ उठाया। रेशमकी एक गाँठके लिए पहले जहाँ ८०० येन मिलते थे, वहाँ अब १४०० येन मिलने लगे। उसी तरह सनकी जो गाँठ पहले १०० येनमें बिकती थी, उसीके बदले अब ४०० येन प्राप्त हो सकते थे।

अवश्य ही उन्नतिका यह ज्वार-भाटा अधिक स्थायी न हो सका। युद्ध-विरामकी ख़बर मिलते ही कच्चे लोहेकी क़ीमत ५५० येन प्रति टनसे गिरकर ३५० येन प्रति टन रह गयी। सन् १९१९ के वसन्त कालमें वह घटकर १२० येन तक जा पहुँची। १९२० के लगते लगते व्यापारिक मन्दी प्रत्यक्ष रूपसे शुरू हो गयी। इस समय उसकी सुवर्ण-राशि तथा विदेशोंमें

लगी हुई पूँजीकी तादाद ४ अरब येन तक जा पहुँची थी, यद्यपि चार वर्ष पहले वह ८१ करोड़ येन ही थी, किन्तु इसके बाद तीन वर्षके भीतर अर्थात् सन् १९२२ के अन्तमें वह घटकर ५७ करोड़ ही रह गयी।

इसके सिवा जापानको शीघ्र ही दैवी विपत्तियोंका भी सामना करना पड़ा। १९२२ में जो भयानक भूकम्प और अग्नि-काण्ड हुआ, उसके कारण सारा याकोहामा नगर बरबाद हो गया और टोकियो नगरका भी दो-तिहाई हिस्सा नष्ट हो गया। इसके परिणाम स्वरूप दस अरब येनकी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी और ऊपरसे मनुष्योंकी जो प्राणहानि हुई वह अलग।

इस भीषण विपत्तिका सामना करनेके लिए जापानको इंग्लैण्ड तथा अमेरिकासे करोड़ों रुपयेका कर्ज़ लेना पड़ा। अब जापानी मन्त्रिमण्डलकी आँखें खुलीं। उसने उद्योग-व्यवसाय सम्बन्धी बढ़ते हुए व्ययको ज़ोरोंसे घटाना शुरू किया और कारखानोंकी वैज्ञानिक व्यवस्थापर ज़ोर देनेकी नीति ग्रहण की। व्यवसायियोंने भी आश्चर्यजनक तत्परताके साथ सरकारसे सहयोग किया। निदान सन् १९३१ में जब नये मन्त्रिमण्डलने सुवर्णके रूपमें अदायगी करना प्रारम्भ कर दिया, तब फिर जापानमें औद्योगिक स्थितिके सुधारके लक्षण देख पड़ने लगे।

वस्त्र-व्यवसायका इतिहास*

जापानमें वस्त्र-व्यवसायका उद्गम पौराणिककालमें हुआ था। ऊनी और रेशमी कपड़े तैयार करनेका उल्लेख इतिहासकी

---

* रुईके सम्बन्धमें डा० जेम्स ए० बी० सेररके कथनका जो अंश नीचे उद्धृत किया जाता है, उससे पाठकोंको विदित हो जायगा कि

पुरानी पोथियोंमें मिलता है। किन्तु प्राचीन ग्रन्थोंमें 'यु' नामसे जिस कपड़ेका वर्णन आया है, वह वस्तुतः रुईका कपड़ा न होकर एक तरहका सन (हेम्प) का कपड़ा था। रुईका कपड़ा वहाँ पहले पहल सोलहवीं शताब्दीमें तैयार हुआ।

विदेशियोंके शासनाधिकारमें आनेके बादसे भारतके इस व्यवसायका पतन किस तरह हुआ—

"रुईका मूल केन्द्र—यदि हम अमेरिकाके मूल निवासियोंको छोड़ दें क्योंकि वे संसारसे बिलकुल पृथक्से थे तो—भारतवर्ष ही है। यूरोप में रुईके कपड़ेके दर्शन पहले पहल उस समय हुए जब सन् ईसवी-के पूर्व चौथी शताब्दीमें सिकन्दरके सैनिक इनमेंसे कुछ [illegible] अपने साथ ले गये थे। उस समय सारा भारतवर्ष आजकी ही तरह सूती कपड़ोंका उपयोग करता था। कुछ कपड़े तो बहुत नाजुक और सुन्दर होते थे।"

"इङ्गलैण्डपर इन नये कपड़ोंका प्रभाव सैकड़ों वर्ष बाद पड़ा। पहले वहाँके लोग केवल ऊनी वस्त्र ही धारण करते थे। जब वहाँ सूती कपड़े आने लगे, तब ऊनका व्यवसाय करनेवालोंके साथ भीषण संघर्ष आरम्भ हुआ। लंकाशायरके [illegible] उन्होंने जोर लगाकर उनका उपयोग न [illegible] बनवा लिये। उदाहरणके लिए सन् १३१६ ई० में ऐसा क़ानून बना, जिसके अनुसार यदि किसी परिवारमें कोई आदमी मर जाता और उसका शव ऊनी कपड़ेमें लपेट कर न दफनाया जाता तो उसके अन्य जीवित सदस्योंपर जुर्माना होता था। किन्तु जब लंकाशायरवालोंने देखा कि हमारे देशवासी विशेषकर स्त्रियाँ रुईके वस्त्रोंका उपयोग करनेपर आमादा हैं, तब उन्होंने अपना दुराग्रह छोड़कर इस स्थितिसे लाभ उठानेका निश्चय किया। अब ऊनके बजाय रुईसे सूत कातने और कपड़ा बुननेके लिए एकके बाद

कपासके बीज जापानमें पहले पहल एशिया महाद्वीपसे सन् ७८९ ई० में लाये गये, किन्तु इसके बाद सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी वहाँ कपड़ेके लिए रूईका प्रयोग नहीं किया गया। कहते हैं पहले पहल सन् १५३२ से १५५४ के बीच वहाँ रूईका कपड़ा तैयार किया गया। उस समय कागोशिमा जातिके एक कारीगरने रूईका कपड़ा बनानेके लिए करघेका आविष्कार किया और बादमें उसमें सुधार होता गया। सोलहवीं सदीके बाद सूत कातने और कपड़ा बुननेका काम घरपर प्रायः स्त्रियाँ ही करती थीं। पहले वहाँ कपासकी काफी खेती होती थी। बादमें माँगकी अपेक्षा इसकी उत्पत्ति कम होने लगी, यहाँतक कि आज जापानी कारखानोंमें जो कपड़ा तैयार होता है उसके लिए प्रायः समस्त रूई बाहरसे आती है। जापानमें ऊनी वस्त्रों-का व्यवसाय आरम्भ हुए तो अभी लगभग ६० वर्ष ही बीते

अन्य यंत्रका आविष्कार होने लगा। यहींसे ब्रिटेनकी औद्योगिक क्रान्ति-का आरम्भ हुआ।

भेड़ पालनेके व्यवसायका परित्याग कर इङ्गलैण्ड जब संसारके लोगोंके लिए सूती कपड़ा तैयार करनेवाला देश बना, तब बहुत दिनोंतक उसे अपने कारखानोंके लिए केवल भारतवर्षसे ही रूई प्राप्त होती थी; किन्तु बादमें अमेरिकाकी रूई भी बाज़ारमें उपलब्ध होने लगी, जिससे भारतवर्षका नम्बर दूसरा हो गया। इसका कारण यह था कि अमेरिका-की रूई ज़्यादा मुलायम और अच्छी होती थी। जापान अपने यहाँके पुतलीघरोंमें जो कपड़े तैयार करता है उनमें वह बड़ी चतुराईके साथ भारतीय रूईके साथ अमेरिकन रूईका प्रयोग करता है। दो तीन वर्ष पहलेतक वह दोनों देशोंसे प्रायः समान परिमाणमें रूई खरीदता था, किन्तु इधर कुछ समयसे अमेरिकाकी रूईको तरजीह दे रहा है।"

होंगे। इसके लिए लगभग ९९ प्रतिशत ऊन बाहरसे ही मँगाया जाता है।

प्रारम्भमें रेशमी और सूती दोनों तरहका सूत तैयार करने और कपड़ा बुननेका काम स्त्रियाँ ही करती थीं। जो कपड़ा तैयार होता था, वह केवल परिवारके सदस्योंकी आवश्यकताको ही पूरा करता था। बादमें धीरे धीरे स्त्रियाँ ज्यादा कपड़ा तैयार करने लगीं जो मुनाफेके साथ बेचा जाने लगा। धीरे धीरे बुननेकी कलामें उन्नति होने और माँग बढ़ने पर जापानके कुछ उद्योगशील निवासियोंने इसे अपना विशेष व्यवसाय बना लिया। स्थानविशेषके जलवायु, रीतिरस्म, आबादी, मजदूरोंकी संख्या, रुईके प्रकार, गमनागमनके साधन तथा आर्थिक सुविधाओंके अनुसार खास खास ज़िलोंमें वस्त्र-व्यवसायके केन्द्र स्थापित हो गये। प्रत्येक केन्द्रकी अपनी अपनी विशेषताएँ थीं और प्रत्येकका विकास भी स्वतन्त्र रूपसे अपने अपने ढंगपर हुआ। गृह-शिल्पकी अवस्थासे बढ़कर इस व्यवसायने शीघ्र ही बड़े बड़े कारखानोंका रूप धारण कर लिया जिनमें आधुनिक यन्त्रोंके प्रयोग द्वारा राशि-राशि माल तैयार किया जाता है। माल भी पहलेकी अपेक्षा अधिक सुन्दर और बढ़िया मेलका तथा विभिन्न प्रकारका बनने लगा है। इस व्यवसायकी उन्नति अब भी तीव्र गतिसे हो रही है।

जापानी माल सस्ता क्यों होता है ?

पहला कारण यह है कि मज़दूरी वहाँ सस्ती है। जापानमें चिरकालसे पुरुषोंकी यह धारणा रही है कि कताई-बुनाईका काम केवल स्त्रियोंका ही काम है, इसीसे पुरुषवर्ग उस थोड़ेसे कामको छोड़कर जिसमें विशेष दक्षताकी ज़रूरत है, कपड़ा

बुननेका काम करना प्रायः स्वीकार नहीं करता। प्रायः सर्वत्र स्त्रियाँ ही इस कामके लिए नियुक्त की जाती हैं। स्त्रियोंको रखनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा कम मज़दूरी देनी पड़ती है। ज्यादातर किसानों तथा खेतोंपर काम करनेवाले मजदूरोंकी लड़कियाँ ही कपड़ेके कारखानोंमें काम करती हैं और वे प्रायः विवाह होनेके पूर्व कुछ समयके लिए ही भरती होती हैं, इसीसे स्वभावतः उन्हें मज़दूरी कम मिलती है। बहुत सी स्त्रियाँ विवाहित होनेके बाद भी अपने घरपर बुननेका काम जारी रखती हैं। वे फ़ुरसतके समय यह काम करती हैं और कुछ कमा लेती हैं। इस तरह वहाँ मज़दूरीकी दर बढ़ने नहीं पाती, जो जापानी कपड़ेके सस्ते होनेका एक मुख्य कारण है।

जापानी माल जो इतना सस्ता बिकता है, इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि वहाँके कारखानोंका प्रबन्ध-व्यय अपेक्षाकृत कम होता है। जापानी वस्त्र-व्यवसायका प्रबन्ध बुद्धिसङ्गत तरीक़ेसे किया जाता है। प्रबन्धकों द्वारा बराबर इस बातकी कोशिश की जाती है कि सञ्चालन-व्ययका औसत कमसे कम रहे।

वहाँ रूईके कपड़े या तो उन छोटे छोटे कारखानोंमें तैयार होते हैं जिनमें सिर्फ बुनाईका काम होता है या उन सहायक कारखानोंमें बनते हैं जो कताईका काम करनेवाली बड़ी बड़ी कम्पनियोंसे सम्बद्ध होते हैं। छोटे कारखानोंमें ज्यादातर वही कपड़ा तैयार होता है जो प्रायः देशमें ही खपता है, किन्तु सम्बद्ध कारखानोंमें बननेवाला कपड़ा बाहर भेजा जाता है। यदि किसी बड़े कारखानेमें सिर्फ सूत ही बहुत बड़ी तादादमें तैयार होता है तो उसमें आवश्यकतासे अधिक माल इकट्ठा हो जानेकी सम्भावना है, जिससे माँगकी अपेक्षा प्रस्तुत मालकी तादाद बढ़ जायगी और उसका बाज़ार भाव गिर जायगा,

इसीसे जापानमें कताईके बड़े बड़े कारखाने बाज़ारमें सीमित राशिके भीतर ही माल प्रस्तुत कर वस्तुओंका दाम अनुकूल बनाये रखनेकी गरज़से साथ साथ कपड़ा बुननेका काम भी करते हैं। बड़ी तादादमें तैयार किये गये सूतकी बिक्रीसे इन कारखानोंको काफी मुनाफ़ा हो जाता है और वे कपड़ेकी बिक्री पर ज्यादा लाभ प्राप्त करनेके लिए चिन्तित नहीं होते। उसपर थोड़ा-सा मुनाफा हो जानेपर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। फिर जापानमें जो लोग बाहरसे रुई मँगाते हैं, वही प्रायः इसके बदलेमें कपड़े बाहर भेजते हैं। इस प्रकार कमीशनके रूपमें भी मुनाफ़ेका कोई अंश खर्च नहीं करना पड़ता। यही वजह है कि जापानमें तैयार होनेवाला कपड़ा विदेशोंके हाथ कम दाममें बेचा जा सकता है।

जापानी कपड़ेके सस्ते होनेके दो कारण और हैं। एक तो यह कि वहाँ कारखानोंमें रात-दिन काम होता है। दूसरा यह कि वहाँके कारखानोंको रुई उस दामसे भी कम दाममें प्राप्त हो जाती है जितनेमें वह स्वयं उन देशोंमें बिकती है जहाँ वह उत्पन्न होती है। इसमें सन्देह नहीं कि रात और दिनके दो भिन्न भिन्न दलों द्वारा काम करानेसे जापानके वस्त्रव्यवसाय-की उन्नतिमें बड़ी सहायता मिली, किन्तु कुछ कारखानोंमें केवल एक ही बार काम करानेकी प्रथा प्रचलित है। उसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि रातमें काम न करानेसे कारखानेको अस्पतालके खर्चमें बचत होती है। काम करनेवालोंका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उनकी कार्य-क्षमता बढ़ जाती है। जापानके विख्यात पाँच बड़े कारखानोंने कामके घण्टे घटानेके सम्बन्धमें आपसमें समझौता-सा कर लिया है। इसका परि-णाम शीघ्र ही प्रकट होगा। जिन कारखानोंमें रात-दिन काम

होता है वे इस प्रथाका अनुसरण अभीतक इसलिए नहीं कर रहे हैं कि ऐसा करनेसे उन्हें अपने साधनोंमें बहुत अधिक वृद्धि करनी पड़ेगी, जिसका परिणाम अच्छा न होगा। जो हो, जापानके प्रायः सभी कपड़ेके कारखाने सामाजिक तथा आर्थिक दोनों ही दृष्टिसे केवल एक बार (दिनमें) काम करानेके पक्षमें हैं और रातका काम बन्द कर देनेके लिए ज़ोरोंसे प्रयत्न कर रहे हैं।

चौथा कारण आपसकी प्रतियोगिता है। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि जापानमें कारखानोंको रुई कभी कभी उस दामसे भी कममें मिल जाती है जिसमें वह रुई उत्पन्न करनेवाले देशोंमें बिकती है। समस्त जापानमें इस तरह सस्ते मूल्यपर बेची गयी रुई लगभग १० लाख येनकी होती है। वहाँ जितनी अधिक रुईकी खपत होती है, उसका विचार करते हुए यह तादाद नगण्य मालूम होती है, किन्तु सिद्धान्त एवं वांछनीयताकी दृष्टिसे इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिन लोगोंका इस व्यवसायसे सम्बन्ध है, वे इस तरहका सौदा रोकनेके लिए बहुत दिनोंसे प्रयत्न कर रहे हैं, इसीसे इसका परिमाण प्रति वर्ष घटता जा रहा है। इतने सस्ते दाममें रुई प्राप्त हो सकनेका कारण रुईके व्यवसायियोंकी गहरी प्रतियोगिता तथा उनपर बड़े बड़े कारखानों द्वारा डाला जानेवाला दबाव है। इसका परिणाम यह हुआ है कि छोटे छोटे व्यवसायियोंको इस क्षेत्रसे हट जाना पड़ा है। केवल बड़े बड़े व्यवसायी ही खड़े रह सके हैं। आशा की जाती है कि यह अनुचित प्रतियोगिता निकट भविष्यमें बन्द हो जायगी।

जापानी वस्त्र-व्यवसायकी प्रारम्भिक अवस्थामें बड़े कारखानों तथा छोटी मिलों द्वारा तैयार होनेवाले कपड़ोंमें स्पष्ट

अन्तर होता था—वे बाहर भेजनेके लिए और ये देशके भीतर-की ही माँग पूरी करनेके लिए माल तैयार करते थे, किन्तु इधर इस व्यवसायकी अभूतपूर्व उन्नति हो जानेसे विशेष-कर युद्धकालमें तथा उसके बाद, छोटे कारखानोंवाले भी स्वदेशकी आवश्यकताओंके अतिरिक्त बाहर भेजनेके लिए भी कपड़े बनाने लगे। फिर भी, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, उनके द्वारा तैयार किया गया कपड़ा उतना बढ़िया मेलका नहीं होता था जितना बड़े कारखानोंका होता था। इसीलिए वे लोग दाम गिराकर किसी तरह उनके साथ प्रतियोगितामें ठहरनेका प्रयत्न करते रहे। इस तरह भिन्न भिन्न कारणोंसे जापानी माल मँहगा नहीं बिकने पाता और बड़ी तादादमें तैयार होकर संसारके बाज़ारोंमें भेजा जाता है।

ग्यारहवाँ अध्याय

कुशल और सन्तुष्ट मजदूर

रूस देशके दर्शन तो मैंने नहीं किये किन्तु यूरोप, अमेरिका तथा पूर्वी एशियामें मैं हो आया और यदि जापानमें मुझे किसी बातने विशेषरूपसे प्रभावित किया है तो वह वहाँके मज़दूरोंकी प्रसन्नता, ईमानदारी, दक्षता और सन्तोष है। गन्दी बस्तियाँ तो लण्डन तथा न्यूयार्कमें भी अधिक हैं। जापानके व्यावसायिक केन्द्र भी उनसे नहीं बचे हैं, किन्तु इङ्गलैण्ड और अमेरिकाकी अपेक्षा वहाँ उनकी संख्या कम है। न्यूयार्क और लण्डनमें

गरीबोंके निवासस्थानोंकी हालत कहीं कहींपर जापानसे भी बदतर है किन्तु इतना अवश्य है कि जापानी मज़दूर सामान्यतः संसारके अन्य स्थानोंकी अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट, प्रसन्न और दयानतदार देख पड़ते हैं। जो हो, वहाँ भी अभी तबतक सुधारकी काफी गुंजाइश है जबतक प्रत्येक मज़दूरके पास इतना पैसा न हो जाय कि वह सुखमय जीवन व्यतीत कर सके।

सन्तोषका कारण

जापानके, विशेषकर कपड़ेके कारखानोंमें काम करनेवाले, मजदूरोंके सन्तुष्ट रहनेका कारण मिल-मालिकोंका सद्व्यवहार है। बड़ी भोजनशालाएँ जिनमें कुर्सियों और टेबुलोंका प्रबन्ध है, बिलकुल आधुनिक ढंगके सिनेमा तथा नाटक-घर, बहुतसे पार्क, (कारखानोंके समीप बने हुए मजदूरोंके घरोंके) साफ-सुथरे और हवादार कमरे, साहित्य तथा ललित कलाओंके स्कूल जिनमें फीस नहीं ली जाती और मज़दूरोंके सुसज्जित अस्पताल तथा ऐसे ही अन्य सुविधाके साधन मैंने खुद अपनी आखोंसे देखे। कोबेके कानेगाफूची मिलमें मैंने मजदूरोंका जो अस्पताल देखा, वह सब तरहसे भारतकी राजधानीके सिविल अस्पतालसे बढ़ कर था। जापानमें जाकर कोई भी व्यक्ति ये सब चीज़ें प्रत्यक्ष देख सकता है। मैं अपने देशके मिल-मालिकोंसे निवेदन करूँगा कि वे स्वार्थी प्रचारकोंकी बातोंमें न आकर स्वयं जापान पधारें और उसकी सफलताके रहस्यका अध्ययन करें।

यदि भारतके मिल-मालिक तथा अन्य व्यवसायी जापान जावें तो यह बात वे स्वयं समझ जायँगे कि (१) ईमानदार और चतुर श्रमिक, (२) उनके साथ सदय व्यवहार तथा (३) सादा

और कम खर्चमें होनेवाला प्रबन्ध—यही जापानकी व्यावसायिक सफलताके प्रधान कारण हैं।

एक महत्वपूर्ण रहस्य

यह सत्य है कि पश्चिमी देशोंकी अपेक्षा जापानके मज़दूर-को कम पारिश्रमिक मिलता है। अतः स्वभावतः पाठकोंके मनमें यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर क्या कारण है कि कम वेतन पाकर भी वहाँका मज़दूर सन्तुष्ट रहता है? इसका रहस्य वहाँकी कुटुम्ब-प्रणालीमें छिपा हुआ है जिससे, जैसा कि अन्य अध्यायमें दिखलाया गया है, उसे सहयोगकी और परिवारके सम्मिलित हितके लिए आत्मत्याग करनेकी शिक्षा मिलती है।

जापानियोंके दैनिक जीवनमें वहाँकी कुटुम्ब-प्रणालीका स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। वहाँ इसकी उत्पत्ति जातिके इतिहासके साथ ही हुई। सन् १८६८ ई० की पुनः-प्रतिष्ठाके बाद जापानने आधुनिक व्यावसायिक पद्धतिको स्वीकार किया और वहाँ बड़ी शीघ्रताके साथ पश्चिमके विचारोंका प्रसार होने लगा किन्तु इस तरह पश्चिमका अनुकरण करनेपर भी जापानी समाजसे वह कुटुम्ब-प्रणाली नष्ट न हुई, जो तीन हज़ार वर्षसे भी अधिक समयतक वहाँके समाजकी आधार-भित्ति बनी रही है। यद्यपि यह नयी आर्थिक पद्धति व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर ही आश्रित है, फिर भी जापानने पुरानी कुटुम्ब-प्रणालीके साथ उपयुक्त ढंगसे उसका समन्वय कर लिया है, जिससे वहाँका जीवन विचित्र ढंगका हो गया है। महायुद्धके बाद जापानके आर्थिक ढाँचेने बड़ी शीघ्रताके साथ पूँजीवादका चरम रूप धारण कर लिया है। इतना होते हुए भी वहाँके मजदूरोंका दैनिक जीवन अब भी कुटुम्बके हिताहितके विचारसे नियन्त्रित होता है। उनकी

आमदनी और खर्चपर समस्त परिवारके प्रश्नोंकी दृष्टिसे ही विचार किया जाता है। उदाहरणके लिए कपड़ेके कारखानेमें काम करनेवाली किसी मज़दूरिनको लीजिये। वह अपनी मजदूरी कुटुम्बकी सम्मिलित आमदनीमें मिला देती है और उसमेंसे उसके अन्य सदस्योंके साथ अपना उचित हिस्सा पाती है। यही बात कुशल पुरुष मज़दूरोंके सम्बन्धमें कही जा सकती है।

इस प्रथाके कारण बहुत-सी स्त्रियाँ तथा बहुतसे लड़के मामूलीसे कम मज़दूरी लेकर भी अपना काम चला सकते हैं। मतलब यह कि अकेले रहनेपर इतनी मज़दूरी पाकर भले ही वे स्वावलम्बी न हो सकें किन्तु कुटुम्बके अन्य व्यक्तियोंके साथ रहनेके कारण उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। इसलिए जापानके श्रमिकोंको जो मज़दूरी मिलती है, केवल उसीके आधारपर उनके जीवन-क्रमके सम्बन्धमें कोई भी धारणा बना लेना ठीक नहीं। वहाँके मज़दूरोंकी रहन-सहनका अध्ययन करते समय उनकी कुटुम्ब-प्रणालीका भी ध्यान रखना चाहिये।

अब मैं "जापानियोंकी सीधी-सादी आवश्यकताओं" के सम्बन्धमें दी गयी जिम्मेदार व्यक्तियों तथा संवादपत्रोंकी सम्मतियाँ पाठकोंके सामने रखनेका प्रयत्न करता हूँ।

कानेगाफ़ूची कम्पनीके अध्यक्ष सूदाका यह कथन अति-शयोक्ति-पूर्ण नहीं कहा जा सकता—"जिन अंग्रेजोंने कताईके काममें लगे हुए जापानी मजदूरोंकी हालत अपनी आँखोंसे देखी है, उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इङ्गलैण्डकी अपेक्षा जापानमें यह काम करनेवाले श्रमिकोंकी दशा ज़्यादा अच्छी है। यदि कोई अन्तर है तो इतना ही कि दोनों देशोंमें इनके रहनेका तरीक़ा जुदा जुदा है। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि वस्तुतः यह अपनी अपनी पसन्दका सवाल है। अंग्रेज मज़दूरको जिस-

तरह पनीर बहुत अच्छी लगती है, उसी तरह जापानी मजदूर-को एक विशेष प्रकारका अचार अधिक स्वादिष्ट मालूम होता है और यह पनीरकी अपेक्षा बहुत सस्ता पड़ता है।"

इसी तरहके विचार एक और जापानीने इन शब्दोंमें प्रकट किये हैं। "यदि जापानके किसी मजदूरको आप लङ्काशायरके पुतलीघरमें काम करनेको नियुक्त कर दें और उसे मुलायम गद्देवाला लोहेका पलँग सोनेको तथा मक्खन रोटी, गो-मांस, काफी और मलाई खानेके लिए दें तो वह सम्भवतः यह कहकर हड़ताल कर देगा कि मुझे ये चीजें नहीं चाहिये, मुझे तो चटाईपर बिछानेके लिए जापानी बिस्तरा और मछली-भात तथा तरकारी खानेके लिए चाहिये। इन चीज़ोंमें उसे सचमुच ज़्यादा स्वाद मिलता है और ये उसके लिए पथ्यकर भी हैं। ब्रिटेन और अमेरिकाके मज़दूरके लिए यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि उसकी रहन-सहनके लिए जापानी मज़दूरोंकी अपेक्षा अधिक क़ीमती चीज़ोंकी ज़रूरत पड़ती है।"

अंग्रेज-संवाददाताका मत

'लण्डन स्पेक्टेटर'का विशेष संवाददाता लिखता है "अपनी मुद्रा येनका विनिमय मूल्य गिरा देनेके कारण जापानको कुछ लाभ अवश्य प्राप्त हुआ है किन्तु इसे स्थायी न समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसके वस्त्र-व्यवसायके सम्बन्धमें फिर भी ऐसी कई बातें रह जाती हैं जिनके कारण उसके साथ प्रतियोगिता करना अभी चिरकाल तक कठिन होगा। इनमेंसे एक जापानियोंकी रहन-सहनका तरीक़ा है। उसे नीचा कहना उचित नहीं। वह तो जापानकी विशेषता है और वह उससे सन्तुष्ट है। उसे नीचा न कहकर सादा और कम खर्च-

वाला तरीका ही कहना चाहिये। सन्तोषकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह कहना कठिन होगा कि जापानी मज़दूर अपने अंग्रेज़ बन्धुकी अपेक्षा निम्नतर तरीक़ेसे जीवन-यापन करता है अथवा उससे कम सुखी जीवन व्यतीत करता है। जापानी मज़दूरको अपनी शक्तिसे अधिक काम नहीं करना पड़ता और न उसपर अत्याचार ही होता है। बिना किसी विशेष प्रेरणाके ही जापान-का मज़दूर औसतन कठिन परिश्रम करता है और अपने काममें दिलचस्पी लेता है। इसके अतिरिक्त उसके काममें इतनी पूर्णता—त्रुटिहीनता—देख पड़ती है कि उतनी कभी कभी लङ्का-शायरके मज़दूरोंमें भी नहीं दिखाई देती। चाहे यह बात अच्छी हो या बुरी, प्रत्येक अंग्रेज़ सामान्यतः व्यवसाय-वाणिज्यको जीवनका प्रधान लक्ष्य नहीं समझता किन्तु जापानी या चीनी अवश्य ऐसा समझता है। परिणाम यह होता है कि जापान या चीनमें कारखानों तथा दफ़्तरमें काम करनेवालोंके मनमें एक तरहका दृढ़ सङ्कल्प देख पड़ता है जिसकी पश्चिमी देशोंमें प्रायः कमी रहती है।

लक्ष्यकी एकता

इस 'दृढ़ सङ्कल्प' की ओर कुछ विचक्षण और निष्पक्ष भावसे देखनेवाले व्यक्तियोंका ध्यान भी गया है—उदाहरणके लिए टोकियोके ब्रिटिश दूतावाससे सम्बन्ध रखनेवाले श्री सैन्सम तथा करमोडका—और उन्होंने इसपर ज़ोर भी दिया है। अपनी सरकारके पास जो रिपोर्ट इन्होंने हालमें भेजी है, उसमें लिखा है कि "किसीपर भी जापानियोंके लक्ष्यकी एकता एवं सम्मिलित प्रयत्नका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। आर्थिक रिपोर्टमें इस तरहकी बातोंकी चर्चा करना असंगत

समझा जा सकता है किन्तु जबतक हम जापानकी उस राष्ट्र-व्यापी भावनाका विचार नहीं करते जो उसके कार्योंका नियंत्रण कर रही है, तबतक हम वर्त्तमान व्यावसायिक राष्ट्रके रूपमें जापानकी स्थिति एवं उसकी भावी उन्नतिकी कल्पना नहीं कर सकते। ग्रेट ब्रिटेनकी और उन राज्योंकी भी औद्योगिक उन्नति, जिनका संङ्गठन जान बूझ कर इसी दृष्टिसे किया गया है, जापानकी तुलनामें एक आकस्मिक घटना-सी ही प्रतीत होती है। जापानकी उन्नति उस नीतिका परिणाम है जिसका उद्देश्य जापानको ऐसी आर्थिक इकाईमें परिणत करना रहा है जो प्राकृतिक कठिनाइयोंको देखते हुए अधिकसे अधिक स्वावलम्बी हो। रुपये-पैसेसे जापानने अपने उद्योग-व्यवसायकी ऐसी कोई ज्यादा सहायता नहीं की। सरकारी सहायताका मुख्य रूप आयात-कर द्वारा प्रदत्त संरक्षण है। इन उपायोंके अतिरिक्त जापानकी सरकार क़ानून बनाकर वाणिज्य-व्यवसायकी गति निर्धारित करनेमें कभी नहीं पिछड़ती। उदाहरणार्थ, बुद्धिसंगत सिद्धान्तोंका प्रयोग करनेकी उद्घोषित नीतिके अनुसार सन् १९३१ में प्रधान व्यवसायोंके नियन्त्रणके लिए एक क़ानून बना था। इसके अनुसार राज्यके वाणिज्य-सचिवको यह अधिकार दिया गया कि वह विशेष स्थितिमें उन अल्पसंख्यक लोगोंको जो किसी मुख्य व्यवसायमें लगे हों वह समझौता माननेके लिए बाध्य कर सकें जो वस्तुओंके उत्पादन या बिक्रीका नियन्त्रण करनेके उद्देश्यसे अन्य सब लोगोंके बीच किया गया हो।

अन्य रहस्य

'रैशनैलिज़ेशन' (अर्थात् उद्योग-व्यवसायमें बुद्धिसङ्गत सिद्धान्तोंका प्रयोग), यह शब्द संसारके अन्य भागोंकी अपेक्षा

जापानके अंग्रेजी बोलनेवालोंमें अधिक प्रचलित है। जापानमें इसका अर्थ उद्योग-व्यवसायकी प्रत्येक शाखा और विक्रय-प्रणालीमें खूब सोच समझ कर निश्चित किये गये तरीक़ोंका प्रयोग है। हालकी जापानी 'ईयर बुक' (वार्षिक विवरणी) में इसका वर्णन नौ पृष्ठोंमें किया गया है। उसमेंसे कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं जिनसे जापानकी औद्योगिक सफलतापर प्रकाश पड़ता है।

"हमारे आदर्शोंकी तरह 'रैशनलीज़ेशन' भी कभी पूरा नहीं हो सकता। साधनों, यन्त्रों तथा औज़ारोंको एक विशेष प्रतिमानके अनुरूप बनाना और पण्य-वस्तुओंकी जटिलताओंको दूर करना, इस पद्धतिके कलात्मक पहलूके मुख्य आधार हैं। इस पद्धतिके प्रयोगसे माल तैयार करनेवाले एक ही तरहकी बहुत-सी वस्तुएँ बना कर उत्पादन-व्ययमें कमी कर सकते हैं, विक्रेतागण अनावश्यक रूपसे बहुत-सी वस्तुएँ अपने भण्डारोंमें रखनेसे बच जाते हैं और उन्हें खर्चमें किफायत पड़ती है तथा क्रय-विक्रयमें सहूलियत होती है। वस्तुओंका प्रयोग करनेवालोंको भी इस पद्धतिसे लाभ होता है, क्योंकि वे सस्तेमें माल खरीद सकते और अधिक उपयुक्त चुनाव कर सकते हैं। यही वजह है कि बहुतसे देशोंमें विशेष प्रतिमानके अनुरूप माल बनाना और जटिलताओंको दूर करना, इन दोनों कामोंके लिए एक विशेष संस्था स्थापित रहती है। इस देशमें सन् १९२१ ई० में इस तरहका एक बोर्ड स्थापित किया गया था। तबसे प्रत्येक व्यवसायके लिए सबसे बढ़िया प्रतिमान निश्चित करनेकी कोशिश होती रहती है और इनका ब्यौरा प्रकाशित कर व्यवसायियोंको इस बातके लिए प्रोत्साहन दिया जाता है कि वे इन्हें ग्रहण कर लें। रैशनैलीज़ेशन-ब्योरो नामक

संस्थाकी स्थापनाके बाद इस मण्डलका काम इसके अधीन कर दिया गया।

अच्छा सङ्गठन

बुद्धि-सङ्गत सिद्धान्तोंका प्रयोग जापानमें इतनी सफलता-पूर्वक हुआ है कि मैनचेस्टरमें स्थापित रुई कातनेवालों और कपड़ा तैयार करनेवालोंकी संस्थाओंके अन्तर्राष्ट्रीय संघके जेन-रल सेक्रेटरी डाक्टर आरनो एस० पीयर्स अमेरिकाके श्री मोज़रकी रायसे सहमत होकर कहते हैं कि दुनियाँ भरमें कहींके सूती कपड़ोंके पुतलीघर इतने सुसंघटित और सुव्य-वस्थित नहीं हैं जितने जापानके।

जापानसे जिन जिन देशोंको कपड़ा भेजा जाता है, वहाँ वालोंकी रुचि और उनकी आवश्यकताओंके अनुरूप कई मेलका कपड़ा यहाँ तैयार किया जाता है। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए लम्बे और छोटे रेशोंवाली कई तरहकी रुई जापानी लोग जिस खूबीसे परस्पर मिलाया करते हैं, उससे डाक्टर पीयर्स बहुत प्रभावित हुए हैं। वे कहते हैं कि यह ऐसी कला है जिसके सम्बन्धमें जापानी मिल मैनेजरोंका अभि-मान प्रकट करना सर्वथा उचित है। श्री के० के० कावा-कामी 'फारेन अफेयर्स' में लिखते हैं कि जापानके सब मिलवाले इस बारेमें बड़े चौकन्ने रहते हैं कि यह रहस्य किसी तरह प्रकट न होने पावे। जापानकी मिलें खरीदारोंके पसन्दका माल तैयार करती हैं, न कि अपनी पसन्दका। यही वजह है कि जापानियोंको अपने सूती वस्त्रोंके लिए नये बाज़ार प्राप्त हो गये हैं।

बढ़िया प्रबन्ध

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह एक कारण अवश्य है, पर उसे मुख्य कारण नहीं कह सकते। मुख्य कारण तो वहाँके पुतलीघरोंका बढ़िया प्रबन्ध और अन्तिम मिनटके पहलेतक जाने गये साधनोंका प्रयोग है। इसपर पहले ही ज़ोर दिया जा चुका है। इङ्गलैण्डके साथ तुलना करते हुए प्रेसिडेण्ट सूदाने इसे बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। इङ्गलैण्डके पुतलीघरोंमें कुल पाँच करोड़ तकुये हैं और जापानमें सिर्फ अस्सी लाख अर्थात् केवल १५ प्रतिशत। फिर भी १९३३ में जापानने कपड़ेके निर्यातमें इङ्गलैण्डको पछाड़ दिया।

जापानपर 'डम्पिंग' का जो दोषारोपण किया जाता है अर्थात् यह कि वह विदेशोंमें अपना कपड़ा उससे भी सस्ते दामपर बेचता है जितनेमें वह स्वयं जापानमें मिलता है, उसकी चर्चा करते हुए श्री बेलेट लिखते हैं "लोग घाटा उठाकर बहुत दिनों तक कोई काम नहीं कर सकते और न घाटेपर माल ही बेच सकते हैं। कमसे कम जान बूझकर वे ऐसा नहीं करते। जापानी लोग 'डम्पिंग' करते हैं, यह कहना निरर्थक है। जापान-के भीतर जिस दामपर कपड़ा बिकता है उससे कम दाममें वह विदेशोंको नहीं भेजा जाता और न वहाँके कारखानेवालोंको कोई आर्थिक सहायता ही दी जाती है। जापानी व्यापारिक सफलताके कारण बिलकुल सीधे-सादे हैं, जैसे (१) एक छोटेसे द्वीपपुञ्जकी तङ्ग जगहमें रहनेवाली जापानी जातिके जीवन-निर्वाह एवं आशामय भविष्यकी नितान्त आवश्यकता, (२) एक महान् राष्ट्रीय ध्येय, जिसमें अपूर्व अनुशासन एवं सङ्कल्पसे सहायता मिलती है, (३) उच्चतम वैज्ञानिक तरीक़ोंको अपनाने

और उन्हें अपनी परिस्थितिके अनुकूल बनानेकी आश्चर्य-जनक बुद्धि।"

इसके बाद श्रीबेलेट फिर कहते हैं—"इन सब कारणोंपर विचार करनेसे भी जापानकी अद्वितीय सफलताका रहस्य भलीभाँति हमारी समझमें नहीं आ सकता। इसके लिए हमें इसका भी खयाल रखना आवश्यक है कि मनुष्यकृत 'डम्पिंग' के अतिरिक्त एक तरहकी सामाजिक 'डम्पिंग' भी होती है, जिससे कुछ देशोंको लाभ तथा अन्य देशोंको हानि पहुँचती है। भिन्न-भिन्न लोगोंकी रहन-सहनके प्रकारमें जो अन्तर है, उसीसे इसकी उत्पत्ति होती है। मामूली तौरसे जिन देशोंकी रहन-सहन कुछ नीची होती है, वे विज्ञान, वस्तुओंके उत्पादन और व्यापारमें उन देशोंसे पिछड़े रहते हैं जिनकी रहन-सहन ऊँची होती है। मान लीजिये कि कोई राष्ट्र अपने जीवनक्रमको नीचा बनाये रखते हुए भी प्रयत्न करके शक्ति और सभ्यताकी दृष्टिसे दुनियाँके प्रथम श्रेणीके राष्ट्रोंके समकक्ष स्थान प्राप्त कर लेता है तो अब वह वाणिज्य-व्यवसाय सम्बन्धी प्रतियोगितामें अन्य राष्ट्रोंकी अपेक्षा उतना ही बढ़ जायगा जितना उसके और उन राष्ट्रोंके विभिन्न जीवनक्रमका अन्तर होगा। जापानके साथ यही बात हुई। संसारके इतिहासमें ऐसा उदाहरण और कोई नहीं मिलता। जापानकी उन्नतिके मुख्य कारणका पता लगानेके लिए हमें इस सामाजिक 'डम्पिङ्ग' पर ही विचार करना चाहिये।"

जेनिवाकी अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक परिषद्की ओरसे एक फ्रान्सीसी कार्यकर्त्ता श्री फरनैण्ड मारेट १९३४ के वसन्तमें जापानी मजदूरों और वहाँकी औद्योगिक स्थितिकी जाँचके लिए जापान गये थे। उन्होंने अपनी रिपोर्टमें लिखा है कि "मैं वहाँकी बातोंसे बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैं कई कारखानोंमें

गया, वहाँकी स्थितिका निरीक्षण किया और विभिन्न समस्याओं-के सम्बन्धमें सरकारी कर्मचारियों तथा मजदूर नेताओंसे बात-चीत भी की। कारखानों तथा मज़दूरोंमें मुझे बहुत अच्छी भावना देख पड़ी। जापानी मजदूरोंके सङ्गठन और कारखानोंमें बुद्धिसङ्गत तरीक़ोंके प्रयोगने तो मुझे प्रभावित किया ही किन्तु इनसे भी ज्यादा प्रभाव मुझपर वहाँके मजदूरोंका पड़ा। क्रिया-शील, उत्साही, प्रसन्न और योग्य होनेके सिवाय वे मुझे बहुत समझदार भी प्रतीत हुए। मैं उन्हें जापानी राष्ट्रकी एक बड़ी विभूति समझता हूँ। जो हो, जापानकी व्यापारिक उन्नतिके कारण जापानियोंकी रहन-सहनका प्रश्न उत्पन्न हो गया है। पश्चिमके लोगोंको इस बातका ज्ञान नहीं है कि जापानी किस तरह रहते हैं। खाने-पीने आदिका खर्च यहाँ सस्ता है किन्तु मैं यह नहीं समझता कि उनकी रहन-सहन नीची है। यही एक ऐसी बात है जिसकी जानकारी विदेशोंमें फैलानेकी चेष्टा जापानको करनी चाहिये। उसे स्पष्ट रूपसे यह दिखा देना चाहिये कि जापानी श्रमिककी योग्यता और उसकी रहन-सहन काफी ऊँची है।"

ब्रिटिश व्यवसायीका कथन

'इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज़' के अध्यक्ष और मैनेजिंग डाइरेक्टर सर हैरी मेकगोवनके कथनसे मेरी बातोंकी पुष्टि होती है। 'क्राऊन कालोनिस्ट' नामक पत्रमें वे लिखते हैं—"व्या-पारके क्षेत्रमें कोई बात शायद इतनी शीघ्रतासे कभी नहीं बढ़ी जितनी शीघ्रतासे जापानी प्रतियोगिता बढ़ी है। चार वर्ष पहले पूर्वी क्षितिजपर एक छोटेसे बादलके टुकड़ेके रूपमें, जो हाथभरसे अधिक बड़ा न था, उसके दर्शन हुए, किन्तु अब संसा-

रके क़रीब क़रीब सब बाज़ारोंमें वह फैल गयी है। इस आश्चर्य-जनक घटनाके कारणोंपर विचार करना बड़ा मनोरञ्जक है। आखिर वह कौन-सी बात है जिसके कारण जापानने अपने व्यापारकी उन्नति इतनी शीघ्रतासे कर ली और बहुत पहलेसे जमे हुए अपने प्रतिस्पर्द्धियोंको परास्त कर दिया। अवश्य ही इसकी प्रेरणा जापानको इस बातसे भी मिली कि उसे अपनी व्यापार-तुलाका साम्य बनाये रखनेके लिए विदेशोंमें माल बेचना आवश्यक है। दूसरा कारण येनकी विनिमय दरका गिराया जाना है। यद्यपि शुरूमें आवश्यकतासे प्रेरित होकर भी येनकी दर गिरायी गयी थी किन्तु बादमें जापानको यह समझनेमें देर न लगी कि मुद्राका मूल्य घटा देनेसे व्यापारमें लाभकी सम्भावना है। हम जानते हैं कि ब्रिटेन द्वारा स्वर्ण-मानका परित्याग किये जानेके बाद कागज़ी पौण्डका मूल्य गिर गया और हमने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका एक बड़ा अंश फिर प्राप्त कर लिया, जो इसके पहलेके वर्षमें हमारे हाथसे निकल गया था जब कि पौण्डका मूल्य बढ़ा हुआ था। मोटे तौरसे पौण्डका मूल्य उस समय ३५ प्रति शत गिराया गया था किन्तु जापानने मुद्राका मूल्य गिरानेकी प्रतियोगितामें भी हमें मात कर दिया। येनका मूल्य ६३ प्रतिशत गिर गया है और वह भविष्यमें इससे भी ज्यादा नीचे न गिराया जायगा इसका कोई भरोसा नहीं।

"दूसरी महत्त्वपूर्ण बात उन जापानी उद्योग-व्यवसायोंका, जिन्हें प्रधान रूपसे प्रतिस्पर्द्धाका सामना करना पड़ता है, सुयोग्य संघटन तथा निर्यात-व्यापारकी खूब सोच-समझकर निर्धारित की गयी योजना है। वाणिज्य-व्यवसायकी दृष्टिसे जापान एक नया देश है जो हालमें ही पूर्णतः सुसज्जित होकर

व्यवसाय-क्षेत्रमें आ धमका है। यही वजह है कि वह बिलकुल आधुनिक ढङ्गके कारखानोंकी स्थापना कर सका है, जिनमें नयेसे नये यंत्रोंसे काम लिया जाता है और विभिन्न देशोंकी औद्योगिक पद्धतियोंमेंसे ऐसी पद्धति अपने लिए चुन सका है जो उसकी आवश्यकताओंके अनुरूप है। बढ़िया और बिलकुल नये ढङ्गके यंत्र खरीदनेमें उसने बड़ी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की है। इसके अतिरिक्त, निर्यात व्यापारके सञ्चालनमें व्यवसायियोंके साथ सरकारके सहयोगकी योजनाका विकास भी उसने किया है जिसके जरिये विदेशी बाज़ारोंमें मुद्राके मूल्य-पतन तथा उत्तम उत्पादनका लाभ उठानेका प्रयत्न किया जा सके।

"लोग अक्सर बिना समझे विचारे कह दिया करते हैं कि जापानी श्रमिकोंको दिनमें ज्यादे घण्टे काम करना पड़ता है और उन्हें वेतन भी कम मिलता है। यह बात है तो सही, किन्तु गत वर्ष जब मैं जाड़ेके दिनोंमें जापान गया था, तब मुझे वहाँके श्रमिकोंमें पुष्टिकर भोजनकी अपर्याप्तताके बाह्य चिह्न, शारीरिक शक्तिकी कमी, अथवा असन्तोष नहीं देख पड़ा। यदि उन्हें सचमुच शक्तिसे अधिक काम करना पड़ता होता अथवा अपर्याप्त भोजनसे ही जिन्दगी बसर करनी पड़ती होती तो ऐसा कदापि न होता। जैसा कि जापानके राजदूतने उस दिन कहा था—यद्यपि जापानी मजदूरको भूना हुआ गोमांस और आलू खानेको नहीं मिलता, किन्तु यदि उसके पास खरीदनेको काफी पैसा हो तो भी वह इन चीज़ोंको लेना पसन्द न करेगा। वह तो चावल, तरकारी और मछली खाकर ही स्वस्थ एवं सुखी रहता है, भले ही हमारी (अंग्रेजोंकी) दृष्टिमें यह भोजन अपर्याप्त हो।

"जापानकी सफलतामें एक बात और सहायक है। वह है उसका यह ज्ञान कि वर्त्तमान युगमें ऐसे मालकी ज़रूरत है जो

सस्तेसे सस्ता हो, चाहे वह घटिया मेलका ही क्यों न हो। संसार-व्यापी मन्दीके समय खरीदारपर क़ीमतका खास तौरसे ज्यादा असर पड़ता है। जापानी कारखानोंके मालिक तथा व्यापारी यह भी समझ गये हैं कि प्रत्येक देशकी पृथक् पृथक् आवश्यकताओंका अध्ययन करना ज़रूरी है। उन्होंने इस बात-का बराबर ध्यान रखा है कि प्रत्येक ग्राहक जो वस्तु, जिस जगह तथा जिस समय चाहे, वह उसी जगह उस वक्तपर पहुँचा दी जाय और उसका आकारप्रकारादि भी उसीकी खास पसन्दके अनुरूप हो। इस बातके लिए जापानियोंकी प्रशंसा करनी चाहिये। यदि कोई माँग तुरन्त पूरी करनेके लिए ग्राहक ज़ोर देता है, तो वे ध्यान पूर्वक उसपर विचार करते हैं और उसकी ही भाषामें उत्तर देते हैं—जापानीमें नहीं। उसी तरह भाव या दर लिखते समय वे जापानी तौल या मुद्राका प्रयोग न कर ग्राहकके ही देशकी तौल तथा मुद्राका प्रयोग करते हैं।"

ब्रिटिश औद्योगिक दलका वक्तव्य

जापान भेजे गये एक ब्रिटिश औद्योगिक दलने वहाँकी स्थितिके सम्बन्धमें जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसका एक अंश 'लण्डन टाइम्स' से यहाँ दिया जाता है—

"मुद्रित धन या सिक्कोंके रूपमें जापानी श्रमिकको जो मजदूरी मिलती है वह अवश्य ही ब्रिटिश कारखानोंमें मिलने वाली मज़दूरीसे कम है, किन्तु प्रश्न यह विचारणीय नहीं है कि सिक्कोंके रूपमें मिलनेवाली मज़दूरी कम है या ज्यादा, बल्कि यह है कि जो मज़दूरी मिलती है उससे वह अपनी आवश्यक-ताएँ पूरी कर सकता है या नहीं और जिस तरह चाहता है उस तरह जीवन व्यतीत कर सकता है या नहीं।

"भविष्यके सम्बन्धमें यह पूछा जा सकता है कि जापानियोंकी जैसी रहन-सहन इस समय है, उससे वे आगे चल कर भी सन्तुष्ट रह सकेंगे या कुछ समयके भीतर ही उनकी मज़दूरीमें विशेष वृद्धिकी सम्भावना है ? हमारा अपना ख़याल यह है कि ज्यों ज्यों जापानके उद्योग-व्यवसायकी वृद्धि होगी, त्यों त्यों नूतन अभिलाषाओंकी उत्पत्ति होगी जिससे मजदूरी सम्भवतः अधिक बढ़े बिना न रहेगी। जो हो, यह कार्य धीरे धीरे ही होगा, अतः यदि सामान्य स्थिति बनी रही तो इसके कारण अभी कई वर्षों तक अन्य देशोंके साथ प्रतियोगिता करनेकी जापानकी क्षमतापर कोई विशेष प्रभाव पड़नेकी संभावना नहीं मालूम होती, बल्कि बहुत सी बातें तो ऐसी हैं जो जापानमें मज़दूरीकी दर कम बनाये रखनेके ही पक्षमें हैं।"

भले ही जापानी कारखानोंके मजदूरोंकी स्थितिका मिलान ब्रिटिश मजदूरोंकी खर्चीली रहनसहनके साथ न किया जा सके, फिर भी उक्त रिपोर्टके अनुसार उसे हम जापानी श्रमिककी दृष्टिसे पूर्णतः असन्तोषजनक नहीं कह सकते। "मजदूरी तथा श्रमिकोंकी स्थितिके सम्बन्धमें ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह जापानके औद्योगिक कारखानोंपर लागू होता है। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि कारखानोंके अतिरिक्त बहुतसे उद्योग-धन्धे लोगों द्वारा घरमें ही किये जाते हैं। हमें लोगोंने बतलाया कि इन घरू उद्योगधन्धोंमें लगे हुए कार्यकर्ताओंकी स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। कारखानोंके नियम इनपर लागू नहीं होते। इनकी वजहसे मज़दूरीकी दर तथा रहनसहनका ढङ्ग, दोनों ही ऊँचे नहीं होने पाते।"

ब्रिटिश उद्योग-व्यवसायकी तुलनामें जापानी उद्योग-धन्धोंको यह लाभजनक स्थिति प्राप्त है कि प्रत्येक मनुष्यके पीछे

राष्ट्रीय ऋणकी तादाद जापानमें ब्रिटेनकी अपेक्षा बहुत कम है। दूसरी बात, जो जापानकी औद्योगिक उन्नतिमें सहायक हुई है, बुद्धिसङ्गत तरीक़ोंका प्रयोग तथा माल खरीदने, तैयार करने और बेचनेमें परस्पर सहयोगका शीघ्रतासे प्रचार होना है।

मिशनकी रिपोर्टसे विदित होता है कि जापानमें वस्तुएँ अधिक संख्यामें ही तैयार नहीं होने लगी हैं, बल्कि पहलेकी अपेक्षा अब वे बढ़िया मेलकी भी बनने लगी हैं। "इस समय इस बातकी तरफ बहुत ध्यान दिया जा रहा है कि चीज़ें सस्ती पड़ें और बढ़िया भी हों।"

"एक बड़े महत्त्वकी बात जापानियोंका राष्ट्रीय भाव है। बिलकुल बाल्यावस्थासे ही प्रत्येक जापानीके दिमागमें ईमानदारी, अनुशासन और उद्योगशीलताका भाव भर दिया जाता है। जापानी उद्योग-व्यवसायके पथप्रदर्शन एवं प्रोत्साहनमें वहाँकी सरकारका बड़ा हाथ है। कुछ प्रमुख व्यवसायोंको उसने कर देनेसे मुक्त कर दिया है और कुछ नये उद्योग-धन्धोंपर लगनेवाला टैक्स थोड़े समयके लिए माफ कर दिया है। किसी किसी व्यवसायको उसकी ओरसे थोड़ीसी सहायता भी दी गयी है। सरकार द्वारा इस बातका भी प्रबन्ध किया गया है कि उद्योग-व्यवसायके लिए कम ब्याजपर रुपया उधार दिया जा सके।

"ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका यह आशय नहीं कि वहाँके उद्योग-व्यवसाय आर्थिक सहायताके बलपर ही पनप सके हैं। कृषि आदि व्यवसायोंको विशेष आर्थिक सहायता दी गयी है। कुछ प्रमुख व्यवसायों तथा जहाज़ोंके व्यवसायको भी धन द्वारा सहायता की गयी है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि आर्थिक सहायताका परिमाण या

उसका विस्तार इतना ज़्यादा था कि उसे हम जापानकी व्यावसायिक सफलताका एक कारण मान सकें।"

अनुकरणीय आदर्श

कोबेके कानेगाफ़ूची मिलके निरीक्षणके बाद फिलिपाइन द्वीपके गवर्नर जनरलने लिखा था—

"इस मिलको जाना मुझे मामूलीसे ज़्यादा मनोरञ्जक मालूम हुआ। आधुनिक यन्त्रों और बिलकुल हालके तरीक़ोंका प्रयोग देखकर मैं उतना चकित नहीं हुआ, जितना वहाँके स्त्री-पुरुषोंको अच्छी रोशनी, खुली हवा और साफ़ जगहोंमें शोर-गुल तथा उत्तेजनासे अलग रहते देखकर हुआ। एक दिलचस्प बात यह है कि वहाँ काम करनेवाले १३०० पुरुषों तथा ७०० लड़कियोंमेंसे कोई १००० पुरुष तथा सब स्त्रियाँ मिलके पास ही शयनशालाओंमें रहती हैं, जहाँ उनके दिल बहलावका प्रबन्ध है और जहाँ उनके हितकी पूरी फ़िक्र की जाती है।"

मैं अपने देशवासियोंसे प्रार्थना करता हूँ कि किञ्चित् विचार कीजिए और देखिए कि आपका लाभ आँख बन्द कर जापानके औद्योगिक तरीक़ोंकी निन्दा करनेमें है अथवा उनका अनुगमन करनेमें। उन्हें हम पेट भर कोस चुके, आइये अब उनके अनुसरणका प्रयत्न करें।



ज्वालामुखी पर्वतका दृश्य

बारहवाँ अध्याय

जापानपर प्रकृतिकी कृपा

मैं जापानको जितना ही अधिक देखता हूँ, उतना ही दृढ़ मेरा यह विश्वास होता जाता है कि वह अभी उन्नतिके और भी अधिक ऊँचे शिखरपर चढ़ेगा, क्योंकि उसपर ईश्वर तथा प्रकृति दोनोंकी ही कृपा है। सोचिये तो ज़रा कि ईश्वरने कितनी निष्ठुरताके साथ भारतको लगभग छः महीनेतक चलनेवाली लम्बी ग्रीष्मऋतु दी है। यदि उसकी तुलना आप जापानके जलवायुसे करें तो आपको विदित होगा कि परमात्माने उसके साथ कहाँतक पक्षपात किया है।

प्रायः साराका सारा जापान एक सुन्दर उद्यान है। किसी भी बड़ेसे बड़े शहरसे एक घण्टेमें ही आप मोटर द्वारा प्रकृतिके सुरम्य तथा शान्त स्थानोंमें पहुँच सकते हैं। हमें अपने देशके काश्मीरका बड़ा अभिमान है, जो उचित भी है, किन्तु समस्त जापान भी एक बड़े पैमानेपर काश्मीर ही है जहाँ केवल पाँच-दस रुपये खर्च कर कोई व्यक्ति सप्ताहके अन्तकी छुट्टियाँ किसी मनोरम दृश्योंवाले स्थानमें जाकर बिता सकता है।

जापानपर प्रकृतिने भूरि भूरि कृपा की है। पहाड़ोंका वहाँ प्राधान्य है। विस्तृत समथल भूमि अपेक्षाकृत बहुत कम है। मातदिल आबहवा तथा विपुल वर्षाके कारण सारे देशमें जङ्गल पाये जाते हैं। प्रायः प्रत्येक दिशामें नदियाँ प्रवाहित होती हैं जिनसे आबपाशी तथा गमनागमनके काममें सहायता मिलती है। जहाँ तहाँ स्थित ज्वालामुखी पर्वतोंके शिखर प्राकृतिक दृश्यों-में विविधता उत्पन्न कर स्वाभाविक सुषमाकी वृद्धि करते हैं।

नैसर्गिक सौन्दर्य

जापानमें अच्छे अच्छे पहाड़ों, मनोरम कछारों, नदियों, प्रपातों और समुद्र-तटके अत्यन्त सुन्दर कटावोंकी भरमार है। प्रकृतिकी इन विशेषताओंका प्रभाव अनिवार्य रूपसे जापानियोंके आचार-व्यवहार तथा रीति-रिवाजोंपर पड़ा है। उनकी परम्पराएँ, इतिहास, दार्शनिक विचार और कलाओं आदिका जन्म प्रकृतिके हितकर आधिपत्यमें ही हुआ है तथा उसीकी देखरेखमें उनकी अभिवृद्धि हुई है। जापानकी अद्वितीय भौगोलिक स्थितिने वहाँके जलवायुको बहुत ही मातदिल और समशीतोष्ण बना दिया है। वर्षमें चार ऋतुएँ नियमित क्रमसे हुआ करती हैं। मनुष्योंको परिश्रमी अथवा आलसी बनानेमें जलवायुका बड़ा हाथ रहता है। भारतमें यहाँकी घोर गर्मीसे हमारी आधी शक्ति नष्ट हो जाती है। इसके विपरीत, जापानकी आबहवा इतनी अच्छी है कि वहाँके लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ अधिक परिश्रम कर सकते हैं। सारे जापानमें वनस्पतियाँ बहुतायतसे होती हैं और तरह तरहके फूल बारी बारीसे सालभर फूलते रहते हैं। पशुपक्षियोंके भी वहाँ कई प्रकार देखनेमें आते हैं। २४० तरहके स्तनपायी प्राणी, ७२० तरहके पक्षी, १२३० तरहकी मछलियाँ और ४० हज़ार तरहके कीड़े-मकोड़े पाये जाते हैं। जापानी लोग बहुत चतुर हैं। वे कागज़ या कपड़े इत्यादिके टुकड़ोंसे भी रुपया कमा लेते हैं।

मछली ही वहाँका मुख्य भोजन है। लाखों रुपयेकी मछलियाँ वहाँसे हर साल संसारके अन्य अन्य भागोंको भेजी जाती हैं। मछली पकड़नेके पेशेमें लगभग १५ लाख व्यक्ति लगे हुए हैं। समुद्रमें उत्पन्न होनेवाली कई वनस्पतियाँ जो

पश्चिममें अखाद्य या स्वादहीन समझी जाती हैं, यहाँ बड़ी स्वादिष्ट और सब तरहसे ग्रहण करने योग्य बना ली जाती हैं। पोषक जीवन-तत्वोंके कारण उनकी बड़ी क़द्र की जाती है। समुद्रकी कुछ घासें ऐसी हैं जिन्हें भारतीय ढँगपर घीके साथ छौंककर बनानेसे बड़ी अच्छी तरकारी होती है। समुद्रसे उत्पन्न होनेवाली ६० प्रतिशत वस्तुओंका उपयोग तो भोजनके लिए हो जाता है, बाक़ीकी ४० प्रतिशत वस्तुएँ तेल निकालने या खादके काममें आती हैं। यहाँ मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि भारतमें जापानियोंके सम्बन्धमें जो यह बात कही जाती है कि मांस खानेके कारण ही वे लोग इतने बलवान् बन सके वह बिलकुल ग़लत है, क्योंकि जापानमें मांसकी खपत बहुत ही कम है। फ़ी मनुष्यके पीछे साल भरमें १। सेरका औसत पड़ता है। वे लोग चावल, मछली और सब्ज़ीपर ही निर्वाह करते हैं। प्रत्येक जापानी सालभरमें औसतन सौ सेर मछली खा लेता है, जब कि ब्रिटेनमें उसका औसत ३२॥ ही है। जापानियोंके दिमाग़का कुछ बड़ा होना मछली अधिक खानेके कारण समझा जाता है और मैं समझता हूँ कि बंगालियोंके बारेमें भी यही बात लागू होती है। जो हो, वैज्ञानिक न होनेके कारण इस सामान्य विश्वासकी सत्यता किंवा असत्यताके सम्बन्धमें मैं निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकता।

खनिज द्रव्य

खानोंसे उत्पन्न होनेवाली धातुओं तथा अन्य द्रव्योंका मूल्य सालभरमें लगभग ३॥ करोड़ पौंड (लगभग ५० करोड़ रुपया) पड़ता है। इनमें कोयला सबसे मुख्य है। यद्यपि अच्छे मेलका बहुतसा कोयला विदेशोंसे भी मँगाना पड़ता है,

फिर भी लगभग ३० लाख टन कोयला प्रति वर्ष बाहर भेजा जाता है (१ टन=२७$\frac{1}{4}$ मन)। कोयलेके बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान ताँबेको प्राप्त है। सोना और चाँदीकी उत्पत्ति भी परिमित मात्रामें होती है। कोयला वहाँ बहुत कम उत्पन्न होता है। मंचूकुओमें अवश्य ही इन द्रव्योंकी बहुतायत है। सोना, लोहा और कोयला ये तीनों ही वहाँ प्रचुर मात्रामें विद्यमान हैं। कुछ ही वर्षोंके भीतर इन खनिज-द्रव्योंके कारण जापानका महत्त्व बहुत बढ़ जायगा। सीसा, सुरमा और मैंगनीज़का स्थान इनके बाद है। गंधकके झरने भी सारे देशमें जहाँ तहाँ फैले हुए हैं। पैट्रोल इतनी काफ़ी मात्रामें नहीं पैदा होता कि उससे बढ़ती हुई माँगकी पूर्त्ति हो सके। तेलके कुंए होकैदो तथा जापानके पश्चिमी किनारेपर पाये जाते हैं।

वन्य सम्पत्ति

जापानमें वन्य सम्पत्ति अच्छी मात्रामें उत्पन्न होती है। वनोंका विस्तार काफ़ी बड़ा है, यहाँतक कि उनका क्षेत्रफल समूचे जापानका आधा है। जापानका जलवायु आर्द्र होनेके कारण पेड़-पौधे वहाँ कई तरहके और प्रचुर संख्यामें होते हैं। इनके प्रकारोंकी संख्या ६०० से ऊपर है। इमारती लकड़ीके काम आनेवाले वृक्षोंकी ही संख्या १०० के क़रीब है। इनमेंसे लगभग ३० वृक्ष अपनी लकड़ीके लिए बहुमूल्य समझे जाते हैं। औद्योगिक उन्नतिकी दृष्टिसे जापानमें लकड़ीको विशेष महत्त्व प्राप्त है। बाँस भी वहाँ बहुतसे कामोंमें आता है। उद्यानोंमें पाये जानेवाले प्रकारोंके सिवा कोई पचास तरहका बाँस और होता है। जापानसे प्रतिवर्ष १४ लाख पौण्डके रेलोंके स्लीपर तथा दियासलाईकी लकड़ियाँ बाहर भेजी जाती हैं।

पानीके सम्बंधमें जापानके साथ प्रकृतिने विशेष कृपा की है। वर्षाका औसत वहाँ ६८ इंच पड़ता है जो संसारके औसतका दुगुना है। इसीका यह परिणाम है कि जापान स्वभावतः एक हरा-भरा देश है।

आँधी और भूकम्प

इतना होते हुए भी जापानको आँधी और भूकम्पके रूपमें नैसर्गिक विपत्तिका सामना करना पड़ता है। १ सितम्बर १९२३ के भीषण भूकम्पके बाद चार वर्षोंके भीतर जापानमें कमसे कम २२ हज़ार बार धरती हिली अर्थात् एक दिनमें सोलह बार!

किन्तु मेरा खयाल है कि नैसर्गिक विपत्तियोंके कारण अप्रत्यक्ष रूपसे जापानका लाभ ही हुआ है। वे उन्हें एक साथ मिल जुलकर संकटका सामना करनेका अवसर प्रदान करती हैं। इस तरहकी प्रत्येक विपत्तिके बाद मानों जापानकी शक्ति बढ़ जाती है और उत्साह द्विगुणित हो जाता है। (१०-१२ वर्षके भीतर ही) आज याकोहामा और टोकियोकी जो स्थिति है, वही इसका प्रमाण है। मैं तो इसी नतीजेपर पहुँचा हूँ कि जापानपर प्रकृति देवीकी बड़ी कृपा है, क्योंकि वे उसके सच्चे उपासक हैं।

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि हमारे देशवासी उस प्रकृति-पूजासे होनेवाले लाभोंकी ओर पुनः ध्यान दें जो हमारे पूर्वजों-को स्वास्थ्य, प्रसन्नता, मानसिक दृढ़ता, शील, प्रतिभा और कुशलता प्रदान करती थी। इसीसे विज्ञानके भिन्न भिन्न क्षेत्रोंमें उन्होंने जो अनुसन्धान किये हैं वे आज भी संसारमें ईर्ष्याके विषय हैं। प्रकृतिको हम भूल गये हैं, अतः आइये अब हम लोग फिर उसकी ओर झुकें। वह अवश्य हमारी

सहायता करेगी, बशर्त्ते कि हममें विश्वास और संकल्पकी कमी न हो।

तेरहवाँ अध्याय

रेडियोके चमत्कार

हमारे देशवासियोंको शायद इस बातका पता नहीं है कि जापानकी उन्नतिमें रेडियोका स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है। जापानमें संगीतका आनन्द प्राप्त करनेके साथ साथ लोगोंको दिनभरके समाचार संवादपत्रोंमें निकलनेके पहले ही ज्ञात हो जाते हैं और शारीरिक व्यायाम, स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रश्न, विदेशी भाषाओं, राजनीतिक तथा व्यापारिक समस्याओं आदिके सम्बन्धकी उपयुक्त शिक्षा भी रेडिओसे प्राप्त होती है। सवेरेसे लेकर आधी राततक रेडियो मित्रकी तरह आपके साथ लगा रहता है। इससे कभी अकेलापन नहीं मालूम होता। जापानमें रेडियोकी एक विशेषता है कि उससे ग़रीब और अमीर दोनों ही लाभ उठा रहे हैं।

जापानमें रेडियो कितना सस्ता है, इसकी कल्पना तो कीजिये! महीने भरमें उसके लिए कुल छः आने खर्च करने पड़ते हैं! यही सबब है कि जापानमें घर-घरमें रेडियो लगा हुआ है, जब कि भारतमें दिल्लीके समान बड़े शहरोंमें भी एक दो दर्जनसे अधिक स्थानोंमें रेडियोके दर्शन न हो सकेंगे। जापानमें रेडियोका कार्यक्रम इतना शिक्षापूर्ण और मनोरंजक होता है कि जो वहाँकी भाषा नहीं समझता वह भी रोज़ एक

पैसा खर्च कर उसका मज़ा लूट सकता है। मैं चाहता हूँ कि भारतमें भी ऐसे ही सस्ते और शिक्षा देनेवाले रेडियोका प्रबन्ध हो जाय। इससे हम दो वर्षके भीतर ही सर्वसाधारणमें शिक्षाका प्रचार कर सकेंगे। क्या सरकार उसे सस्ता और शिक्षा-प्रदान करनेके लिए उपयोगी बनने देगी?

रेडियोसे लाभ

सबेरे ६ बजेसे रात दस बजेतक रेडियोका कार्यक्रम रखा जाता है। उसमें समाचारों और मौसिम-सम्बन्धी सूचना शिक्षा-सम्बन्धी बातें, बालकोंके कामकी बातें तथा मनोरञ्जनकी, सामग्री आदि रखनेका प्रयत्न किया जाता है। प्रत्येक विषयके विशेषज्ञोंकी एक कमेटी होती है, वही समय निर्धारित करती या कार्यक्रम बनाती है। रेडियोका सञ्चालन करनेवाली संस्थाने गत कई वर्षोंके भीतर श्रोताओंमें प्रश्नावली बाँटकर यह जानने-का प्रयत्न किया है कि सर्वसाधारणको किस तरहका कार्यक्रम ज़्यादा पसन्द है। रेडियो सम्बन्धी कार्यक्रमके लिए दैनिक समाचारपत्रोंमें ज़्यादा जगह दी जाती है।

जापानमें रेल, तार इत्यादिसे सम्बन्ध रखनेवाले विभाग द्वारा रेडियोके कार्यक्रमकी जाँच-पड़ताल सख़्तीके साथ की जाती है। अपने राजनीतिक विचार अथवा रेडियो द्वारा किसी प्रकारकी विज्ञापनबाज़ी करनेकी सख़्त मुमानियत है। इसी तरह घुड़दौड़ोंमें जीतनेवालोंको कितना रूपया इनाम दिया गया, इस तरहकी सूचनाओं तथा सर्वसाधारणको क्षति पहुँचानेवाली अन्य बातोंकी भी मनाही रहती है। जापानकी सांस्कृतिक उन्नति-का श्रेय एक बड़े अंशमें वहाँके रेडियो-प्रबन्धको ही दिया जाता है। यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि नवयुवकोंकी

शिक्षाके काममें इससे बड़ी मदद मिली है। प्रचलित विषयों, विशेषकर राष्ट्रीय हितसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंके सम्बन्धकी बातोंका विस्तृत रूपसे विचार किया जाता है। इससे बड़े बड़े प्रश्नोंके सम्बन्धमें, उदाहरणार्थ मंचूरियाका झगड़ा या राष्ट्र-संघ से सम्बन्ध-विच्छेदके सम्बन्धमें, समूचे राष्ट्रमें ऐकमत्य स्थापित होनेमें सहायता मिलती है। रेडियोका सञ्चालन करनेवाले केन्द्रोंसे सबेरे व्यायाम-सम्बन्धी जिस कार्यक्रमका प्रचार किया जाता है वह विशेष उल्लेखनीय है। यह दैनिक व्यायाम राष्ट्रमें चलनेवाले स्वास्थ्यसम्बन्धी आन्दोलनोंका ही अङ्ग है। अगस्त १९३३ में जब 'ग्रीष्मकालीन वार्षिक रेडियो व्यायाम' का कार्यक्रम दूसरी बार देशके सामने रखा गया, तब उसमें २० दिनतक ३ करोड़ ५८ लाख आदमियोंने हिस्सा लिया था।

रेडियोके स्टेशन देश भरमें उपयुक्त स्थानोंपर बनाये गये हैं, इसलिए स्थानीय त्यौहार तथा वर्षकी अन्य घटनाएँ और वहाँके ग्रामगीत जिन्हें पहले बहुत ही कम लोग सुन सकते थे अब सारे राष्ट्रके सामने उपस्थित होते रहते हैं। एक तो वहाँ खानगी तौरसे रेडियो द्वारा समाचार इत्यादि भेजनेकी मनाही है, दूसरे रेडियोके समस्त केन्द्रोंका नियंत्रण एक ही प्रधान संस्था करती है, इसीसे जापानकी सभ्यतामें एकता उत्पन्न करनेमें रेडियोसे पर्याप्त सहायता मिली। स्त्री, पुरुषों, नवयुवकों, छात्रों और बालकोंके लिए व्याख्यानोंका प्रबन्ध क्रम-क्रमसे किया जाता है। इन व्याख्यानोंमें अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि भाषाओंकी शिक्षा तथा साहित्य, ललितकला और हाथकी कारीगरी इत्यादि सम्बन्धी वाद-विवादको भी स्थान दिया जाता है। रेडियो-से उन कलाओंकी भी अच्छी उन्नति हो रही है जो रेडियो प्रचारके अनुकूल और उसके उपयुक्त हों। उदाहरणके लिए

"रेडिओ ड्रामा" का बड़ी दिलचस्पीके साथ अध्ययन किया जा रहा है और इस तरहके नाटक प्रस्तुत करनेवालोंको रेडियो-की प्रधान संस्था समय समयपर इनाम भी बाँटा करती है। सब तरहका जापानी सङ्गीत और नाटकीय कथोपकथन इत्यादि रेडियो द्वारा सुनाया जाता है, जो लोगोंको बहुत पसन्द आता है। पश्चिमका पुराना और आधुनिक दोनों ही तरहका सङ्गीत तथा जापानके भी पुराने और आजकलके ग्रामगीत कार्यक्रममें रखे जाते हैं। प्रधान केन्द्रोंमें सुन्दर वाद्य-ध्वनिका प्रसार करने-का भी प्रबन्ध रहता है। खास खास मौसिममें खेलोंके समाचार लोगोंको ज्यादा अच्छे मालूम पड़ते हैं, इसीसे प्रति दिन कहीं न कहींसे किसी न किसी खेलका ब्यौरा रेडियो द्वारा प्रकाशित होता रहता है। फुटबाल तथा कुश्तीके समाचार सुनना लोग ज्यादा पसन्द करते हैं।

प्रत्येक घरमें रेडियो

पिछले नौ वर्षोंको हम जापानमें रेडियोकी स्थापनाका युग कह सकते हैं। अब आनेवाले वर्षोंमें उसको विस्तृत तथा पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया जायगा। सुननेवालोंकी संख्या बढ़ाने-के अतिरिक्त रेडियोके सञ्चालन आदिके तरीक़ोंमें सुधार करने-की ओर इस समय अधिक ध्यान है। रेडियोकी प्रधान संस्था 'प्रत्येक घरमें एक रेडियो' का लक्ष्य सामने रखकर सुननेवालों की संख्या-वृद्धिका प्रयत्न कर रही है। टेलीविज़न और लघु-विद्युत् प्रवाहके अध्ययनमें भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। टेली-विज़नके जापानी विशेषज्ञोंको उसमें इतनी काफी सफलता मिल चुकी है कि अब उनके सामने सिर्फ यही प्रश्न रह गया है कि किस तरह उससे व्यापारिक लाभ उठाया जाय।

खास जापानमें रेडियोके १९ स्टेशन हैं। कोरियामें एक, फारमोसामें एक और क्वांतुंग प्रान्तमें एक। अन्य बड़े देशोंकी तुलनामें यहाँ सर्वसाधारण द्वारा रेडियोका उपयोग अपेक्षाकृत कम ही होता है। जुलाई १९३२ के अन्ततक फी हजार आदमीके पीछे जापान खासमें रेडियो यन्त्रोंकी संख्याका औसत बीस ही पड़ता था, जब कि संयुक्त राज अमेरिकामें १२२, ब्रिटेनमें ११५, जर्मनीमें ७० और कनेडामें ५९ पड़ता था। फिर भी रेडियोका सञ्चालन करनेवाली प्रधान संस्थाने देशमें दस लाख रेडियो यन्त्र स्थापित करनेका जो लक्ष्य अपने सामने रखा था वह पूरा होगया, क्योंकि १९३२ के अन्ततक इनकी संख्या १३२०१४५ हो चुकी थी।

साम्राज्यभरमें रेडियोंकी व्यवस्था

स्वदेशमें स्थापित रेडियो यन्त्रका सम्बन्ध उपनिवेशोंके रेडियो यन्त्रोंसे रहता है। उदाहरणके लिए कोरियामें रेडियोका कार्यक्रम जापानी कार्यक्रमके आधारपर ही बनाया जाता है। फारमोसामें भी बातचीत और मन-बहलाववाली सामग्री प्रायः जापानी कार्यक्रमसे ही लेनेका रिवाज-सा बन गया है। इस तरह उपनिवेशोंमें रेडियोका सञ्चालन, उनके स्वतन्त्र केन्द्रोंके होते हुए भी, प्रायः जापानमें स्थित प्रधान केन्द्रपर ही अवलम्बित रहता है। खास जापानमें भी एक सीमातक देशके विभिन्न केन्द्र टोकियोके प्रधान केन्द्रपर अवलम्बित रहते हैं।

मुफ्तमें रेडियो

अन्य देशोंकी तरह जापानमें भी रेडियो-यन्त्रोंको तैयार करने और बेचनेका काम खानगी कम्पनियोंके हाथमें है।

किन्तु जापानकी केन्द्रीय रेडियो-संस्था रेडियो-यन्त्रके कुछ खास तरहके बने हुए हिस्सोंको प्रोत्साहन देती है तथा सुनने-वालोंके सुभीतेके लिए समय समयपर उनका ब्यौरा और क़ीमत प्रकाशित किया करती है। अन्धे तथा इसी तरहके अन्य अभागे लोगों और स्कूल इत्यादि सार्वजनिक संस्थाओंको मुफ्तमें रेडियो-यन्त्रसे लाभ उठानेका अवसर दिया जाता है। बूढ़े लोगोंके लिए बने हुए आश्रय-स्थानों और खैराती दवा-खानों, अनाथ गृहों, पार्कों इत्यादिमें केन्द्रीय संस्थाकी ओरसे मुफ्तमें रेडियो यन्त्र लगा दिये जाते हैं। उसकी ओरसे देश-भरमें अनेक स्थानोंमें ऐसा प्रबन्ध है कि वहाँ रेडियो यंत्रमें होनेवाली खराबियोंकी जाँच की जाती है और बिना कुछ लिये उनके सम्बन्धमें उचित सलाह दी जाती है।

रेडियोसे एकतामें वृद्धि

एक ही लक्ष्यके निमत्त सारे देशको एकताके सूत्रमें आबद्ध करनेमें रेडियोसे बड़ी सहायता मिली है। चीन-जापान या मंचूरियाके झगड़ेके समय १० लाख रेडियो-यन्त्रोंकी अभीष्ट संख्या पूरी ही नहीं हो गयी बल्कि उसका अतिक्रमण भी हो गया। इससे स्पष्ट है कि समाचार फैलानेके साधनके रूपमें रेडियो-यन्त्रोंसे जापानमें सर्वसाधारणपर ज़ोरदार राजनीतिक प्रभाव डाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसका आर्थिक महत्त्व भी कम नहीं है, क्योंकि बड़े शहरोंमें सरकारी कागजों या ऋण-पत्रोंके भावके समाचार और मौसिम सम्बन्धी रिपोर्टें दिनभरमें कई बार रेडियो द्वारा ही भेजी जाती हैं। वस्तुतः सामान्य समाचारके बाद "आर्थिक-समाचार" को ही विशेष महत्त्व दिया जाता है। फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि जापान-

में राजनीतिक दृष्टिसे रेडियोका महत्त्व सबसे ज्यादा बढ़ा हुआ है।

अप्रैल १९३२ से रेडियोकी फ़ीस १ येनसे घटाकर ७५ सेन कर दी गयी थी, और अप्रैल १९३५ के बाद वह ५० सेन ही हो गयी है। प्रधानतः इसीके कारण उस वर्ष ६ महीनेके भीतर ही जापानमें लगाये जानेवाले नये रेडियो-यन्त्रोंमें २ लाख, २० हज़ारकी वृद्धि हुई।

सरकारी जाँच-पड़ताल

रेडियो द्वारा जो समाचार इत्यादि भेजा जाता है, उसकी गहरी और विस्तृत जाँच-पड़ताल सरकारकी ओरसे की जाती है। जितनी बातें रेडियो द्वारा कहनी होती हैं उनका प्रत्येक पैराग्राफ़ (थोड़ेसे व्यावसायिक समाचारोंको छोड़कर) जाँच करनेवाले अफ़सर (सेंसर) के सामने पहलेसे पेश करना होता है और मूल पाण्डुलिपिमें लिखी हुई बातसे ज़रा भी इधर उधर कहने सुननेका ज्यों ही कोई प्रयत्न किया जाता है त्यों ही इस बातकी सम्भावना हो जाती है कि सरकारी अफ़सर उसका सम्बन्ध तुरन्त काट दे।

भारतके पूँजीपतियोंको भी चाहिए कि वे रेडियोके केन्द्रोंका सङ्गठन करने और रेडियो सम्बन्धी सामग्री तैयार करनेके व्यवसायमें रुपया लगावें। हमारे देशमें इस व्यवसायके पन-पनेकी काफ़ी गुञ्जाइश है, बशर्ते कि उसका सङ्गठन करनेवाले शुरूसे ही बड़े बड़े मुनाफ़ोंका स्वप्न न देखने लगें। क्या हमारे राष्ट्रीय नेताओंने रेडियोके महत्त्वको समझ लिया है और क्या कभी उन्होंने स्वतन्त्रताके इस साधनका सङ्गठन करनेकी ओर ध्यान देनेकी चेष्टा की है। अब भी समय है, वे

आँख खोलकर देखें कि रेडियोकी सहायतासे कितना काम किया जा सकता है।

महात्माजीसे अनुरोध

मेरी बड़ी इच्छा है कि महात्मा गान्धी जापान जावें और खुद अपनी आँखोंसे देखें कि रेडियो सर्वसाधारणकी सहायता करनेका कितना प्रभावशाली साधन है। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि वे एक बार जापान हो आवें तो अपने ग्राम-सङ्गठनके कार्यक्रममें सबसे ऊँचा स्थान रेडियोको ही देंगे, क्योंकि यदि वे अपने आश्रमसे कृषकोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयपर रेडियो द्वारा भाषण करें तो देशके हज़ारों कार्यकर्त्ताओंके भाषणोंकी अपेक्षा वह अधिक उपयोगी प्रमाणित होगा। गान्धीजीको जो अहिंसात्मक क्रान्ति अभीष्ट है उसे निकट लानेमें रेडियोसे ही विशेष सहायता मिलेगी। यदि जापानमें दस वर्षके भीतर ही रेडियोका विकास हो सकता है तो क्या भारतके लिए भी यह बात सम्भव नहीं हो सकती?

चौदहवाँ अध्याय

समाचारपत्रोंका व्यापक प्रभाव

हममेंसे बहुतोंको यह बात नहीं मालूम है कि पूरबका देश होते हुए भी जापानने यूरोप और अमेरिकाको केवल सस्ते कपड़े तथा अन्य सस्ती वस्तुएँ तैयार करनेमें ही नहीं पिछाड़ दिया है, बल्कि वह संसार भरमें सबसे अच्छे और सस्ते संवादपत्र

प्रकाशित करनेमें भी अपना सानी नहीं रखता और इनकी ग्राहक संख्या हज़ारों नहीं लाखोंपर है। ब्रिटेनके सबसे बड़े समाचार-पत्रोंका प्रचार सम्भवतः बीस लाखसे अधिक नहीं है, किन्तु आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि ओसाका मैनीची और ओसाका असाही (जिनका एक एक संस्करण टोकियोसे भी निकलता है) की ग्राहकसंख्या ३० लाखसे ऊपर है। मैं समझता हूँ कि यदि भारतके सब समाचारपत्रोंकी ग्राहक-संख्या एकमें मिला दी जाय तो भी वह जापानके एक बड़े संवादपत्रकी ग्राहक-संख्यासे अधिक होगी। जापानके मामूलीसे मामूली समाचारपत्रकी ग्राहक-संख्या ५० हजारसे कम नहीं है। इनके पास झुण्डके झुण्ड वायुयान और सैकड़ों कबूतर रहते हैं, जो देशमें एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतक समाचार तथा फोटो पहुँचाया करते हैं।

देशकी आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नतिके साथ साथ समाचारपत्रोंकी संख्या भी प्रति वर्ष बढ़ती रही है। १९३१ के अन्तमें वहाँ १२८० समाचारपत्र प्रकाशित होते थे। किन्तु दूसरे वर्षके अन्ततक उनकी संख्या १३३० हो गयी। बहुतसे प्रसिद्ध पत्रोंका प्रबन्ध कम्पनियोंके हाथमें है, जिनकी संख्या सन् १९३१ में २२१ थी और जिनमें ५ करोड़ ९ लाख ३८ हज़ार येनकी पूँजी लगी थी।

जापानके सभी समाचारपत्र व्यक्तिविशेष या खानगी कम्पनियोंकी सम्पत्ति हैं और उन्हींके द्वारा सञ्चालित होते हैं। ऐसा कोई पत्र नहीं है जो प्रत्यक्ष रूपसे सरकारके अधीन हो। महायुद्धके बादसे समाचार-पत्र प्रकाशित करनेके लिए प्रायः साझेकी कम्पनियाँ स्थापित होती रही हैं जिनके अधिकतर हिस्से दो-चार बड़े बड़े पूँजीपतियों द्वारा ही खरीदे जाते रहे हैं।

ओसाका असाही (जिसका एक संस्करण 'टोकियो असाही' के नामसे प्रकाशित होता है) और ओसाका मैनीची (जिसके टोकियोवाले संस्करणका नाम टोकियो नीची नीची है) जापानके दो सबसे बड़े पत्र हैं। आर्थिक प्रभाव, सुदृढ़ व्यवस्था तथा समाचारोंका संग्रह और उनके प्रचारकी सुविधाओं, ग्राहक-संख्या, लोकप्रियता आदिकी दृष्टिसे ये पत्र अन्य सब पत्रोंकी अपेक्षा आगे बढ़े हुए हैं। दोनों कम्पनियोंकी शक्ति प्रायः बराबर बराबर है। योमीउरी शिंबून नामक पत्रकी ग्राहक संख्या, उसके सम्पादनके अनोखे ढङ्गके कारण, अब ४ लाख तक पहुँच गयी है और टोकियोमें इसका तीसरा नम्बर समझा जाता है। किन्तु इसका प्रचार परिमित क्षेत्रमें होनेके कारण होची शिंबूनकी ग्राहक संख्या उससे बढ़ी हुई है। चुगाई शोगियो पत्रका महत्व व्यावसायिक क्षेत्रमें बहुत है, किन्तु यों उपर्युक्त पत्रोंकी तुलनामें उसका प्रचार बहुत कम है।

जापानमें अन्य देशोंकी तरह स्थानीय पत्र सन्तोषजनक रीतिसे उन्नति नहीं कर सके हैं। इसका कारण पूँजीकी कमी तथा समाचार-संग्रह करनेकी सुविधाओंका अभाव है। किन्तु एक मुख्य कारण यह है कि गमनागमनके साधनोंकी अच्छी उन्नति हो जानेकी वजहसे टोकियो और ओसाकाके उपर्युक्त दोनों पत्र थोड़े ही समयके भीतर भिन्न भिन्न स्थानोंमें पहुँचाये जाते हैं। इसके सिवा, एक बड़ी बात यह है कि यह दोनों समाचार-पत्र प्रत्येक ज़िलेके लिए एक अतिरिक्त पृष्ठ भी प्रकाशित किया करते हैं, जिसके कारण स्थानीय पत्रोंको बड़ी हानि उठानी पड़ती है।

इस घोर प्रतिद्वन्द्विताके सामने खड़े रह सकनेके लिए स्थानीय समाचार-पत्रोंको जी-जानसे प्रयत्न करना पड़ता है। शिन-ऐची

आदि चार बड़े स्थानीय पत्रोंने सम्मिलित रूपसे समाचार या अन्य सामग्री लेनेके लिए आपसमें मिलकर 'जापान प्रेस लीग' नामक एक संस्थाकी स्थापना कर ली है। टोकियो तथा ओसाकाके मुख्य पत्र प्रायः निष्पक्ष मत प्रकट किया करते हैं, परन्तु अधिकांश स्थानीय पत्र खास खास राजनीतिक या साम्प्रदायिक पक्षोंका समर्थन करते हैं।

समाचार भेजनेवाली कम्पनियोंमें रेंगो न्यूज़ एजेन्सी और निप्पन डेम्पो त्शूशीन-शा मुख्य हैं। पहली संस्था अपनेको "सर्व-साधारणकी अनुचर" समझती है और उसे अपने समाचारोंकी सत्यताका अभिमान रहता है। संसारके असोशिएटेड प्रेसमें जापानका प्रतिनिधित्व यही करती है। दूसरी संस्थाका मुख्य उद्देश्य जल्दसे जल्द खबर पहुँचाना और ऐसे समाचारोंका संग्रह करना है जो अधिक लोकप्रिय हों। फोटोग्राफरोंको शीघ्रता-पूर्वक पहुँचानेका प्रबन्ध करनेके लिए वह विशेष प्रसिद्ध है।

जापानके अङ्गरेजी समाचार-पत्र

जापानमें कई अङ्गरेजीपत्र हैं जो ब्रिटिशों या अमेरिकनोंके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होते हैं। पहले इनकी संख्या ९ थी जो टोकियो, याकोहामा और नागासकीसे निकलते थे। इनमेंसे दो—जापान-गज़ट और जापान-मेल—देशी समाचार-पत्रोंसे भी पुराने थे, किन्तु अब इन पुराने पत्रोंमेंसे एक भी नहीं रह गया। कुछका प्रकाशन बिलकुल ही बन्द हो गया और कुछ दूसरे पत्रोंमें संयुक्त हो गये। इस समय गैर-जापानियों द्वारा निकाले जानेवाले सिर्फ तीन ही पत्र ऐसे रह गये हैं जो अंग्रेज़ीमें ही प्रकाशित होते हैं। उनके नाम हैं—दि जापान एडवर्टाइज़र, दि ट्रान्सपैसिफ़िक, दि जापान क्रानिकल।

जापानियों द्वारा निकाले जानेवाले अंग्रेजीके समाचार-पत्रोंमें 'दि जापान टाइम्स' की ख्याति अन्य अन्य देशोंमें भी है। इसकी ग्राहक-संख्या २५ हज़ार है। ओसाका मैनीची (और टोकियो नीची-नीची) की ओरसे भी एक एक अंग्रेजी दैनिक पत्र निकलता है, जिनके नाम भी ओसाका मैनीची और टोकियो नीची नीची हैं। ये पत्र जापानियों द्वारा संचालित अंग्रेज़ीके पत्रोंमें सचमुच बहुत अच्छे समझे जाते हैं और उनमें सबसे टटके समाचार तथा अन्य विशेषताएँ रहती हैं।

समाचार भेजनेका प्रबन्ध

रेंगो न्यूज़ एजेंसीका उद्देश्य प्रत्येक देशकी समाचार भेजनेवाली एक संस्थासे सहयोग कर समाचार जाननेके साधनोंका जाल बिछा देना है। इस तरह उसने भिन्न भिन्न देशोंकी कोई तीस संस्थाओंसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, जिनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे परस्पर समाचारोंका लेन-देन होता है। इनमेंसे मुख्य ये हैं—इंग्लैण्डकी रायटर कम्पनी, अमेरिकाकी असोशिएटेड प्रेस कम्पनी, फ्रान्सकी हवास कम्पनी और रूसकी तास कम्पनी। जापानमें रेङ्गोके १८ दफ़्तर हैं और चीन तथा मञ्चूरियामें दस। टोकियो और कोबेके बीच उसके अपने खास टेलीफ़ोनका प्रबन्ध है। जापानके सब समाचार-पत्रोंको तो वह समाचार भेजती ही है, अन्य देशोंको भी वह बेतारके तार द्वारा दिनमें पाँच बार जापानी भाषामें और दो बार अंग्रेज़ी भाषामें समाचार भेजती है।

निप्पन डेम्पो त्सुशीन-शाने अमेरिकाके यूनाइटेड प्रेस असोसिएशन्ससे उनके द्वारा संगृहीत समाचारोंका उपयोग करनेका ठीका कर लिया है। समाचारोंका वितरण करनेके लिए

जापानमें उसके २२ दफ़्तर हैं। मंचूरिया और चीनमें ९ तथा लण्डन और न्यूयार्कमें भी एक एक दफ़्तर है। उसके पास फोटो भेजनेका अपना यन्त्र है और टोकियो तथा फुकुओकाके बीच ८०० मील लम्बी अपनी ख़ास टेलीफ़ोन लाइन है। इसकी एक विशेषता यह है कि टेलीफ़ोन द्वारा समाचार भेजनेके साथ ही फोटो भी भेजे जा सकते हैं। बेतारके तार द्वारा यह भी दिनमें तीन बार प्रशान्त सागरके किनारेवाले देशोंको समाचार भेजा करती है।

ओसाका और टोकियो असाहीका एक शाखा कार्यालय है और १९ केन्द्र हैं जिनमें ४०० संवाददाता नियुक्त हैं। विदेशोंमें उसने ३० विशेष संवाददाताओंका स्थायी प्रबन्ध कर रखा है। उदाहरणके लिए केवल प्रशान्त सागरके देशोंमें ही पाइ-पिङ्ग, शाङ्घाई, मुक़दन, सिनकिङ्ग, हार्बिन, डैरेन इत्यादिमें उसके संवाददाता रहते हैं। उसके पास बीस हवाई जहाज़ हैं और टोकियो तथा ओसाकाके बीच अपना ख़ास टेलीफोन होनेके सिवा फोटो भेजनेका भी प्रबन्ध है। रेङ्गो और निप्पन डेम्पोसे भी इसे समाचार मिला करते हैं, जिन्हें वह सारे देशमें फैला देता है। 'असाही पिक्टोरल' के नामसे अंग्रेज़ीमें इसका एक साप्ताहिक संस्करण भी निकलता है जो विदेशोंमें बहुत पसन्द किया जाता है।

ओसाका मैनीची (और टोकियो नीची-नीची) के जापानमें २६ शाखा कार्यालय हैं तथा ३४ समाचारोंके केन्द्र हैं। मंचूरिया तथा चीनमें उसके ३ शाखा कार्यालय और ६ केन्द्र हैं। इसी तरह अमेरिका तथा रूसमें भी एक एक दफ़्तर है। विदेशोंमें उसके विशेष संवाददाता सबके सब जापानी हैं। इसी तरह अन्य समाचार-पत्रोंका भी अपना प्रबन्ध

रहता है और उनके भी संवाददाता भिन्न भिन्न देशोंमें फैले रहते हैं।

जापानमें विदेशी संवाददाता

संसारके बहुतसे समाचार-पत्र तथा समाचार भेजनेवाली कम्पनियाँ जापानी समाचार प्रायः उपर्युक्त दोनों प्रमुख पत्रों तथा कम्पनियोंसे प्राप्त करती हैं। जिनकी ओरसे अपने विशेष संवाददाता टोकियो भेजे जाते हैं, वे ये हैं—यूनाइटेड प्रेस अमेरिका, असोशियेटेड प्रेस अमेरिका, रायटर, तास न्यूज़ एजेंसी (रूस), दि वाल स्ट्रीट जर्नल, दि डेलीमेल, दि डेली टेलीग्राफ, दि टाइम्ज़, दि न्यू यार्क टाइम्ज़, दि शिकागो डेलीन्यूज़, दि हवास न्यूज एजेंसी, दि कनेडियन जर्नल। इनके सिवा जर्मन पत्रोंका भी एक संवाददाता वहाँ रहता है।

समाचार भेजनेका खर्च

समाचार भेजनेका खर्च मामूली तार भेजनेके खर्चसे औसतन ६० प्रतिशत कम पड़ता है।

पतेके लिए पाँच सेन (लगभग २ पैसे) और जापानी ५० अक्षरोंतक या यूरोपीय भाषाओंके १० शब्दोंतकका महसूल २५ सेन (लगभग ४ आना) लगता है। इसके बाद प्रति ५० अक्षरों या १० शब्दों (विदेशी) का ३० सेन और लगता है। इसी तरह टेलीफोन द्वारा समाचार भेजनेका वार्षिक खर्च मामूली टेलीफोनकी फीसका $\frac{1}{६}$ वाँ हिस्सा × ३६० पड़ता है।

समाचारपत्रोंका नियन्त्रण

सन् १९०९ में स्वीकृत समाचारपत्रोंका क़ानून अब भी जारी है। उसमें कई धाराएँ ऐसी हैं जो विचारों और वाद-

विचारकी स्वतन्त्रताकी दृष्टिसे अनुपयुक्त प्रतीत होती हैं। इनमेंसे कुछका सारांश यह है—

(क) यदि स्वराष्ट्र-मन्त्रीकी दृष्टिमें कोई समाचारपत्र शान्ति और व्यवस्था अथवा सार्वजनिक सदाचारके विरुद्ध मालूम पड़े, तो वह उसकी बिक्री और प्रचार बन्द कर दे सकता है अथवा आवश्यकता होनेपर उसे ज़ब्त भी कर सकता है। ऐसी हालतमें पत्रके प्रकाशक और सम्पादकको छः माहसे कमकी सज़ा या दो सौ येनसे कमका जुर्माना किया जा सकता है।

(ख) यदि कोई समाचारपत्र ऐसी कोई बात प्रकाशित करे जिससे शाही खानदानकी प्रतिष्ठाको क्षति पहुँचे या जिसका उद्देश्य तत्कालीन राजनीतिक प्रणालीको बदल डालना या शासन-व्यवस्थाका तिरस्कार करना हो, तो ऐसी हालतमें उसके सम्पादक तथा प्रकाशकको या तो दो वर्ष क़ैदकी सज़ा हो सकती है या तीन सौ येनसे कमका जुर्माना हो सकता है, साथ ही यदि अदालत चाहे तो उस पत्रका चलना बन्द कर दे सकती है।

(ग) युद्ध-मन्त्री, नौसेनाध्यक्ष तथा परराष्ट्र-मन्त्री अपनी विशेष आज्ञासे सेना और गुप्त राजनीतिक मामिलोंसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी समाचारका छपना रोक दे सकते हैं या उसमें कुछ शर्तें लगा दे सकते हैं।

(घ) मुकद्दमेकी सुनाई आरम्भ होनेके पहले शुरूमें की गयी जाँचका ब्योरा समाचारपत्र नहीं प्रकाशित कर सकते और न विचाराधीन मामलेके परिणामके सम्बन्धमें कुछ लिख सकते हैं।

(ङ) जो अशुद्धियाँ रह जायँ उनकी ओर यदि ध्यान आकर्षित किया जाय तो उनका परिमार्जन कर देना समाचार-पत्रोंका आवश्यक कर्तव्य है।

(च) समाचारपत्रोंके लिए स्थानीय अधिकारियोंके पास अपनी विश्वसनीयताके तौरपर ५०० से लेकर २००० येन तककी रक़म जमा करना ज़रूरी है।

तार सम्बन्धी क़ानून

तार या टेलीफोन द्वारा समाचार भेजनेपर इससे कम नियन्त्रण रखा जाता है, फिर भी इस सम्बन्धमें कुछ नियम हैं अवश्य। उदाहरणके लिए १९१५ के बेतारके तार सम्बन्धी क़ानूनको लीजिये—

(क) बेतारके तार तथा टेलीफोनपर सरकारका नियंत्रण है।

(ख) यदि कोई मंत्री सैनिक उद्देश्य या अन्य किसी कारणसे ज़रूरी समझे तो वह बेतारके तार तथा टेलीफोनके सम्बन्धमें सरकारकी स्वीकृति देनेसे इनकार कर सकता है या उनके उपयोगके सम्बन्धमें रुकावटें डाल सकता है अथवा उनके उपयोगकी बिलकुल मनाही कर सकता है।

(ग) मंत्री लोग यदि चाहें तो सार्वजनिक शान्ति या सदाचारकी रक्षाके लिहाजसे बेतारके तार या टेलीफोन द्वारा भेजे जानेवाले समाचारको रोक दे सकते हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय

मनोमोहक जापान

यदि मैं भारतका अधिनायक बन जाऊँ तो तुरन्त एक लाख नवयुवकों और देशके समस्त लखपतियोंको इस उद्देश्यसे

जापान भेज दूँ कि वे वहाँ जाकर इस बातका अध्ययन करें कि यदि मस्तिष्क, युवावस्था और पूँजीमें परस्पर सहयोग हो तो कोई राष्ट्र कहाँतक सफलता प्राप्त कर सकता है। इसी तरह मैं सब साम्प्रदायिक नेताओंको जापान भेज दूँगा जिसमें वे वहाँ जाकर सच्ची धार्मिक सहिष्णुताका सबक सीख सकें।

संसारकी यात्रा करते समय जापान और अमेरिका ये दो देश ही मुझे ऐसे मालूम हुए जिनसे मैं पुनः पुनः प्रोत्साहित होता रहा हूँ। अमेरिकाकी छोटी-सी यात्रा करनेमें भी खर्च बहुत पड़ जायगा। इसके विपरीत जापान जानेमें उतना खर्च न पड़ेगा और वहाँ वे सब बातें दृष्टिगोचर हो सकती हैं जो हमें अमेरिका या यूरोपमें देखने या सीखनेको मिल सकती हैं। इसलिए यदि कोई जापानकी यात्रा कर आवे तो वर्तमान सभ्यताकी अच्छीसे अच्छी चीज़ोंको देख सकनेका सन्तोष उसे मिल सकता है।

जापानसे पद पदपर हमें प्रोत्साहन मिलता है। देशभक्ति, सच्चा भ्रातृभाव, प्रफुल्लता, ईमानदारी, स्वच्छता, प्रकृति-प्रेम, निर्विघ्नता, धार्मिक सहिष्णुता, परिश्रम करनेकी इच्छा तथा शिष्टता यही जापानियोंके कुछ जातीय गुण हैं जिनका स्थायी प्रभाव जापानकी यात्रा करनेवाले व्यक्तियोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता। इन्हीं सद्‌गुणोंको प्राप्त करनेकी गरज़से मैं अपने देश भाइयोंसे जापान जानेका आग्रह कर रहा हूँ, केवल वहाँके मनो-रञ्जक दृश्य देखनेके लिए नहीं। भारतमें भी काश्मीर, मन्सूरी, नैनीताल, दार्जिलिङ्ग, मरी, उटकमण्ड, गङ्गोत्री, उदयपुरकी झीलें इत्यादि प्राकृतिक दृश्योंकी कमी नहीं है। फिर भी मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि जापानके कुछ प्राकृतिक दृश्य इनसे किसी तरह कम आकर्षक नहीं। जापानके समीपवर्त्ती समुद्रका दृश्य तो सचमुच संसार भरमें बिलकुल ही बेजोड़ है।

मुझे ऐसा मालूम पड़ता है मानो जापान एक बड़े पैमाने-पर काश्मीर ही हो जो टापूके रूपमें परिणत हो गया है। अपने मनोमोहक दृश्यों, सुन्दर स्वास्थ्य-निवासों, बढ़िया कारीगरी, शिष्ट व्यवहार तथा प्राचीन प्रथाओंके कारण जापान घूमने-फिरने और सतत् देखने योग्य सुन्दर भूमिके रूपमें प्रसिद्ध हो गया है। सारे देशमें सब तरहकी आधुनिक सुविधाएँ—सुन्दर रेलें, बढ़िया होटल, मोटरोंके लायक पक्की सड़कें, अच्छे अस्पताल—उपलब्ध हैं। इसके साथ ही जापानमें प्राचीनताका वह आकर्षण भी है जिसे पूर्वीय देशोंकी विशेषता समझना चाहिये।

भौगोलिक स्थिति

एशियाके पूर्वी किनारेपर लगभग २९ सौ मीलतक अर्थात् आर्कटिक समुद्रके दक्षिणसे लेकर उष्ण कटिबन्धके समुद्र तक जापान फैला हुआ है। ताईवान (फ़ारमोसा) के दक्षिण के हिस्से उष्ण कटिबन्धमें और काराफूतो (दक्षिणी सैघेलियन) जो कि जापानी साम्राज्यका बिलकुल उत्तरका हिस्सा समझा जाता है, बहुत ही ठंढा है। फिर भी, उत्तरके होकैदो द्वीपको छोड़कर जापानका मुख्य भाग समशीतोष्ण कटिबन्धमें है, जिससे वहाँका जलवायु न बहुत गर्म, न बहुत ठंढा है।

जापान पूर्वीय संसारके व्यापार-व्यवसायका केन्द्र है। यहाँपर अमेरिकासे, स्वेज़ होकर यूरोपसे, और रूस होकर स्थल मार्गसे—व्यापार-व्यवसायके ये तीन मार्ग इकट्ठे होते हैं। उसके बन्दर याकोहामा, कोबे, नागासकी इत्यादि संसारके व्यापारके प्रसिद्ध अड्डे हैं।

भौगोलिक स्थिति और पहाड़ों, नदियों तथा झीलों इत्यादि की बहुलताके कारण जापानमें ऐसे मनोरम स्थानोंकी कमी

नहीं है जैसे अन्य देशोंमें बहुत कम देखनेको मिलते हैं। विदेशी यात्री जापानमें पदार्पण करते ही प्रकृतिकी तरह तरहकी झाँकी देखकर विस्मय-विभोर सा रह जाता है। ऐतिहासिक प्रसिद्धि अथवा परम्पराके कारण इन स्थानोंको और भी महत्त्व प्राप्त हो गया है। इस तरहके रमणीक स्थानोंमेंसे कुछ ये हैं, आकान, दाईसेत्सूज़ान, तोवादा, निक्को, फ़ूज़ी और हकोने या जापानके आल्प्स, योशीनो और कुमानो, दाईसेन, आसो, अन्तःस्थित समुद्र, उनज़ेन और किरिशिमा। अंतके तीन स्थान जापानके राष्ट्रीय पार्क (मनोरंजनके स्थान) मान लिये गये हैं। अन्य स्थानोंमें भी मनोरंजनकी काफ़ी सामग्री मौजूद है। इन राष्ट्रीय पार्कोंमें जो तरह तरहकी आकर्षक वस्तुएँ मौजूद हैं, उनमेंसे कुछ ये हैं—मोहक आकारवाले ज्वालामुखी पहाड़, शुभ्र स्वच्छ जलवाली पहाड़ी झीलें, हरेभरे जंगल और बहुतायतसे पैदा होनेवाले जंगली फूल इत्यादि। गर्म जलके झरने इन सब स्थानोंमें बहुत पाये जाते हैं। इनकी वजहसे यूरोप और अमेरिकाके ऐसे ही स्थानोंकी अपेक्षा ये स्थल अधिक सुहावने हो गये हैं। यहाँपर बहुतसे मन्दिर तथा सैकड़ों वर्ष पुरानी समाधियाँ और अन्य ऐतिहासिक अवशेष विद्यमान हैं, जिनका प्रभाव बाहरसे आनेवाले दर्शकोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता।

स्वास्थ्य-निवास तथा खनिज झरने

खनिज पदार्थोंवाले जितने झरने जापानमें पाये जाते हैं, उतने अन्य किसी देशमें नहीं मिलते। कुछ तो देशके ऐसे एकान्त स्थानोंमें हैं जहाँ पुराने रीति-रिवाज़ और विचित्र तरीक़े आज भी प्रचलित हैं, किन्तु बहुतसे ऐसी जगहों

पर भी हैं जहाँ यात्री अक्सर आया जाया करते हैं और जहाँ आजकलके सभी सुभीते उपलब्ध हैं। ऐसे कमसे कम ११०० झरने वहाँपर हैं, जो वैज्ञानिक रूपसे स्वास्थ्य-सुधारमें सहायक साबित हो चुके हैं। कई झरनोंसे रेडियमकी तरह प्रकाश निकलता सा देख पड़ता है। नोबोरिबेत्सूका झरना अपनी गरमीके लिए प्रसिद्ध है। कुसात्सू अपने गन्धक-मिश्रित जलके लिए, इकाओ, हकोने और अरिमा सुन्दर पार्वतीय दृश्योंके लिए प्रसिद्ध हैं। बेप्पू संसार भरमें प्रसिद्ध "गरम जलके झरनोंका शहर" समझा जाता है। यहाँ समुद्र-स्नानका मज़ा लिया जा सकता है और समुद्रके किनारे गर्म जलका स्नान भी किया जा सकता है। उनज़ेन भी एक प्रसिद्ध झरना है जहाँ प्रति वर्ष चीन तथा जापानके भिन्न भिन्न भागोंसे बहुत-से विदेशी यात्री आया करते हैं।

जापानमें बहुतसे स्वास्थ्यकर स्थान बड़े शहरोंके पास ही सुन्दर दृश्योंके बीच स्थित हैं, जहाँका जलवायु भी अच्छा है और जहाँ दवा इत्यादिके सुभीते भी विद्यमान हैं। पहाड़ोंपर बहुतसे स्वास्थ्य-निवास ऐसे हैं जहाँ शान्त हुए ज्वालामुखी पहाड़ोंके सुन्दर अवशेष तथा अनेक हरेभरे स्थान देख पड़ते हैं। समुद्रके किनारेके मनोरम स्थानोंमें नाव चलाने, मछली मारने और तैरनेकी सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। ऐसे स्थान कारुइज़ावा, कामाकुरा, अतामी, नोजिरी झील, मियाजिमा, मतसुशिमा आदि हैं। आधुनिक ढङ्गके यूरोपियन होटल या बढ़िया जापानी वासे भी यहाँ स्थापित हैं।

प्रत्येक महीने या मौसिममें अलग अलग तरहके आकर्षण यहाँ विद्यमान हैं। जनवरी नये सालका महीना है और उसमें ५ दिनतक लगातार उत्सव होते रहनेके कारण बड़ा आनन्द

आता है। फरवरीमें बेरोंमें फूल लगते हैं और इसके बादसे फूलोंका समय शुरू हो जाता है। मार्चमें शफतालू और नासपाती तथा अप्रैलमें शाहदाने (चेरी) के सुहावने फूल खिलते हैं। इसी तरह मईमें अज़ेलिया, विस्टेरिया आदि फूल लगते हैं। इन फूलोंका दृश्य, जो बड़ा मनमोहक होता है, देखनेके लिए बहुतसे लोग आया जाया करते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें सारा जापान मानो हरे रङ्गके मखमलसे मढ़ जाता है। शरद् ऋतुमें मेपिलके सुनहले पत्तों तथा अन्य वृक्षोंका आकर्षण रहता है। शीत ऋतुमें यद्यपि वहाँ काफी कड़ा जाड़ा पड़ता है, फिर भी चमकती हुई सुन्दर धूप तथा निरभ्र नीले आकाशके कारण उसकी सख़्तीका उतना कटु अनुभव नहीं होने पाता।

उत्सवोंकी भरमार

लोगोंके रीतिरिवाजों तथा आचार-व्यवहारका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सवोंसे बढ़कर और कौन बढ़िया अवसर हो सकता है? जापानको हम उत्सवोंका देश ही कह सकते हैं और उसके दो एक विशेष उत्सवोंमें भारतकी आत्माके दर्शन कर सकते हैं।

नया वर्ष बड़ी खुशीका समय समझा जाता है, जब कि रङ्गबिरङ्गी सजावट की जाती है और छोटे बड़े सभी आनन्द मनाते हैं। प्रत्येक सड़क ताड़के वृक्षों और बाँसोंसे सजायी जाती है। प्रत्येक मकानको भीतर बाहरसे सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया जाता है। सब लोग अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर बाहर निकलते हैं। नूतन वर्षका उत्सव समाप्त होनेके बाद ३ मार्चको लड़कियोंका त्योहार आता है, जिस दिन गुड़ियोंका प्रदर्शन धूमधामसे किया जाता है। इसके बाद ५ मईको लड़कोंका

त्योहार आता है, जिसमें वीरोंके अनुकरणपर बनाये गये गुड्डे, एक तरहकी पतंगें और कपड़ेकी मछलियाँ देख पड़ती हैं। जुलाईमें ओ-बॉन या "लालटेनोंके भोजका उत्सव" होता है, जिसमें मृतात्माओंके सम्मानमें बहुतसे लोग मिलकर पुराने ढङ्गका नाच नाचते हैं। टोकियोके पास सुमिदा नदीपर जुलाई में जो आतिशबाजी होती है, वह इतनी मनोरञ्जक होती है कि बीसों हजार आदमी नदीके दोनों किनारोंपर खड़े होकर उसका आनन्द लेते हैं। नगारा नदीपर आयू मछली पकड़नेका दृश्य तो सचमुच ही भुलाया नहीं जा सकता। उसमें पुराने ढङ्गके कपड़े पहने हुए एक मछुआ आगे आगे चलता है और उसके अगल-बगलमें पक्षियोंके पर खोंसे हुए उसके अनुयायी चलते हैं। मछलीको भुलावेमें डालनेके लिए मछुआ अपने सामने तारकी टोकरीमें आग रखकर चलता है।

खेल-कूद और मनोरञ्जन

रङ्गमञ्चपर खेले जानेवाले पश्चिमके अनुकरणपर लिखे गये आधुनिक ढङ्गके नाटकोंके सिवा जापानमें पुराने ढङ्गके नाटक भी प्रचलित हैं, जिनमें अधिक लोकप्रिय काबुकी या प्राचीन कालके उत्तम नाटक, 'नोह' नौटङ्कीके ढङ्गका गीतरूपक और 'निंगियो शिबाई' या कठपुतलियोंके खेल हैं। काबुकी नाटकोंकी रचना यूरोपीय नाटकोंसे मिलती-जुलती है और उनमें कलाका अंश पर्याप्त मात्रामें विद्यमान रहता है। 'नोह' रूपकमें नाच, गाने और वाद्यके साथ ऐतिहासिक घटनाओंका चित्रण किया जाता है। गुड़ियोंके खेलमें गुड़ियोंके द्वारा तरह तरहकी चेष्टाएँ करायी जाती हैं, कई आदमी मिलकर एक साथ गाना गाते हैं और गानके अनुकूल बाजा भी बजता जाता है।

सिनेमा सर्वत्र पाये जाते हैं, जो पश्चिमकी तरह ही बिलकुल आधुनिक ढङ्गके होते हैं। इसके सिवा होटल, उपहार-गृह, बढ़िया नाचघर भी जहाँतहाँ देख पड़ते हैं, जिनसे अपनी अपनी रुचिके अनुसार लोग अपना मनोरंजन कर सकते हैं।

जापानका गीशानृत्य बहुत प्रसिद्ध है। यह भोज या अन्य सामाजिक उत्सव इत्यादिके समय आगत सज्जनोंके मनोरञ्जनार्थ रखा जाता है। विदेशी यात्रियोंके लिए इस तरहके सबसे प्रसिद्ध नृत्य "मियाको ओदोरी", "नानीवा ओदोरी" और "अजूमा ओदोरी" हैं, जो प्रत्येक वसन्तऋतुमें कियोतो, ओसाका तथा टोकियोमें देखे जा सकते हैं। मनोमुग्धकारी चेष्टाएँ और मञ्चकी मनोरम सजावट एक बार देख लेनेपर फिर भुलाई नहीं जा सकती। कलाओं और शिल्पोंके प्रेमियोंके लिए जापानमें संग्रहालयों, चित्रमन्दिरों, प्रदर्शनियों आदिकी कमी नहीं है। खेलोंकी भी वहाँ अच्छी व्यवस्था है। मीजी समाधि जो टोकियोमें है और कोशीन स्टेडियम जो ओसाकाके पास है, पूरबमें खेलकी सबसे बड़ी जगहोंमें गिनी जाती हैं। इनमेंसे प्रत्येकमें ६०, ६० हज़ार दर्शकोंके लिए स्थान है। मल्ल-युद्ध या सूमोका शौक़ जापानियोंको पुराने ज़मानेसे रहा है। हर साल जनवरी और मईमें पेशेवर पहलवानोंकी कुश्तियाँ हुआ करती हैं। जूडो अर्थात् एक तरहकी आत्म-रक्षाकी कलाका अभ्यास नवयुवकोंमें कसरतसे किया जाता है। गदका फरी (केंडो) का भी काफी प्रचार है। वसन्त और शरद् ऋतुमें घुड़दौड़ भी हुआ करती है। गोल्फ़का खेल भी खूब खेला जाता है। जाड़के खेलोंमें बरफ़पर खड़ाऊँ पहन कर चलने (स्केटिङ्ग और स्कीइङ्ग) का मज़ा भी लिया जा सकता है। इसके लिए प्रायः लोग उत्तर-पूर्वके प्रान्तोंमें जाया करते हैं।

कला और शिल्प

विदेशी पर्यटकोंमें जापानकी जो इतनी ख्याति है, उसका कारण वहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य तथा कलाप्रेम है। जापानमें जानेसे हर तरहकी कला या शिल्पके प्रेमियोंका सन्तोष हो सकता है। सार्वजनिक संग्रहालयों, चित्रमन्दिरों, निजी संग्रहों, बौद्ध मन्दिरों तथा देशभरमें फैली हुई शिन्तो समाधियोंमें प्राचीन कालकी अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ बिलकुल सुरक्षित अवस्थामें संगृहीत हैं। कलाकी दृष्टिसे बहुतसी महत्वपूर्ण वस्तुओंकी रक्षा वहाँ सरकारकी ओरसे 'राष्ट्रीय निधि' के तौर पर की जाती है। यात्री उन्हें देख सकते हैं। कियोतो तथा नारा इस तरहकी पुरानी वस्तुओंके संग्रहके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। कामाकुरा और निक्को तथा उनके आसपासके स्थानोंमें बहुतसे प्राचीन मन्दिर एवं समाधियाँ हैं। कला-प्रेमियोंको चाहिये कि जापान जानेपर वे टोकियो तथा नाराके इम्पीरियल म्यूज़ियम, कियोतो म्यूनिसिपल म्यूज़ियम और टोकियोस्थित मीजी समाधिके चित्र-मन्दिरको अवश्य देखें। जो आधुनिक कलाकी वस्तुएँ देखना चाहते हैं उन्हें टोकियोमें प्रत्येक शरद्-ऋतुमें होनेवाली सरकारी प्रदर्शिनी 'टीटेन' का निरीक्षण करनेसे न चूकना चाहिये।

कलाकी वस्तुओंमें वार्निशदार व तरह तरहके काँसे इत्यादि-की चीज़ें, हाथीदाँतकी खुदाईका काम, चीनी मिट्टीके बर्तन, छींटें, परदे, पंखे, छाते, पुतलियाँ इत्यादि और रेशम तथा रेशमकी बनी चीजें शामिल हैं। विदेशी यात्री इन वस्तुओंकी प्रशंसा करते नहीं थकते। ये चीज़ें उत्पन्न वस्तुओंके संग्रहालयों तथा बड़े शहरोंकी कुछ दुकानोंमें खरीदी जा सकती हैं।

टोकियो तथा अन्य नगर

जापानमें जहाँ तहाँ ऐसे बड़े नगर बसे हुए हैं जिन्हें अपने प्राचीन इतिहास और वर्त्तमान उन्नतिका अभिमान है। बृहत्तर टोकियो, जिसकी आबादी ६० लाख है, संसारका तीसरा बड़ा नगर है। १९२३ के भूकम्प और अग्निकाण्डके बाद किये गये अद्भुत पुनर्निर्माणके कारण टोकियोंकी शकल बिलकुल बदल गयी है। वह संसारमें एक बड़े भारी मधु-मक्खियोंके छत्ते जैसा देख पड़ता है जिसमें ७-७,८-८ मंज़िलोंकी अगणित इमारतें बनी हुई हैं और साफसुथरी लम्बी-चौड़ी सड़कें चारों तरफ फैली हुई हैं।

ओसाका, जो जापानका प्रधान औद्योगिक नगर है, संसारके सबसे बड़े रुईके बाज़ारोंमेंसे एक है। जापानकी पुरानी राजधानी कियोतो, जो एक हजार वर्षसे भी अधिक समयतक जापानकी सभ्यताका केन्द्र रह चुका है, विदेशी पर्यटकोंके लिए वैसा ही महत्त्वपूर्ण और पवित्र स्थान है जैसा हज करनेवालोंके लिए मक्का। यहाँपर आसपास फैले हुए हज़ारसे भी अधिक मन्दिरों और समाधियोंमें पुराने जमानेके चिह्न अब भी दृष्टिगोचर हो सकते हैं। नारा भी किसी जमानेमें जापानकी राजधानी रह चुका है। वह अपनी विशालकाय काँसेकी बनी हुई बुद्ध-प्रतिमाके कारण और जापानमें सबसे बड़े मृगोद्यानके लिए प्रसिद्ध है। प्राचीन कारीगरी तथा कलाके बहुमूल्य अवशेष भी वहाँ विद्यमान हैं। याकोहामा तथा कोबे ये दोनों बन्दर अन्तर्राष्ट्रीय जगत्में प्रसिद्ध हैं। यूरोप, अमेरिकासे आनेवाले यात्री प्रायः यहींसे जापानमें प्रवेश करते हैं। नगोया चीनी मिट्टीके कारखानोंका केन्द्र है। वह एक पुराने क़िले और अपनी व्यापारिक उन्नतिके कारण प्रसिद्ध है।

जापान जानेका मार्ग

जो भारतीय सज्जन जापान जाना चाहें, उन्हें या तो बम्बई से भारत-जापानकी यात्रा एन० वाई० के० के जहाज़से करनी चाहिये (दूसरे दर्जेके आने-जानेका किराया ४०० रुपया है) या फिर यूरोपसे आनेवाले एन० वाई० के० जहाज द्वारा कोलम्बोसे सफ़र करना चाहिये। यदि आपको समय कम हो तो इटालियन कम्पनी लायड ट्रीसटिनोके जहाज़में बम्बईसे शंघाई जा सकते हैं। वहाँसे एन० वाई० के० का एक्सप्रेस जहाज़ आपको केवल तीस घंटेमें नागासकी पहुँचा देगा। ये जहाज़ हवाई जहाज़ोंकी तरह तेज़ रफ्तारसे चलते हैं और इनमें सब तरहका सुभीता भी होता है। दूसरा दर्जा तो इनमें नहीं होता किन्तु पहले दर्जेमें भी खर्च ज्यादा नहीं पड़ता।

इन शीघ्रगामी पोतोंमें चढ़कर जापानके उत्तर समुद्रसे होकर जानेमें ऐसा मज़ा आता है कि उसे आप जीवनभर कभी नहीं भूल सकते। पासपोर्ट और चुंगी सम्बन्धी जाँच जहाज़पर ही कर ली जाती है। इससे जापानके किनारे उतरनेपर फिर और कोई झंझट नहीं रह जाती। इटलीके जहाज़ निस्सन्देह बहुत आरामदेह और तेज़ चलनेवाले होते हैं। इटालियन और जापानी दोनों ही जहाज़ोंमें यात्रियोंके आरामकी अच्छी फिक्र की जाती है। मेरा ख़याल है कि इन दोनोंको छोड़कर और किसी देशके जहाज़में यात्रा करना नासमझी है। मैं अभी तक सात देशोंके जहाज़ोंमें यात्रा कर चुका हूँ जिससे मेरा यह विश्वास हो गया है कि इटालियन तथा जापानी जहाज़ ही भारतीय यात्रियोंके लिए अधिक सुविधाजनक हैं।

प्रवासी भारतीयोंकी मेहमानदारी

कोबेमें लगभग ८०० भारतीय रहते हैं। जहाज़से उतरते ही यदि आप सीधे किसी भारतीयकी दूकानपर पहुँच जायँ तो आपको वहाँ बिलकुल घर जैसा ही प्रतीत होगा। कोबेके भारतीय व्यापारी हिन्दुस्थानके विभिन्न प्रान्तोंसे वहाँ गये हैं। उनमें सिन्धियों, गुजरातियों तथा पंजाबियोंकी संख्या ज़्यादा है। अभ्यागत भारतीयोंकी आवभगत करनेमें वे सब आपसमें होड़ सी करने लगते हैं। वहाँके भारतीय जीवनकी एक विशेषता यह है कि वहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों भारतीय भाइयोंकी तरह हिल-मिलकर रहते हैं। समय समयपर उनके जो संयुक्त सम्मेलन हुआ करते हैं, उनमें वे लोग बिना किसी पसोपेशके आपसमें खूब मिलते-जुलते और एक दूसरेके साथ बैठकर भोजन करते हैं। वहाँ भारतीय कांग्रेस कमेटीका जो दफ्तर है तथा भारतीय क्लब, भारतीय महिलाओंका क्लब, और जो कतिपय प्रान्तीय क्लब हैं, उनसे वहाँके भारतीयोंकी सरगर्मियोंका पता चलता है। महीने भरकी समुद्रयात्राके पश्चात् कोबेमें पहुँचते ही आपको तरह तरहका स्वादिष्ट भारतीय भोजन मिल सकता है। वहाँ आपसे जिस किसी भारतीयसे भेंट होगी वही 'वन्देमातरम्' कहकर आपका स्वागत करेगा, चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुसलमान, और खुद बखुद आपकी ज़रूरियातकी तरफ ध्यान देगा। कोबेके भारतीय इतनी ज़्यादा मेहमानदारी किया करते हैं कि यदि आपको उनके साथ कुछ ज़्यादा वक्त बिताना हो, तो अपनी तन्दुरुस्ती न बिगड़ने देनेके लिए आपको खास तौरसे फिक्र करनी पड़ेगी।

कोबेमें रहनेवाली भारतीय महिलाएँ बहुत ही सुसंस्कृत

तथा परम देशभक्त हैं। राष्ट्रहित और मानवहितके कामोंमें वे मुक्त हस्तसे चन्दा देती हैं। श्रीमती अली वहाँकी प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं जो प्रायः सभी भारतीय कामोंमें हिस्सा लिया करती हैं। भारतीय-महिला-क्लबकी तो वे जान ही हैं। उनका आलीशान मकान खुद स्त्रियोंके एक बड़े क्लब जैसा मालूम होता है, जहाँ आपको भारतके प्रायः सभी भागोंकी रमणियोंके दर्शन हो सकते हैं। विदेशोंमें भारतीय नारियोंका इतना अच्छा क्लब और कहीं नहीं है, सम्भवतः भारतमें भी नहीं है। सभी अवसरोंपर यहाँकी भारतीय महिलाओंने यह प्रमाणित कर दिया है कि वे किसी भी काममें पुरुषोंसे पिछड़ी हुई नहीं हैं। भारतीय होनेके नाते मुझे अपनी इन बहिनोंपर नाज़ है।

सोलहवाँ अध्याय

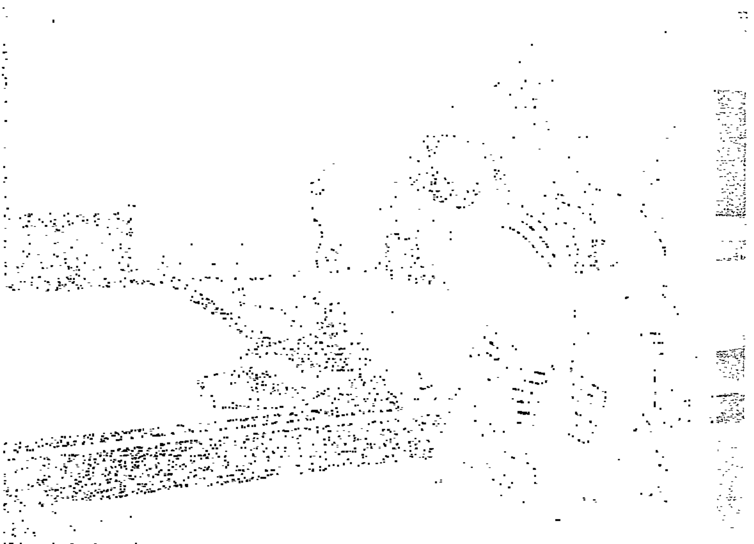
जापानका कलाप्रेम

भले ही कुछ लोग इसे मेरी संकुचित देशभक्ति समझें, पर मुझे यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि मैं जो जापानपर प्रेम करता हूँ उसका एक कारण यह है कि उसने अपने यहाँ बहुत-सी भारतीय ललित कलाओंको, उदाहरणार्थ संगीत, नृत्यकला, फूल सजानेकी विद्या इत्यादि, सुरक्षित रखा है। मैंने अनेक विद्वान् जापानियोंको यह कहते सुना है कि "अमुक अमुक कला भारतसे यहाँ आयी और हमने उसे सुरक्षित रखा है, यद्यपि स्वयं भारतमें अब वह मृतप्राय हो गयी है।"

फूलोंकी सजावट

फूलोंको सजाकर रखना जापानियोंके ललित कलाप्रेम-की एक बड़ी विशेषता मानी जाती है और बहुतसे अमेरिकन खास तौरसे इस कलाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए जापान जाया करते हैं। इसके उद्गमके सम्बन्धमें वहाँकी सरकारी गाइड-बुकमें जो कुछ लिखा है, उसपर गौर कीजिए—"फूलोंको सजानेकी कलाका उद्गम भारतमें बुद्ध भगवान्की पूजाके साथ हुआ। उनकी प्रतिमाके सामने फूल अर्पित करनेकी प्रथा थी। जापानमें इसका विकास लगभग १३०० वर्ष पूर्व प्रिंस शोतोकूके साथ हुआ। उसने अपने निजी अर्चाभवनकी बुद्ध-प्रतिमाके सामने लोगोंको पुष्प अर्पित करनेकी आज्ञा दी। चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें इस कलाने चाय-पानीकी रस्मके साथ साथ बहुत कुछ उन्नति कर ली। तोकूगावा-कालमें इसके अनुयायियोंके कई दल हो गये जो लोकप्रियता प्राप्त करनेके लिए एक दूसरेके साथ प्रतियोगिता करने लगे।

फूलोंकी सजावटमें, चाहे वह किसी दलके नियमोंके अनुसार की गयी हो, मुख्यतः तीन सिद्धान्तोंका पालन किया जाता है—प्रधान सिद्धान्त (स्वर्ग), गौण सिद्धान्त (पृथ्वी) और मध्य सिद्धान्त (मनुष्य)। फूलोंको सजानेके जिस क्रममें इन सिद्धान्तोंका पालन नहीं किया जाता, वह निरर्थक और महत्त्व-हीन समझा जाता है। यदि एक ही पौधे या एक ही शाखाका प्रयोग किया गया हो तो उसका मुख्य भाग जो ऊपरको उठा हो 'स्वर्ग', दाहिनी तरफ अंग्रेजीके वी (V) अक्षरकी तरह झुकी हुई टहनी 'मनुष्य' और बाईं तरफ सबसे नीचेकी टहनी जिसकी नोक झुकी हुई सी ऊपरकी तरफ बढ़ी हुई हो 'पृथ्वी'



फूलोंकी सजावट

की सूचक है। अक्सर इन तीनोंको सूचित करनेके लिए पृथक् पृथक् तीन पौधों या तीन शाखाओंका प्रयोग किया जाता है। फूल सजाते समय स्थान, समय और कैसे फूल हैं, इन बातोंका भी विचार करना पड़ता है।

ताक इत्यादिको फूलोंसे सजाते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि उनकी वजहसे लटकती हुई तसवीर ढँकने न पावे। यदि तसवीरमें पहाड़ी दृश्य अङ्कित हो तो सजावटमें ऐसे फूलोंको चुनना चाहिये जो दलदलमें या नदियोंके किनारे उत्पन्न होते हैं, किन्तु यदि तसवीरमें पुष्पित पौधे दिखाये गये हों तो गमलों इत्यादिमें फूलदार शाखाएँ सजानी चाहिये।

विवाहसे सम्बन्ध रखनेवाले भोजके समय फूल इस तरह सजाये जाते हैं जिसमें वे बिलकुल स्वाभाविक मालूम पड़ें। चीड़, बाँस और बेर—जो स्थायित्व, समृद्धि तथा पवित्रताके सूचक माने जाते हैं—ऐसे अवसरोंके लिए अत्यन्त शुभावह समझे जाते हैं। शीघ्र ही झड़ जानेवाले फूल इन अवसरोंपर नहीं सजाये जाते।

इस कलाका अध्ययन शुरू करनेवालोंको पहले 'हारान' पुष्पका सजाना सिखाया जाता है और उनकी शिक्षा उस समय पूर्ण समझी जाती है जब उन्हें उन फूलोंको सजानेकी विद्याका रहस्य बता दिया जाता है जिनको खूबसूरतीके साथ सजाना बहुत कठिन माना जाता है।

धूप-दान

धूपदान ('कोदो') या सुगन्धित द्रव्यविशेषको जलानेका आशय ऊँचे दर्जेकी प्राणशक्ति उत्पन्न कर मानसिक शान्ति

प्रदान करता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि चाय-पानीकी रस्म और फूल सजानेकी कला क्रमशः स्वाद तथा दृष्टिका आनन्द प्रदान कर मनको प्रसन्न करती हैं। पुराने ज़मानेमें कुलीनवर्गमें इसका खूब प्रचलन था। यद्यपि बादमें इसका प्रचार बहुत कम हो गया, फिर भी ऊँची श्रेणीके लोगोंमें अब भी इसके हिमायती पाये जाते हैं। चानोयू (चाय-पानीकी रस्म) की तरह इसमें भी कुछ बँधे हुए तरीक़े प्रचलित हैं। इस कलाका उद्गम भी भारतसे ही माना जाता है, जहाँसे यह पहले चीनमें गयी और फिर चीनसे जापान पहुँची।

इतिहाससे पता चलता है कि एक सुगन्धित लकड़ीका टुकड़ा, जो कोबेके पास आवाजी द्वीपके किनारे फेंका हुआ पाया गया था, सम्राज्ञी सुईको (छठीं शताब्दी) के सामने नज़र किया गया था। सम्राज्ञीने उसे नाराके तोदाईजी मन्दिरको प्रदान कर दिया था। आठवीं शताब्दीमें सम्राट् शोमूके पास भी मध्य एशियासे कोई सुगन्धित धूप भेजा गया था। वह भी उसी तरह तोदाईजीके मन्दिरको दे दिया गया था। इसके बाद और भी कई तरहके धूप मध्य एशिया, कोरिया और चीनसे जापान भेजे गये किन्तु दसवीं शताब्दीमें कई चीज़ोंके मेलसे बना हुआ जो धूप चीनसे लाया जाकर जापानमें प्रचलित हुआ, उसीसे वहाँ धूप जलानेकी वर्त्तमान प्रथाकी नींव पड़ी।

इसमें सन्देह नहीं कि धूप जलानेकी प्रथा बौद्धधर्मके साथ ही प्रचलित हुई, फिर भी १५ वीं शताब्दीमें उसका प्रयोग अधार्मिक कामों तथा दिमाग़को तरोताज़ा करनेके लिए भी होने लगा और आज भी जापानमें प्रायः इसी उद्देश्यसे इसका प्रयोग किया जाता है। जब कोई मेहमान आनेवाला होता है तो इससे कमरेकी हवा सुगन्धित कर दी जाती है। इसी तरह

पहननेसे पहले इससे कपड़े सुगन्धित कर दिये जाते हैं। लड़ाई-के वक्त योद्धागण कूच करनेके पहले इस खयालसे अपने शिर-स्त्राणोंमें धूप दे दिया करते थे कि दैवात् उनकी मृत्यु हो जाय तो उनके शवसे दुर्गन्ध न फैलने पावे। मन-बहलावके लिए कभी कभी इसका प्रयोग घ्राणशक्तिकी परीक्षा लेनेके निमित्त किया जाता है। धूप जलानेका काम प्रायः मेहमानके सिपुर्द रहता है। मेहमान लोग उसके इर्दगिर्द अर्द्धवृत्त बनाकर बैठते हैं। कभी कभी सब लोग दोनों तरफ दो कतारें बनाकर बैठते हैं। तसला जैसे एकपात्रमें जलता हुआ सुगन्धित द्रव्य रखकर बारी बारी से सबके पास घुमा दिया जाता है। मेहमानोंमेंसे प्रत्येकको यह बताना पड़ता है कि सुगन्धित धुँआ किस चीज़का है। एक कागज़पर सबके उत्तर लिख लिये जाते हैं, जिनपर सबकी बारी समाप्त होनेके बाद विचार किया जाता है। कहते हैं, पुराने ज़मानेमें जब अमीर-उमराकी तरफसे ऐसे जलसे किये जाते थे, तब वीरोंको तलवारें तथा कवच इनाममें दिये जाते थे।

चाय-पानीकी रस्म

'चा-नो-यू' या चाय-पानीकी रस्मका प्रचार जापानके शिष्ट लोगोंमें खूब है। वे उसे मानसिक स्वास्थ्य तथा ज्ञानवृद्धिका साधन समझते हैं। शुरू शुरूमें चायका प्रयोग अधिकांशमें दवाके तौरपर ही होता था, पेयके रूपमें नहीं। चायके पौधेका मूल उत्पत्ति-स्थान दक्षिण चीन है। चीनके वनस्पति-शास्त्रियों तथा चिकित्सकोंको बहुत प्राचीन कालसे ही उसका पता था। थकावट दूर करने, चित्त प्रसन्न करने, संकल्पको दृढ़ बनाने तथा देखनेकी शक्ति ठीक करनेकी क्षमता रखनेके कारण इसकी बड़ी कद्र की जाती थी। ताओ मतके माननेवाले समझते थे कि

इसमें अमृत मिला रहता है। बौद्धधर्मवाले बहुत देरतक ध्यान लगानेका प्रयत्न करते समय उँघाई दूर करनेके लिए इसका प्रयोग करते थे। बौद्धोंके ज़ेन सम्प्रदायवालोंने चायके साथ एक लम्बी चौड़ी रस्मकी नींव डाली। बोधिधर्मकी प्रतिमाके सामने भिक्षुगण इकट्ठे होते थे और एक पवित्र रस्मके तौरपर एक ही घड़ेमेंसे चाय पीते थे। ज़ेन सम्प्रदायकी इस प्रथाने ही १५ वीं शताब्दीमें जापानकी चाय-पानीकी रस्मका रूप धारण किया, अस्तु।

चायके कमरे (सूकिया) में ये चार हिस्से होते हैं—एक चाय पीनेका कमरा, जिसमें पाँच आदमियोंसे ज्यादाके बैठनेकी जगह नहीं रहती; पीछेकी तरफ एक छोटीसी कोठरी (मिज़ूया) जिसमें बर्त्तन धो-धाकर सजाये जाते हैं; एक खुला हुआ बाहरी बरामदा (योरित्सुकी) जिसमें मेहमान लोग तबतक ठहरते हैं जबतक उनसे कमरेके भीतर प्रवेश करनेकी प्रार्थना नहीं की जाती; और एक सङ्कीर्ण पथ (रोजी) जो बाहरी बरामदेको चायके कमरेसे मिलाता है। चायका खास कमरा प्रायः ९ फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा होता है। उसमें प्रवेश करनेको मेज़बानके लिए एक खास दरवाज़ा होता है और मेहमानोंके लिए दूसरा, जो इतना छोटा होता है कि उन्हें, चाहे वे किसी श्रेणीके हों, बहुत झुक कर ही उसमेंसे होकर भीतर जाना पड़ता है। इसका अभिप्राय उनके भीतर नम्रताका भाव प्रविष्ट करानेका है। जिन्हें इस रस्मसे कोई वाकफियत नहीं, उनके मनमें चायके कमरेका बाह्य रूप तथा उसका भीतरी दृश्य देख कर बड़ी निराशा होगी। उसकी सादगी और पवित्रता ज़ेन मठके आदर्शके अनुरूप हैं, जिनके कारण वह बाह्य जगत्‌की परेशानीसे बचा रहता है। कमरेमें साढ़े चार चटाइयाँ बिछायी



चायपानीकी रस्म

जाती हैं। आधी चटाई कमरेके बीचमें बिछी रहती है। इसके एक कोनेपर ज़मीनमें चौकोर दमकला जैसा चूल्हा बैठाया रहता है, जिसपर लोहेकी देगची चढ़ी रहती है। उसीके पास चाय तैयार करनेके बर्त्तन लेकर मेज़बान बैठता है। बर्त्तन प्रायः यही रहते हैं—चाय रखनेका बर्त्तन, चायका डब्बा, चाय चलानेका बुरुश, बाँसका बना चम्मच, इत्यादि। ये पात्र कलाकी दृष्टिसे बहुमूल्य होते हैं और चाय सामने रखी जानेके बाद मेहमानोंको इस बातका अधिकार दे दिया जाता है कि वे बारीकीके साथ बर्त्तनोंका निरीक्षण कर सकें।

चाय-पानीकी रस्म समय और ऋतुके अनुसार कई तरहसे की जाती है। इसी तरह मेज़बान जिस मतका माननेवाला हो उसके अनुसार ही चाय-पानीकी रस्मका रूप बदलता रहता है। भिन्न भिन्न मत माननेवाले मेज़बानोंके चायके बर्त्तन भी अलग अलग तरहके होते हैं। चायकी बुकनीसे बनी हुई चाय बिना निमन्त्रणके भी अकसर यों ही पिलायी जाती है और उसके साथ भोजन देना या न देना मेज़बानकी इच्छा पर निर्भर रहता है। चायकी रस्मके बहुत प्रचलित तरीक़ेका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

अतिथिगण, जो संख्यामें पाँच होते हैं, एकके बाद एक बरामदेमें इकट्ठे होते हैं, जिसमें प्रायः तीन चटाइयाँ बिछी रहती हैं। उनसे आशा की जाती है कि वे यहाँ बैठकर उन सब चीज़ोंकी प्रशंसा करें जो वहाँ आकर्षक रूपसे सजायी गयी हों। उनके सम्बन्धमें उदासीन रहना अक्षम्य अपराध समझा जाता है। मेज़बान जो चीज़ें अपने अतिथियोंको दिखलावे, उनके सम्बन्धमें वे लोग यदि कोई दिलचस्पी प्रकट न करें तो इससे उसे बड़ी निराशा होती है। समय होते ही मेज़बान

उनके पास आता है और उन्हें झुककर प्रणाम करता है। इसके बाद बिना और कुछ कहे सुने वह उल्टे पाँव वापस चला जाता है। इस मूक अभिवादनका यह मतलब समझा जाता है कि मेज़बान अब चायके कमरेमें अतिथियोंका स्वागत करनेको तैयार है। अतिथियोंमें जो व्यक्ति नेतृत्व करनेके क़ाबिल होता है, वही जुलूसके आगे आगे चलकर चायके कमरेको जाता है और तबतक नेतृत्वकी ज़िम्मेदारी ग्रहण किये रहता है जबतक रस्म समाप्त नहीं हो जाती अर्थात् लगभग चार घण्टे तक। चायके कमरेतक पहुँचनेके लिए अतिथियोंको एक उद्यान-पथ से होकर चलना पड़ता है, जो कुल पचीस फ़ुट ही लम्बा होता है, पर जो इस तरह बनाया जाता है कि बाहरी दुनियासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता और जिसपर चलनेसे उस मानसिक शक्तिको प्राप्त करनेमें सहायता मिलती है जिसका होना चायकी रस्मकी पूरी पूरी क़द्र करनेके लिए ज़रूरी है। शिलाएँ, वृक्ष, लालटेनें इत्यादि इस तरह चतुरताके साथ यथास्थान रखी जाती हैं जिससे प्रकृति और कलाके सम्मिश्रण द्वारा एक सुहावना दृश्य उपस्थित हो सके। चायके कमरेमें प्रवेश करनेके पहले अतिथिगण एक स्थानपर रखे हुए पत्थरके बर्त्तनमेंसे पानी लेकर हाथ धोते हैं और कुल्ला कर मुँह साफ़ कर लेते हैं। इस कार्यको अतिथियोंका नेता ही सबसे पहले शुरू करता है और कमरेमें सबसे पहले प्रवेश भी वही करता है।

कमरेमें अतिथियोंके लिए पृथक्-पृथक् स्थान पहलेसे ही निर्धारित रहता है। वे बारी बारीसे चटाईपर घुटने टेक कर बैठ जाते हैं और सामने लटकती हुई तसवीरपर सम्मान भरी दृष्टि डालते हैं। प्रशंसाके योग्य दूसरी चीज़ वह छोटीसी धूपदानी है जो बगलमें ही एक शेल्फ़पर रखी रहती है। जब

उसमेंका धूप अतिथियोंके सम्मानार्थ दमचूल्हेमें छोड़ दिया जाता है, तब अतिथियोंका नेता नज़दीकसे उसका निरीक्षण कर सकनेका गौरव प्राप्त करनेकी इच्छासे मेज़बानकी इजाज़त माँगता है। जब धूपदानी चटाईपर रखी जाती है या निरीक्षणके लिए हाथमें ली जाती है, तब बचावके लिए रेशमका एक वर्गाकार टुकड़ा जिसे फूसा कहते हैं हमेशा नीचे रख लिया जाता है। इसके बाद एक तरहका जलपान, जिसे काईसेकी कहते हैं और जो बड़ी सावधानीसे तैयार किया जाता है, अतिथियोंके सामने लाया जाता है। साधारण जापानी भोजनकी तरह इसमें बहुत सी चीजें नहीं परोसी जातीं और शिष्टाचारका तक़ाज़ा है कि खानेकी जो चीज़ सामने रखी जाय उसे मेहमान छोड़ कर न उठें। इस जलपानकी एक विशेषता यह भी है कि मेज़बानको प्रत्येक वस्तु खुद उठकर लानी पड़ती है। जबतक खाना-पीना चलता रहता है तबतक चाय-पानीके कमरेमें कोई भी बाहरी आदमी प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा होनेसे उस अवसरकी शान्ति और स्वस्थतामें बाधा पड़नेकी सम्भावना रहती है। यद्यपि मेज़बान वहाँ बराबर आता जाता रहता है, फिर भी वह भोजन करनेमें अतिथियोंका साथ नहीं देता। भोजन किस तरह किया जाय इस सम्बन्धमें लम्बे-चौड़े नियम बने हुए हैं। भोजन समाप्त होनेपर अतिथिगण खाली तश्तरियों और प्यालोंको बड़ी बड़ी रकाबियोंपर रख देते हैं और मेज़बान एक एक कर उन्हें उठाकर बगलके कमरेमें रख देता है। मिठाई परोस दी जानेके बाद इस रस्मका पहला हिस्सा समाप्त हो जाता है और तब मेज़बानके कहनेसे अतिथिगण ठहरनेके कमरेमें जाकर विश्राम करते हैं। इसे बीचका विश्राम (नाकाटची) कहते हैं।

दूसरा हिस्सा ही वस्तुतः चाय-पानीकी रस्म है। धीरे धीरे पाँच या सात बार घण्टा बजने पर या चायके कमरेके पास ही लटके हुए मोटे तख्तेपर आघात होने पर अतिथिगण पुनः चाय-के कमरेमें जानेकी तैयारी करते हैं। घण्टेकी आवाज़का यह आशय समझा जाता है कि मेज़बान अब गाढ़ी चाय (कोइन्चा) परोसनेके लिए प्रस्तुत है। हाथ-मुँह धोनेका शिष्टाचार फिरसे दुहराया जाता है और मेहमान लोग उसी क्रमसे कमरेमें प्रवेश करते हैं जिस क्रमसे वे पहली बार घुसे थे। भीतर प्रवेश करनेपर वे देखते हैं कि लटकती हुई तस्वीर वहाँसे हटा दी गयी है और उसके बजाय ताकमें फूल सजा दिये गये हैं। कोइन्चा चायकी बुकनीसे तैयार की जाती है। दो तीन चम्मच चाय वर्तनमें डाल दी जाती है और ऊपरसे गरम पानी छोड़ दिया जाता है। इसके बाद बाँसकी डण्डीसे वह खूब अच्छी तरहसे हिला दी जाती है, यहाँ तक कि उसके ऊपर झागसा झलकने लगता है। जब चाय तैयार हो जाती है, तब मेज़बान चायके वर्तनको अतिथियोंके नेताके सम्मुख रख देता है। वह अपने अन्य साथियोंकी तरफ़ ज़रा सिर झुकाकर बायें हाथकी हथेलीपर रखकर उसे दाहिने हाथसे थाम लेता है। फिर उसमेंसे एक घूँट पी लेता है और उसके बढ़िया स्वाद तथा यथोचित मिलावट इत्यादिके लिए मेज़बानको बधाई देकर दो तीन घूँट और पीकर उसे दूसरे मेहमानकी तरफ बढ़ा देता है। इसी प्रकार बारी बारीसे वह बर्त्तन सब मेहमानोंके पास घुमा दिया जाता है और सब लोग उसी तरह उसका आस्वादन करते हैं। नेताको चाहिए कि वह मेजबानसे चायके बर्त्तनका बारीकीसे निरीक्षण करनेका विशेषाधिकार प्रदान करनेकी प्रार्थना करनेसे न चूके। उस बर्त्तनको इतना ऊँचा न उठाना

चाहिए कि हाथसे गिरकर फूट जाय। जब चायका बर्त्तन आखिरी मेहमानके पास पहुँच जाता है तब वह उसे अपने नेता-के पास लौटा देता है, जो उसे मेज़बानको वापस कर देता है। चायका डब्बा और चम्मच भी निरीक्षणके लिए क्रम क्रमसे अतिथियोंके पास घुमाये जाते हैं और तब यह रस्म पूरी होती है।

इसके बाद प्रायः पतली चाय (ऊसूचा) परोसी जाती है। यह या तो उसी कमरेमें या किसी दूसरे कमरेमें पिलायी जाती है। चाय पीनेके लिए प्रायः दो प्याले रखे जाते हैं। प्रत्येक मेहमानसे यह आशा की जाती है कि वह चाय पीकर प्याला बिलकुल खाली कर देगा। इसके बाद वह उसे मेज़बानको लौटा देता है, जो उसे पानीसे धोकर उसीमें दूसरेके लिए चाय तैयार कर देता है। बाहरी बरामदेमें इकट्ठे होनेके बादसे इस समय-तक चार घण्टे बीत चुकते हैं, फिर भी अतिथिगण न तो थकावटका अनुभव करते हैं और न उनका जी ही ऊबता है। वे एक दूसरेसे अपरिचित नहीं होते। मनोरञ्जन और हेलमेल-का वातावरण उत्पन्न करनेकी गरजसे मेज़बान अतिथियोंके चुनावमें बड़ी सावधानीसे काम लेता है। अन्तमें मेज़बानको नमस्कार कर अतिथिगण वहाँसे विदा हो जाते हैं। इसके बाद एक शिष्टाचार और रह जाता है। वह यह कि दूसरे दिन अतिथिगण खुद जाकर या चिट्ठी भेजकर मेज़बानको धन्यवाद दें।

चाय पीनेकी इस रस्मका उद्गम भारतसे हुआ, यह कहना तो कठिन है, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह शुद्ध चीनी प्रथा थी, फिर भी इसमें कुछ भारतीयता है यह मान लेनेमें किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। गत वर्ष जब मैंने

शिकागोमें पहले पहल जापानी चाय-पानीकी रस्म देखी तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह अपने यहाँकी श्राद्ध-प्रथासे मिलती जुलती हो, अस्तु।

सत्रहवाँ अध्याय

पाँच सौ मज़हबोंका देश

संसारमें आज जापान ही एक देश है जहाँ हम धार्मिक सहिष्णुताका जीवित चित्र देख सकते हैं। एक ही मकानमें वहाँ ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, शिन्तो धर्म और कम्यूनिज़्म (समष्टिवाद) के अनुयायी एक ही कुटुम्बके सदस्योंकी हैसियतसे रहते हैं और वे अपने मज़हबी ख़यालातको इतना तूल नहीं देते जितना हम लोग देते हैं। जापानमें मज़हबी झगड़ोंकी बात हम कभी नहीं सुनते। मुझसे लोग अकसर पूछा करते हैं कि भारतवर्षमें मज़हबी बातोंमें उत्साह दिखलानेवाले व्यक्ति जापानवालोंका अनुसरण क्यों नहीं करते? इसका उत्तर मुझे यही देना पड़ता है, "इसलिए कि जुदा जुदा मज़हबों और फ़िरक़ोंके स्वयं-भू नेता धर्मकी आड़में अपना ही उल्लू सीधा करनेकी फ़िक्रमें रहते हैं और इस कार्यमें उन्हें ब्रिटिश सरकारकी सहायता तथा संरक्षण भी प्राप्त है और इसलिए भी कि सर्वसाधारणको अभी इस बातका अच्छी तरह ज्ञान नहीं हुआ है कि उनके तथाकथित धार्मिक नेता देशके प्रधान शत्रु हैं।" यदि आप मुझसे एक शब्दमें इस प्रश्नका उत्तर पूछें कि जापानवालोंका मज़हब क्या है, तो मैं यही उत्तर दूँगा कि "देशभक्ति"।

जो व्यक्ति जापानमें थोड़ा समय भी बिता चुका है वह आपको बतलायेगा कि जापानियोंके लिए देशभक्ति एक भावना मात्र नहीं है, जैसा कि भारतमें है, बल्कि यह उनका राष्ट्रीय धर्म है जिसका अनुसरण वहांके सब लोग करते हैं, चाहे वे किसी कठोरपन्थी सम्प्रदायके क्यों न हों। वहांके बौद्ध, ईसाई या शिन्तो मतके माननेवाले, सभी देशको प्यार करते हैं और मातृभूमिके लिए हमेशा अपने प्राण देनेको तैयार रहते हैं।

कठोरपन्थी मज़हबों और उनके फ़िरक़ोंकी बढ़ती हुई संख्याके सम्बन्धमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब यह संख्या पाँच सौ तक जा पहुँची है और उसमें बराबर वृद्धि हो रही है।

इधर कुछ दिनोंसे जापानवालोंके धार्मिक विश्वासोंमें आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। भिन्न भिन्न ज़िलोंमें नई धार्मिक संस्थाओंकी उत्पत्ति इतनी तेज़ीके साथ हो रही है कि शिक्षा-विभागकी धार्मिक समितिको प्राप्त रिपोर्टोंसे पता चलता है कि इन नये पन्थोंकी औसत वृद्धि हफ्तेमें एकके हिसाबसे हो रही है। स्थानीय अधिकारियोंने इस घटनाकी जाँच करनेका जो प्रयत्न किया है, उससे मालूम होता है कि आर्थिक संकटमें पड़कर जनता नयी नयी आश्चर्यजनक बातोंकी उत्पत्तिमें ज्यादा आसानीसे विश्वास करने लगती है और पढ़े-लिखे लोग भी वर्त्तमान धर्मोंसे सन्तुष्ट न होकर नये नये धार्मिक विश्वासोंकी ओर प्रेरित हो रहे हैं। इसी तरह जो जापानी सैनिक मंचूरियाके युद्धमें बिना आहत हुए सकुशल लौट आये, उनको सहज ही यह विश्वास हो गया कि किसी देवताके प्रसाद अथवा धार्मिक प्रभावसे ही उनकी रक्षा हो सकी है।

मज़हबोंकी "लिमिटेड कम्पनियाँ"

इस समय वहाँ पाँच सौ अर्द्ध-धार्मिक संस्थाएँ है, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। इनमेंसे कुछके सदस्योंकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। अनुयायीगण अपनी पूजाके स्थानोंको जो आर्थिक सहायता देते हैं उसकी मात्रा काफ़ी बढ़ गयी है, यहाँ तक कि कुछ धार्मिक संस्थाएँ प्रधानतया रुपया पैदा करनेकी गरज़से ही सङ्गठित की गयी हैं। कमसे कम ७ ऐसी हैं जो लिमिटेड कम्पनीकी तरह चल रही हैं। इन अर्द्ध-धार्मिक संस्थाओंके नियन्त्रणकी पर्याप्त व्यवस्था वर्त्तमान दण्डविधानमें न होनेके कारण शिक्षामें भी श्री मत्सूदाने धार्मिक बिलमें ऐसी धाराएँ जोड़ देनेका प्रयत्न किया है जिनकी सहायतासे उनपर नियंत्रण रखना अधिक सम्भव हो सके।

संक्षिप्त इतिहास

शुरू शुरूमें जापानियोंका धर्म असङ्गठित रूपसे प्रकृतिकी और प्रेतात्माओंकी पूजा करना ही था। इतिहासका प्रारम्भ होते होते यह महापुरुषों और पूर्वजोंकी पूजाके रूपमें परिणत होने लगी, जिसमें प्रकृतिकी उपासनाकी झलक भी विद्यमान थी और इसका नाम शिन्तोमत पड़ा। ईसाकी तीसरी शताब्दीसे जब यहाँ धीरे धीरे चीनी सभ्यताका असर पड़ने लगा और छठी शताब्दीसे बौद्ध तथा कन्फ्यूशियन मतका प्रभाव फैलने लगा, तब भारत, जापान तथा कोरियाकी तत्कालीन संस्कृतिसे भी नये विचार यहाँवाले ग्रहण करने लगे।

बौद्ध-धर्मका प्रभाव

कलाओं तथा साहित्यको प्रोत्साहन देकर और उच्चतर आदर्शोंकी प्रेरणा उत्पन्न कर बौद्ध-धर्मने जापानी संस्कृतिके

विकासमें विशेष सहायता प्रदान की है। इस नूतन धर्मने कलाओं तथा विज्ञान और साहित्य तथा दर्शनको भी अपने प्रचारका साधन बनाया। इसने इतनी शीघ्रतासे उन्नति करनी शुरू की कि सातवीं शताब्दीके भीतर भीतर प्रायः सारा देश बौद्ध-धर्ममें परिणत हो गया।

आठवीं तथा नवीं शताब्दीका अन्त होते होते देशमें राष्ट्रीय एकता और केन्द्रीय सरकारकी स्थापना हो जाने पर बौद्धोंके महन्तवर्ग और सरकारी कर्मचारियोंकी अन्योन्य सहकारिता बादकी तीन शताब्दियोंके सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवनकी मुख्य विशेषता बन गयी। लोगोंकी भावनाओंपर बौद्ध धर्मसे प्राप्त प्रेरणाकी गहरी छाप दृष्टिगोचर होने लगी। इसीसे हम ललित कलाओं तथा साहित्यकी उन्नतिका प्रारम्भ दसवीं शताब्दीसे मान सकते हैं।

तेरहवीं शताब्दी जापानके इतिहासमें एक विशेष महत्त्वपूर्ण युगकी प्रवर्त्तक समझी जानी चाहिए। उस समय जो राजनीतिक और सामाजिक परिवर्त्तन देशमें हुए, उनके अतिरिक्त सर्वसाधारणकी आध्यात्मिक आवश्यकताके अनुकूल बौद्ध-धर्ममें भी नये नये स्वरूपोंका आविर्भाव होता गया। राष्ट्रकी नीतिसे बौद्ध-धर्मका कोई सम्बन्ध न रह गया। वह व्यक्तिगत धार्मिक भावनाका प्रश्न रह गया। उस समयकी युद्ध-प्रवृत्तिका असर धर्मपर भी पड़ा और धार्मिक शिक्षा देनेवाले शिक्षकोंके साथ साथ धर्मके सैनिक नेता भी उत्पन्न होते रहे।

चौदहवीं शताब्दीमें राजनीतिक क्रान्ति तथा गृह-युद्ध हुए जिससे राजवंश कई भागोंमें विभक्त हो गया। इस सङ्कटके कारण राष्ट्रीय शिन्तो-मतके पुनरुद्धारमें सहायता मिली। इसका समर्थन करनेवाले कुछ देशभक्तोंने उस समय जापानमें

प्रचलित सब नैतिक विचारों और धार्मिक शिक्षाओंको सम्राट्के प्रति आदर-भक्तिकी भावनापर केन्द्रीभूत करनेकी चेष्टा की। किन्तु समयका प्रवाह इन देशभक्तोंके अनुकूल न था और नैतिक अधःपात तथा सामाजिक फूटके चिह्न अधिकाधिक स्पष्ट होने लगे। सामन्तोंकी लड़ाइयोंके साथ साथ धार्मिक झगड़े भी होने लगे। यह गड़बड़ी लगभग दो सौ वर्ष अर्थात् सोलहवीं शताब्दीके मध्यतक जारी रही। पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्यमें जैजुइट पादरियोंके आ जानेसे इसको अधिक प्रेरणा मिली, क्योंकि उन लोगोंने ज़ोरोंसे अपने विचारोंको फैलानेका प्रयत्न किया और जिन्हें वे अपने मतमें दीक्षित करते थे उनके ऊपर घोर अत्याचार करते थे।

सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें जब फिर देशमें शान्ति और राजनीतिक एकताकी स्थापना हुई, तब इन कैथलिक पादरियों-का प्रचार-कार्य बन्द कर दिया गया और विदेशियोंसे कोई सम्पर्क न रखनेकी नीति अख्तियार की गयी। परिणाम यह हुआ कि बादकी तीन शताब्दियोंमें राष्ट्रके राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक जीवनपर इस नीतिका गहरा प्रभाव पड़ा। अब बौद्ध-धर्म ईसाई-धर्मके प्रचारको रोकनेका उपयोगी साधन बन गया और उसे कई विशेषाधिकार प्राप्त हो गये। बौद्ध भिक्षु तथा महन्तवर्ग आराम और चैनकी जिन्दगी बिताने लगा।

सन् १८५९ में विदेशियोंके सम्बन्धकी रुकावट हटा ली गयी और उनसे पुनः सम्पर्क स्थापित होने लगा। १८६८ में शासनकी बागडोर फिर सम्राट्के हाथमें चली गयी। इसके बाद सन् १८८९ में जो शासन-विधान बना, उसके अनुसार लोगोंको विचारोंकी स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी।

जापानके धार्मिक तथा नैतिक इतिहाससे पता चलता है कि वहाँ विभिन्न शक्तियोंका एक दूसरेपर खूब प्रभाव पड़ता रहा। पारस्परिक विरोधके बजाय यह उनके सम्मिश्रणमें अधिक दृष्टिगोचर होता है। जापानमें जिन तीन धर्मों तथा नीति-पद्धतियोंकी स्थापना हुई, उनकी तुलना हम वृक्षकी जड़, डण्ठल और शाखाओं तथा फल-फूलसे कर सकते हैं। शिन्तो-धर्मको हम सर्वसाधारणके शील तथा राष्ट्रीय परम्पराकी ज़मीनके भीतर घुसी हुई जड़ समझ सकते हैं। कनफ्यूशियन मत ही उसकी शाखाएँ हैं, जो क़ानूनी संस्थाओं, नीतिकी धाराओं तथा शिक्षापद्धतियोंके रूपमें चारों ओर फैली हुई हैं। इसी तरह बौद्ध-धर्मको हम धार्मिक भावना रूपी फूल तथा आध्यात्मिक जीवन रूपी फल मान सकते हैं।

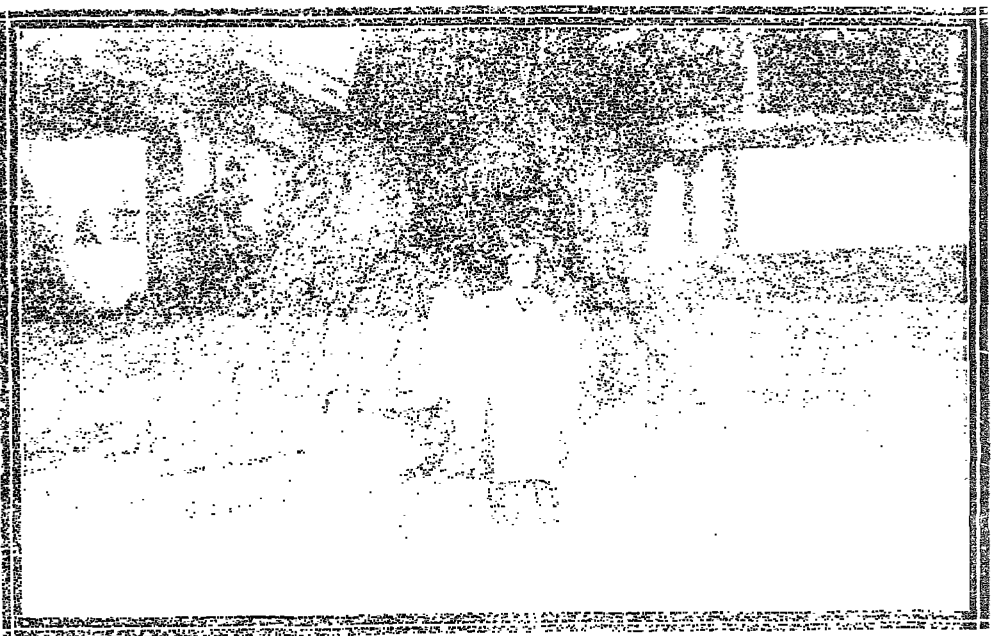
सनातनधर्मकी झलक

जापानमें हम अपने यहाँके सनातनधर्मकी झलक देख सकते हैं। शिन्तोधर्म आजकलके सनातनधर्म (अर्थात् पौराणिक मत) और प्रकृति-पूजाकी प्राचीन आर्य परिपाटीका ही सम्मिश्रण है। जापानमें हमारे यहाँके तीन दर्जन शङ्कराचार्यों और उन कट्टरपन्थी पण्डितोंके लिए विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ है जो महात्मा गांधीसे इसलिए चिढ़ गये हैं कि उन्होंने छूआछूतके अभिशापको उठा देनेका आन्दोलन चलाया। यदि धर्मके ये ठेकेदार जापान जानेका कष्ट उठाना स्वीकार करें तो जापानका चमत्कारप्रिय समाज अवश्य ही उनका हार्दिक स्वागत करेगा। समुद्रपार जानेमें अब उन्हें कोई धार्मिक आपत्ति भी न होनी चाहिये, क्योंकि उनके नेता स्वर्गीय श्री एम. के. आचार्यने भारत मंत्रीके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करनेके हेतु लन्दन

जाकर उनके लिए रास्ता खोल ही दिया है। अतः जापानमें आज भी जिन आठ सौ हिन्दू देवताओंकी पूजा-प्रतिष्ठा प्रचलित है, उनके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए उनके अन्य भाइयों-को क्यों न वहाँकी यात्रा करनी चाहिये ?

पाठकोंको किसी तरहका भ्रम न हो, इसलिए मैं कह देना चाहता हूँ कि मुझे मन्दिरों तथा समाधियोंसे बहुत प्रेम है (यद्यपि मैं मूर्तिपूजामें विश्वास नहीं करता) और मैंने कियोतो, निक्को तथा अन्य स्थानोंके मन्दिरोंमें घण्टों बैठकर अद्वितीय मानसिक शान्तिका अनुभव किया है। जापानके मन्दिर सुन्दर प्राकृतिक दृश्योंके बीच—पेड़ोंके सुहावने झुरमुटोंके मध्यमें, पहाड़ियोंके ऊपर तथा नदियों और झीलोंके किनारे—बने हुए हैं। चित्तको एकाग्र करनेमें उनसे बड़ी सहायता मिलती है। हाँ, तो मैं शिन्तो धर्मकी बात कह रहा था।

शिन्तो मत वहाँवालोंका अपना धर्म है, जिसमें प्रकृतिके साथ पूर्वजोंकी पूजाका भी समावेश है। 'अस्सी लाख देवताओं' के समूहमें प्रमुख स्थान सूर्यदेवीको प्राप्त है। जापानके राजवंशका जन्म इसी देवीसे हुआ था, जिसकी श्रृङ्खला आज हजारों वर्षसे अक्षुण्ण बनी हुई है। यद्यपि वहाँके देववृन्दमें बहुतसे प्राकृतिक देवता तथा समुद्र, नदी, वायु, अग्नि, पहाड़ आदिकी अधि-ष्ठात्री देवियाँ, अनेक सुप्रसिद्ध योद्धा और राजघरानेके राजभक्त अनुयायी भी शामिल हैं तथापि शिन्तो धर्म राजवंशकी प्रथम प्रवर्त्तिका देवी तथा उसके सम्बन्धियों और वंशजोंकी पूजाका ही सूचक है। जापानियोंके हृदय तथा मनको, जापान-सम्राट्के प्रति अपनी प्रगाढ़भक्ति प्रदर्शित करनेके लिए राजसिंहासनके चारों तरफ केन्द्रीभूत करनेमें इसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है।



जापानकी देवदासियाँ

इस धर्ममें पूजाका अर्थ होता है नमन, नैवेद्य और प्रार्थना। नैवेद्यमें मुख्यतः भोजन तथा पेय शामिल है। पहले इसके साथ वस्त्र भी अर्पित करनेकी चाल थी किन्तु बादमें यह प्रथा चल पड़ी कि कागज़के छोटे छोटे टुकड़ोंको कपड़ेके प्रतीक मानकर एक डण्डेमें लगाकर वेदीपर रखने लगे।

पूजाके पहले पवित्रताका ख़याल रखना ज़रूरी है। इसके लिए तीन तरीक़े बतलाये गये हैं—मन्त्रोच्चारण (हराई), अभिषेक (स्नानादि कर्म, मिसोगी) तथा मनोनिग्रह (इमी)। मन्त्रोच्चारण पुरोहित करता है और उसका उद्देश्य अपराध या पापसे उत्पन्न मालिन्यको दूर करना है। जो व्यक्ति दोषी होता है, वह जुर्मानेके रूपमें कुछ चीज़ें सामने रखता है, तब पुरोहित बुरुश जैसा एक डण्डा उसके सामने घुमाकर मन्त्र पढ़ता है। (यह उत्तर भारतमें प्रचलित झाड़-फूँक जैसी प्रथा ही है)।

मिसोगी एक तरहकी सफाईकी रस्म है, जिसका उद्देश्य उस छूतको दूर करना है जो अपवित्र वस्तुओंके आकस्मिक संस्पर्शसे लग गयी हो—चाहे वह मामूली गन्दगी हो, चाहे मृत्यु या रोग-जनित अपवित्रता हो। इसमें स्नानादि द्वारा शरीरकी सफाई की जाती है। केवल नमक और पानी छिड़क लेनेसे भी काम चल जाता है। आज-कलके कुछ रिवाज़ इस पुरानी प्रथाके अवशेषमात्र हैं। प्रत्येक मन्दिर या समाधिस्थलके प्राङ्गणमें पानीका एक हौज रहता है जिसके जलसे उपासकगण पूजामें संलग्न होनेके पहले अपना हाथ-मुँह धोते और कुल्ला करते हैं। (हमारे मन्दिरोंके प्राङ्गणमें भी ऐसा होता है)।

शुद्धिका तीसरा तरीक़ा जिसे 'इमी' (मनोनिग्रह) कहते हैं, सबसे अधिक मनोरञ्जक है। झाड़-फूक करने तथा बलि चढ़ानेकी प्रथा अपवित्र वस्तुको दूर कर पवित्र बनाती हैं किन्तु

मनोनिग्रह अपवित्रतासे बचनेका अप्रत्यक्ष और साथ ही कुछ कठोर साधन है इसलिए सामान्य जनताके बजाय पुरोहितोंका यह कर्त्तव्य माना गया कि वे आवश्यक संयम करें अर्थात् कुछ निषेधाज्ञाओंका अनुसरण करें। ये तीनों ही शुद्ध हिन्दू प्रथाओं-के रूपान्तरमात्र हैं।

शुरूमें शिन्तो धर्ममें धर्मशास्त्र या आचारशास्त्रकी पद्धति न थी। वह मानव हृदयके आन्तरिक सौजन्यपर ही ज़ोर देता था। "हृदयके भीतरकी सच्ची प्रेरणाओंका अनुगमन करो" यही उसकी नैतिक शिक्षाका सार था। इसी तरह प्रारम्भमें उसमें राजभक्ति या पितृभक्तिकी कोई स्पष्ट विचारधारा न थी, यद्यपि ये गुण ऐसे हैं जिनका मनुष्यके नैतिक जीवनपर इतना अधिक प्रभाव पड़ता है। इनकी पूर्ति कनफ्यूशियन धर्मने की जिसका प्रचार जापानमें बौद्ध-धर्मके साथ ही ईसाकी छठवीं शताब्दीके मध्यमें हुआ।

इन बातोंके अतिरिक्त बौद्ध धर्मका भी शिन्तोधर्म पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। सामान्य सिद्धान्त यह है कि बौद्ध-धर्म देवताओंके अनश्वर अंशका सूचक है किन्तु शिन्तो धर्ममें माने गये देवगण केवल आंशिक अवतार या छायामात्र हैं। वास्तविक तत्त्व या मूलतत्त्वको 'होन्जी' (मूल) कहते हैं और उसके बाह्य रूप या अभिव्यक्तिको 'सूईजाकू'। इनके सम्मिलित रूपमें प्रत्येक 'कामी' (जापानी देवता) किसी बौद्ध देवताकी प्रतिच्छाया समझा जाता है। उदाहरणके लिए सूर्यदेवी डाई-नीची न्योराई (अर्थात् मूल और सनातन बुद्ध) के तथा हचीमन (युद्धके देवता) बोसत्सु (बोधिसत्व) के अवतार माने जाते हैं। इस द्विरूपधारी शिन्तो धर्मको समझौतेकी प्रवृत्तिका सूचक ही समझना चाहिये। यह स्थिति लगभग १००० वर्ष तक रही।

१५ वीं शताब्दीमें शिन्तो धर्मशास्त्रका रूप स्थिर करनेमें और उन्नति हुई। कनेराके कथनानुसार शिन्तो धर्म बहुतसे देवताओंके अस्तित्वकी शिक्षा देता है। अध्यात्मशास्त्रकी दृष्टिसे हम उन्हें एक ही कह सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक देवता एक एक विशेष क्षेत्रमें उस परब्रह्मकी ही अभिव्यक्ति है और सब देवता आत्मा तथा अस्तित्वके लिहाज़से एक ही हैं।

अठारहवीं शताब्दीमें शिन्तो धर्मने नया रास्ता पकड़ा और एक बार फिर उसके पुनः संस्कारकी तैयारी शुरू हुई। शिन्तो-धर्मके सिद्धान्तोंका अर्थ करते समय उसके धर्मशील व्यक्तियोंको बौद्धधर्म या कनफ्यूशियन धर्मका सहारा लेना पड़ता था। अब बाहरी प्रभावको आंशिक रूपसे दूर करने और शिन्तोधर्मके प्रारम्भिक स्वरूपका पुनरुद्धार करनेका समय आया। आठवीं शताब्दीमें तैयार किये गये कुछ लेखों आदिका भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे अध्ययन करने पर ऐसा करना सम्भव हुआ। भाषा-विज्ञानका सबसे बड़ा पण्डित और "परिष्कृत शिन्तो-धर्म" का अगुवा मोटो-ओरी नोरीनागा (१७३०–१८०१) नामक व्यक्ति था। उसका कहना था कि विदेशी प्रभावको निकाल देनेसे शिन्तोधर्मका जो रूप रह जाता है वह शुद्ध और सबसे अच्छी देन है जो मनुष्यको दिव्यगुणोंसे प्राप्त हुई है।

आजकल शिन्तोधर्म दो हिस्सोंमें बँट गया है। एक उसका सनातन रूप है जिसका समर्थन सरकार भी करती है और दूसरा रूप उसके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंमें दृष्टिगोचर होता है। इन सम्प्रदायोंको अन्य धर्मोंकी बराबरीका ही पद प्राप्त है। मूल या सनातन रूपके समर्थक उसे धर्म नहीं वरन् एक सार्वजनिक संस्था मानते हैं, जिसमें उन पूर्वजोंकी उपासनाका विधान है जिनकी समाधियोंकी संख्या सन् १९३० तक

१११७३९ थी। दूसरे हिस्सेमें १३ सम्प्रदाय हैं जिनके समस्त अनुयायियोंकी संख्या हालके आँकड़ोंके अनुसार १७८७७००० है।

पहले शिन्तोधर्मके पुरोहित शायद ही कभी मृतकर्म कराते रहे हों। वे शवोंको बौद्धोंके सिपुर्द कर दिया करते थे किन्तु अब वे भी मृतकर्म कराने लगे हैं। इसी तरह अभी अभीतक बौद्धों तथा शिन्तो धर्मके अनुयायियोंमें विवाहोत्सवके समय कभी कोई धार्मिक कृत्य नहीं किये जाते थे। अब प्रायः शिन्तो समाधि-मंदिरमें ही विवाहकी रस्म पूरी करानेका रिवाज़ चल पड़ा है।

शिन्तोधर्म धर्म नहीं, विश्वास है

स्वर्गीय डाक्टर आई० निटोबीने (जो स्वयं ईसाई थे) शिन्तो मतके सम्बन्धमें अपनी पुस्तक 'जापान' में बहुत सी मनोरंजक बातें लिखी हैं। उनमेंसे कुछ यहाँ दी जाती हैं—

शिन्तो मतको हम मत या विश्वास ही कह सकते हैं, धर्म नहीं। उसमें बहुत ही कम नैतिक नियम और धार्मिक सिद्धान्त हैं। वह प्रकृति-पूजाका ही एक रूप है, जिसमें मृत पूर्वजोंकी स्मृतिके प्रति सम्मानका भाव भी शामिल है, इसीसे समाजपर आज भी उसका काफी प्रभाव है। पुरानी परम्पराओंका केन्द्र तथा प्रारम्भ कालकी कथाओंका निदर्शक होनेके कारण वह एक तरहसे पुराणपन्थी भी है। वह राजधर्म नहीं है, यद्यपि राजकुल प्रधानतया उसी मतका अनुयायी है। शिन्तो तथा राजभवनमें इतना निकट सम्बन्ध है कि मूलमें दोनों एक ही थे। 'मिया' शब्दका अर्थ समाधि भी होता है और राजभवन भी। दसवें सम्राट् सूजिनके शासन-कालमें (५९४-६३१) जाकर कहीं राजप्रासादके लिए अलग शब्द रखा गया और उनके

पूर्वजोंकी समाधिके लिए अलग। इसी समयसे हम धर्म-संस्था और राजसंस्थाके पार्थक्यकी गणना कर सकते हैं।

राजभवनसे बाहर निकल कर शिन्तो मतने सर्वसाधारणसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया। अब वह प्रजाको राजाके साथ मिलानेका प्रबल साधन बन गया। वह एक तरहकी प्रबल भावना है जिससे तत्त्वविज्ञान या धर्मशास्त्रका कोई ताल्लुक नहीं। उसमें साहित्यके गम्भीर विचार अथवा उच्च कल्पनाका अभाव है। उसकी पूजा एक तरहका शिष्टाचार मात्र है। वह बौद्धधर्मका सामना कैसे कर सकता था? फिर भी जब बौद्ध-धर्मका प्रचार शुरू हुआ, तब विदेशी धर्म कहकर उसके विरोधका दिखाऊ प्रयत्न किया गया। किसी बाहरी मतके विरोधका मुख्य कारण प्रायः उसकी नवीनता और अप्रियता ही होती है किन्तु शिन्तोमतके समर्थकोंके लिए बौद्धधर्मके विरोधका एक बुद्धिसङ्गत कारण भी था। बौद्धोंका समानताका सिद्धान्त ऐसा था जो सारे समाजके ढाँचेको ही बदल देता, जो अभीतक ऊजी प्रणालीके आधारपर चला हुआ था।

दैवात् यह नया धर्म जापानमें—अथवा यों कहिये कि राज-प्रासादमें—ठीक ऐसे समय पहुँचा जब कि ऊजी प्रणाली स्वयं राजघरानेके लिए खतरनाक बनती जा रही थी। सङ्कटके समय अपना हिताहित समझ लेनेकी जो तीव्र बुद्धि प्रायः प्रत्येक राष्ट्रमें देख पड़ती है, वह उस समय जापानमें भी बहुत कुछ दृष्टिगोचर होने लगी थी जब सोगोंने राजनीतिक महत्त्वा-कांक्षाके कारण नये धर्मको अपनानेका समर्थन करना शुरू किया। बौद्ध धर्म अपने प्रतिद्वन्द्वीकी असफलताके बाद भी अपना अस्तित्व बनाये रखनेमें समर्थ हुआ। उसके अनुयायियोंने अपनी प्रखर बुद्धिसे शिन्तो-मतावलम्बियोंका भय छुड़ा दिया

और उनकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी झिझक दूर करनेके लिए 'रियोबू' (द्वैतवाद) के सिद्धान्तमें दोनों मतोंका सम्मिश्रण कर दिया।

इस सिद्धान्तके अनुसार शिन्तो मतवालोंके देवता बुद्धके उन मूल रूपोंके ही अवतार बताये गये जो स्वर्गमें विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ, यह कहा गया कि सूर्यदेवी महावैरोचनका अवतार हैं। इस चतुरतापूर्ण सम्मिश्रणसे वहाँके धर्ममें बुद्धिका भी प्रवेश हो गया और उसका स्वरूप अधिक बुद्धिसङ्गत एवं अधिक नीतिसङ्गत प्रतीत होने लगा।

बौद्ध धर्मके साथ उसका यह गँठ-बन्धन बराबरीका न था, अतः यह बहुत दिनोंतक ठहर नहीं सकता था। स्त्रीके अधीन रहनेवाले पतिकी तरह शिन्तो मतको दूसरेकी इच्छापर नाच नाचना पड़ता था। जीवनसे वास्तविक सम्बन्ध रखनेवाली बातोंमें प्रत्यक्ष रूपसे उसे कोई स्थान प्राप्त न था। शिन्तो-मतके पुनरुद्धारका कारण राष्ट्रके प्राचीन इतिहासका अध्ययन है, जिसका आरम्भ अठारहवीं सदीके मध्यमें हुआ और जो अब भी जारी है। इस मतका अध्ययन तथा प्रचारका एक ही परिणाम हो सकता था—देशके प्रति अनुराग तथा सम्राट्के प्रति भक्तिका बढ़ जाना। सन् १८६८ में सम्राट्की पुनः प्रतिष्ठाका एक बड़ा कारण शिन्तो-मतका पुनरुद्धार भी था। मीजी सरकारके प्रारम्भिक सङ्गठनकालमें धार्मिक कृत्योंके विभागको शासन तथा व्यवस्थाके अन्य विभागोंसे अधिक ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया। रियोबू (अद्वैत सिद्धान्त) की प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी और देवताओंको बुद्धका अवतार न कहकर उनका स्वतन्त्र अस्तित्व माना जाने लगा। राजकीय उत्सवोंके समय होनेवाले अर्द्धधार्मिक कृत्य अब शिन्तो-

मतके अनुसार किये जाने लगे। शिन्तो-समाधियाँ सरकारी संरक्षणमें ले ली गयीं। सारे देशमें छोटी बड़ी लगभग १ लाख १४ हजार समाधियाँ फैली हुई हैं। हर एक गाँवमें कमसे कम एक समाधि अवश्य है। हर एक परिवारकी एक छोटीसी वेदी होती है जिसपर उसके पूर्वजोंके स्मृतिचिह्न-स्वरूप पत्थरकी चौकोर पटियाएँ सी रखी रहती हैं।

धर्मके सम्बन्धमें सरकारकी ओरसे कोई हस्तक्षेप नहीं होता। राजकीय शासन विधानके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिको अन्तःकरणकी स्वतन्त्रता प्राप्त है। सरकारी आँकड़ोंसे विदित होता है कि इस मतके अनुयायियोंकी संख्या १ करोड़ ६० लाख है। ये आँकड़े सही नहीं कहे जा सकते क्योंकि ये उल्टी गणना से प्राप्त हुए हैं। जो बौद्ध या ईसाईधर्मके अनुयायी नहीं, वे इस मतके माननेवाले समझ लिये गये हैं। इनमें वस्तुतः कई स्त्री पुरुष ऐसे हैं जिन्हें किसी भी मतमें विश्वास नहीं है।

पुनःप्रतिष्ठाके बादके १० वर्षोंको शिन्तोमतकी सुखसमृद्धिका समय समझना चाहिये। राष्ट्रीय भावना और प्राचीन बातोंको अपनानेकी नीतिके कारण उसका अधिक प्रचार होना अनिवार्य था। अन्य मतावलम्बियोंको इस मतका अनुयायी बनानेका किञ्चित् प्रयत्न भी किया गया और 'देवताओंके मत' का प्रचार करनेके लिए 'धर्मदूतों' की नियुक्ति की गयी। सन् १८७२ में इस मतकी ये तीन बातें मुख्य बतायी गयीं—(१) देवताओं के सम्मान तथा देशानुरागके सिद्धान्तका अनुसरण करना, (२) स्वर्ग तथा मनुष्यके मार्गका परिष्कार करना, (३) सम्राट्का शासनाधिकार कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना और उसकी इच्छाके अनुसार चलना।

इस मतको फैलानेके लिए १८७५ में सरकारकी ओरसे

कोई ७२४७ प्रचारक नियुक्त किये गये। इनमें कई ऐसे थे जिनमें किसी भी तरहकी मानसिक या नैतिक योग्यता न थी, अतः कुछ ही समयके भीतर सर्वसाधारणमें इनकी हँसी उड़ायी जाने लगी। १८७७ का प्रारम्भ होते होते यह प्रयत्न छोड़ दिया गया, क्योंकि इससे यह स्पष्ट हो गया कि आध्यात्मिक मामलोंमें सरकारी प्रचारकार्य प्रायः व्यर्थ होता है। इसके अतिरिक्त उससे यह बात भी समझमें आ गयी कि लोगोंके विचार अब इतने आगे बढ़ गये हैं कि इस प्रारम्भिक धर्मसे ही उनका सन्तोष नहीं हो सकता।

शिन्तो मतका अध्ययन जो अब भी जारी है, इसके दो कारण हैं—एक तो उसका ऐतिहासिक महत्त्व, दूसरा उसका नैतिक तथा सामाजिक पहलू। उसमें धर्मके कुछ निश्चित सिद्धान्तोंका न होना ही उसके बहुतसे अनुयायियोंकी निगाहमें एक आकर्षक बात है, क्योंकि उसके अभावमें वे अपने अपने विचारोंके अनुसार धर्मके स्वरूपका भिन्न भिन्न तरहसे प्रतिपादन कर सकते हैं। कुछ लोग उसे राष्ट्रीय विश्वासोंका संग्रह बनाना चाहते हैं, तो दूसरे लोग उसे सामाजिक संस्था बनाकर उससे ऐसे काम निकालना चाहते हैं जिन्हें अन्य संस्थाएँ नहीं कर सकतीं। इसमें अब मृतकर्मकी जो रस्म चल पड़ी है वह वहाँके राष्ट्रीय देवताओंको पसन्द नहीं आ सकती, क्योंकि प्राचीन ग्रीसके देवताओंकी तरह वे भी मृत्युके सदृश अपवित्र वस्तुसे कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहते। हालमें उसमें एक वैवाहिक रस्मका भी समावेश कर लिया गया है जो उसकी परम्पराके अनुकूल और वर्त्तमान जापानकी आवश्यकताके अनुरूप है। इन नयी बातोंके कारण शिन्तोमत अब लोगोंके विचारोंके निकटतर पहुँच जायगा।

बौद्धधर्म

जापानमें बौद्धधर्मका प्रवेश पहले पहल सन् ५५२ में हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। उस समय कुदारा (कोरिया) के राजाने गृहयुद्धसे तङ्ग आकर जापानसे सहायता माँगी और बौद्धधर्मके कई ग्रन्थ तथा बुद्ध भगवान्‌की कुछ प्रतिमाएँ सम्राट्‌के पास भेंटके रूपमें भेजीं। इसके बाद कुछ पुरोहित, भिक्षुकाएँ, मन्दिर बनानेवाले कारीगर तथा मूर्त्तियाँ गढ़नेवाले शिल्पकार भी वहाँ जा पहुँचे। लगभग आधी शताब्दी और बीतनेके बाद सम्राज्ञी सूईकोके शासनकालमें कुमार शोतोकुका समर्थन पाकर बौद्धधर्म राजकुलमें प्रतिष्ठित हो गया और देशमें भी उसका प्रसार हो गया। भारतमें सम्राट् अशोकने बौद्धधर्मके प्रचारके लिए तथा रोम-साम्राज्यमें कान्सटेनटाइनने ईसाई मतके लिए जो कुछ किया, वही कुमार शोतोकुने जापानमें बौद्धमत फैलानेके लिए किया। उसने मन्दिरों, मठों, खैराती दवाखानों, तथा अनाथालयोंका निर्माण कराया और बौद्ध शिक्षाके अनुसार देशके शासनकी व्यवस्था की।

जिस बौद्धधर्मकी स्थापना जापानमें हुई, वह महायान (दाईजो बुकिक्यो) के नामसे प्रसिद्ध है। बौद्धधर्मकी आधारभित्ति त्रिरत्नमें विश्वास है। ये त्रिरत्न हैं बुद्ध, धर्म और संघ। इस धर्मके विकसित रूपका ही प्रवेश जापानमें हुआ। पहले इसमें कोई सम्प्रदाय न थे किन्तु बादमें ज्यों ज्यों इसका विकास होता गया, त्यों त्यों उनकी संख्या भी बढ़ने लगी। इनका वर्णन करना अनावश्यक है।

अभीतक जापानमें बौद्धधर्मका स्वरूप मुख्यांशमें वही था जो चीनमें था किन्तु हीयानकाल (७९४-११८५) में दो बड़े

धर्म-प्रवर्त्तकों—तेन्दाई सम्प्रदायके संस्थापक साइको और शिंगानके संस्थापक कूकाई—के प्रयत्नसे उसका झुकाव राष्ट्रीयताकी ओर होगया। इसका श्रेय प्रधानतया उस सिद्धान्तको है जिसके अनुसार शिन्तो देवता बुद्धों तथा बोधिसत्त्वोंके ही अवतार माने जाते हैं, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं।

अब बुद्धधर्मकी शक्ति बहुत बढ़ गयी। उसके दोनों प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायों—तेन्दाई और शिंगान—के केन्द्र क्रमशः हियाई शिखर तथा कोया शिखरपर स्थापित हुए। यहींसे सारे देशमें बौद्ध शिक्षाका प्रसार हुआ। जब बौद्धधर्ममें संकीर्णता और अनाचार बढ़ने लगा, तब उसकी शुद्धिके लिए १३ वीं शताब्दीमें चार नये सम्प्रदायों—ज़ेनशू, जोदो, शिनशू और नीचीरेन—का आविर्भाव हुआ। इन चारों सम्प्रदायोंका प्रभाव आजतक बना हुआ है।

इस समय जापानमें बौद्धधर्मके ग्यारह सम्प्रदाय हैं जिनके मन्दिरोंकी संख्या कुल ७१ हजार १९३ तथा अनुयायियोंकी ४ करोड़ १९½ लाख है।

बौद्धधर्मका भविष्य

संसारमें जो धार्मिक क्रान्ति हो रही है, उसे देखते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धधर्मके प्रति केवल पूरबवालोंकी ही नहीं, यूरोप और अमेरिकाकी भी सहानुभूति बढ़ रही है। इस सम्बन्धमें एक नोट 'जापान टाइम्ज़' में प्रकाशित हुआ था, जो उल्लेखनीय होनेके कारण यहाँ दिया जाता है—यदि कोई बौद्ध धर्मके भविष्यके सम्बन्धमें अनुमान करनेका साहस करे तो वह कहेगा कि उसका बुद्धि-संगत होना ही भविष्यमें उसके लोकप्रिय बननेका मुख्य कारण होगा। जिज्ञासा-भावसे बार बार

प्रश्न कर सत्यको ढूँढ निकालना, यही भगवान् गौतम बुद्धकी शिक्षाका मुख्य आधार है। वैज्ञानिक भी यही करता है। अतः यह स्पष्ट है कि सन्देह और अविश्वासके जमानेमें जब धर्मके प्रति लोगोंके हृदयमें श्रद्धा न रह जायगी, तब बौद्धधर्मका बुद्धि-संगत स्वरूप मनुष्य-समाजके उस बड़े हिस्सेको अवश्य प्रभावित कर सकेगा जो धर्मके साथ विज्ञान और तर्कका सामंजस्य देखना चाहता है। यदि उसके वर्त्तमान कर्णधार दूरदर्शिता एवं सूक्ष्म दृष्टिसे काम लेंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि उससे मनुष्य-जातिको वह आध्यात्मिक शान्ति अवश्य प्राप्त हो सकेगी जिसके लिए पहलेकी ही तरह आज भी वह लालायित है।

ईसाईधर्म

सन् १५४९ में फ्रैंसिस ज़ेवियर नामक रोमन कैथलिक पादरीने जापानमें पदार्पण किया। तबसे लगभग ९० वर्ष तक अर्थात् १६३८ तक वहाँ ईसाईयोंके प्रचारका खूब प्रयत्न किया गया। दो लाख जापानी इस मतमें दीक्षित किये गये जिनमें कई सेनापति तथा उच्चश्रेणीकी महिलाएँ भी थीं। जब ईसाईधर्म-प्रचारकोंने कुछ ज्यादतियाँ करनी शुरू कीं, तब उनके खिलाफ बहुतसी पाबन्दियाँ लगा दी गयीं और अन्तमें उन्हें देशके बाहर निकल जानेकी भी आज्ञा हुई। सन् १६३७ में क्यूशूके बीस हजार ईसाइयोंने बगावत कर दी जो शिम्बारा-विद्रोहके नामसे प्रसिद्ध है। इसकी समाप्ति जनवरी १६३८ में उन क्रिस्तानोंके कत्ले-आमसे हुई जिन्होंने भागकर शिमबारा प्रायद्वीपके दक्षिणमें स्थित हारा किलेके आस-पास शरण ली थी। इस घटनाके बाद लगभग दो सौ वर्षतकके लिए जापानमें ईसाई मतका एक तरहसे अन्त हो गया। इतना होते हुए भी क्यूशूके कुछ हिस्सोंसे वस्तुतः

उसका सर्वथा लोप नहीं हुआ। सन् १८६५ में जब रोमन कैथलिकोंका गिरजाघर नागासकी में तैयार हुआ, तब महीने भरके भीतर ही वहाँ ऊराकामी गाँव तथा आस-पाससे हज़ारों ईसाई इकट्ठे हो गये, जो लगभग २२५ वर्षोंसे छिपे छिपे पुश्त दर पुश्त इस मतका अनुसरण करते आ रहे थे।

प्रोटेस्टैण्ट पादरियोंने अपना काम सन् १८५९ में शुरू किया। पहले उन्हें अनेक बाधाओंका सामना करना पड़ा किन्तु पुनः प्रतिष्ठा (१८६८) के बाद व्यापक सुधारका कार्यक्रम जारी होनेपर ईसाई-धर्म-प्रचारके लिए रास्ता खुल गया। फरवरी १८७३ में खीष्टधर्मके विरुद्ध निकाले गये पुराने आदेश वापस ले लिये गये और अप्रैलमें उन सब क्रिस्तानोंको जापान लौट आनेकी अनुमति दे दी गयी जो पहले निर्वासित कर दिये गये थे। सन् १८८९ के शासन-विधानसे सबको धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी और अब उस देशके जीवनमें खीष्टधर्म क्रमशः महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करता जा रहा है।

अठारहवाँ अध्याय

जापानकी शिक्षापूर्ण बातें

यद्यपि जापानकी प्रायः प्रत्येक वस्तु वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके आधारपर बनी होनेके कारण हमारे लिए शिक्षाप्रद ही है, फिर भी इस अध्यायमें मैं उन सच्ची घटनाओंको एक जगह एकत्र कर देना चाहता हूँ जिनसे हम भारतवासियोंको देश-भक्ति, जिम्मेदारी अदा करने और कर्त्तव्य पालन आदिकी

शिक्षा मिल सकती है। इन्हें मैं समय समयपर भारतीय समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कराता रहा हूँ और पाठकोंकी जानकारीके लिए यहाँ फिर उद्धृत करता हूँ।

"शिक्षाके साथ साथ देशभक्तिका भी प्रचार हो" यह वहाँके शिक्षा-सञ्चालकोंका सिद्धान्त-वाक्य है। नौ-सेनापति तोगोके जीवनकी घटनाओंसे विद्यार्थियोंको परिचित करानेके उद्देश्यसे शिक्षाविभागने हालमें ही एक ऐसी फिल्म तैयार करायी है जिसमें कागोशिमाकी लड़ाईसे लेकर टोकियोमें निकाले गये उनके जनाज़ेके जलूस और उनके दफनाये जानेतकका हाल दिया गया है। यह फिल्म देशके उन सब स्कूलोंमें भेज दी जायगी जहाँ प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षाकी पढ़ाई होती है।

मन्त्रीकी देशभक्ति

अंग्रेज़ी प्रथाओं और पश्चिमके तरीक़ोंका अन्धानुसरण करनेमें जिन भारतीयोंको विशेष आनन्द आता है, उनके लिए मैं जापान 'एडवरटाइज़र' से वहाँके एक मंत्रीकी देशभक्तिका वृत्तान्त नीचे देता हूँ।

"जापानमें बहुतसे बच्चे अपने माँ-बापके लिए 'ओतोसान' और 'ओकासान' नामक जापानी शब्दोंके बदले अंग्रेजी शब्द 'पापा और मामा' का प्रयोग करने लगे हैं हालाँ कि अब यह बात लोगोंको बहुत खटकने लगी है। इसके सबसे बड़े विरोधी वहाँके शिक्षामंत्री गेंजी मत्सूदा हैं। जापानी भाषाके एक समाचारपत्रमें आप लिखते हैं "शिक्षामंत्रीको शिक्षाके सम्बन्धमें और चाहे जो कुछ कहनेका हक़ हासिल हो लेकिन उसे उनकी खानगी बातोंमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार

नहीं है। इतना होते हुए भी मैं इस बातका बड़ा इच्छुक हूँ कि जापानी घरोंमें माता-पिताके लिए पापा और मामा शब्दका प्रयोग करना बिलकुल बन्द हो जाय। यह बात मेरी समझमें बिलकुल नहीं आती कि परिवारमें जिनका सबसे अधिक आदर होना चाहिये, उनके लिए जापानी बालक क्यों व्यर्थ ही विदेशी शब्दोंका प्रयोग करें।

"बहुत दिनोंसे मेरे दिमागमें यह बात गूँजती रही और शिक्षामंत्री बननेके पहले मैं अपने सार्वजनिक भाषणोंमें उसकी ओर इशारा भी करता रहा। बारह वर्ष पूर्व जब मैं फ्रांस गया था, तब ब्रिटेनके तत्कालीन परराष्ट्र-मन्त्री लार्ड कर्ज़न फ्रान्सीसी सरकारके साथ किसी राजनीतिक विषयके सम्बन्धमें बातचीत करनेके लिए पेरिस आये हुए थे। यद्यपि वे फ्रांसीसी भाषाके अच्छे पण्डित थे, फिर भी फ्रान्सके परराष्ट्र-मंत्री श्री पोआंकारेसे वार्तालाप करते समय वे बराबर अंग्रेज़ी ही बोलते थे। इसी तरह श्री पोआंकारे भी अंग्रेज़ी बोलनेकी योग्यता रखते हुए भी अपनी भाषामें ही बातचीत करते थे। दोनों ही एक दूसरेको अपना मतलब समझानेके लिए दोभाषियेकी सहायता लेते थे। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्यको कहाँतक अपनी राष्ट्रभाषाका आदर करना चाहिये।

"मैं दूसरे देशोंका विरोधी नहीं हूँ। लोगोंको मैं विदेशी भाषाएँ सीखनेके लिए उत्साहित करता हूँ ताकि वे उनकी सहायतासे विदेशोंकी अच्छी अच्छी बातोंको ग्रहण कर सकें, फिर भी 'पापा और मामा' जैसे विदेशी शब्दोंको कदापि न अपनाना चाहिये और हमारी महिलाओंको विदेशियोंके कपड़े पहनने अथवा कटे हुए छोटे छोटे बाल रखनेकी प्रथाका अनु-

स्मरण भी न करना चाहिये। इन बातोंमें मुझे कोई सौन्दर्य नहीं दिखाई देता।"

शिक्षा मन्त्री जापानियोंके पारिवारिक जीवनमें 'पापा और मामा' इन विदेशी शब्दोंके इतने कट्टर विरोधी हैं कि उन्होंने, जैसा कि निप्पन डेम्पोमें प्रकाशित हुआ है, स्पष्ट रूपसे यह घोषित कर दिया है कि मैं आदेश निकाल कर प्रारम्भिक शाला-ओंमें इन शब्दोंके प्रयोगकी मनाही कर दूँगा और माता-पिताओं से भी इस बातकी सिफारिश करूँगा कि वे अपने घरोंमें बालकोंको इन शब्दोंका प्रयोग करनेसे रोकें। शिक्षा-मंत्रीका ख़याल है कि विदेशोंमें इन शब्दोंका चाहे जो अर्थ हो पर जापानमें इनके कारण उस सबन्धको हानि पहुँचनेकी सम्भा-वना है जो जापानी बालकों और उनके माता-पितामें परम्परासे रहता आ रहा है।

धेलेका जंगी जहाज़

जापानियोंकी देशभक्ति अद्वितीय है। वहाँ प्रति सप्ताह ऐसी योजनाएँ सुननेमें आती रहती हैं जिनके ज़रिये सर्वसाधारणकी देशभक्तिसे लाभ उठाकर देशको भविष्यके लिए हर तरहसे तैयार बनानेका प्रयत्न किया जाता है। अभी हालमें ओसाकाके एक नाविक हिकोतारो हतायामाने 'धेला रोज़' की जो योजना बनायी है, उसमें बहुतसे भूतपूर्व नाविक और युवक-युवतियोंकी संस्थाओंके सदस्य शामिल हो रहे हैं। प्रत्येक मनुष्यसे प्रतिदिन एक धेलेके हिसाबसे चंदा माँगा जाता है जिससे एक जंगी जहाज़ बनेगा जो देश-प्रेमियोंका जंगी जहाज नं० १ कहलायगा। इस तरहके छोटे छोटे चन्देसे कई हवाई जहाज़ भी सेनाको भेंट किये जा चुके हैं।

ऊपर मैंने जो कुछ लिखा है, उसका उद्देश्य भारतीय नवयुवकोंको यह बतलाना है कि राष्ट्रके रचनात्मक कार्यक्रममें वे कहाँतक सहायक हो सकते हैं। देशमें पैसेकी कमी नहीं है, कमी है देशपर प्रेम करनेवाले उत्साही कार्यकर्त्ताओंकी। क्या हमारे नवयुवक जापानी नवजवानों द्वारा दिखाये गये मार्गपर चलनेका प्रयत्न करेंगे ?

मातृभूमिके लिए जीना

जापान सरकारने वाशिंगटन नौ-सन्धिको रद्द करनेका जो निश्चय किया, उससे एक नौसैनिकको नया जीवन प्राप्त हुआ, नहीं तो अपने जहाज़को छोड़कर चले जानेकी लज्जासे प्रेरित होकर वह आत्महत्या करने जा रहा था। उसका नाम गाइची कोमाता था और वह योकोसूका नौसेनाकी सातवीं पलटनमें नौकर था। एक संवादपत्रमें सरकारके उक्त निर्णयका समाचार पढ़कर वह कतासीके पुलिस थानेमें गया और वहाँ उसने नीचे लिखा बयान दिया—

"गुरुवारको जहाज़से उतरकर मैं अपनी प्रेयसीसे मिलनेके लिए टोकियोके एक होटलमें गया लेकिन वह वहाँ नहीं मिली। इधर उधर बहुत खोज की पर कहीं पता न लगा। इस परेशानीमें देर भी ज्यादा हो गयी। इस तरह दोनों ओरसे निराश होकर मैंने समुद्रमें कूदकर प्राण देनेका निश्चय कर लिया। शनिवारको एक भोजनालयमें विश्राम करते समय मैंने अखबारमें पढ़ा कि सरकारने वाशिंगटन नौसन्धिको मंसूख करनेका निर्णय किया है। तब मुझे राष्ट्रीय संकटका ख़याल हुआ और मेरे मनमें यह इच्छा हुई कि मुझे भी इस मौक़ेपर देशके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये, इसीसे मैं थानेमें हाज़िर हुआ हूँ।"

योकोसूका नौसेनाके दो अफसर कल उसे अपने नौ-केन्द्रको वापस ले गये। अब वह इसीलिए जी रहा है कि मौक़ा आनेपर मातृभूमिके लिए प्राण अर्पित करे।

स्वदेशी व्रतधारी प्रतिनिधि

सितम्बर १९३४ में यूगोस्लावियाके नगर बेलग्रेडमें वाणिज्य-व्यवसायके सम्बन्धमें विभिन्न देशोंकी पार्लिमेण्टोंके प्रतिनिधियोंका एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होनेवाला था। उसमें सम्मिलित होनेके लिए जापानी राष्ट्रसभाके पाँच प्रतिनिधि टोकियोसे रवाना हुए। चलते समय उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि हम केवल जापानी भाषामें बोलेंगे और जापानी कपड़े ही पहनेंगे; विदेशी लिबास सिर्फ उस वक्त पहनेंगे जब ऐसा करनेसे जापानी रेशम तथा अन्य कपड़ोंका महत्त्व प्रकट होनेकी सम्भावना हो।

देशभक्तिकी प्रेरणासे ही यह यात्रा की जा रही है, इस बात पर ज़ोर दिया गया। एक प्रतिनिधि श्री इकाकू साकामोतोने कहा कि मैं जापानीमें ही भाषण करूँगा और "जहाँतक सम्भव होगा खूब बुलन्द आवाज़में बोलूँगा, क्योंकि विदेशी श्रोताओंको प्रभावित करनेका मन्त्र यही है।" उन्होंने यह भी कहा कि "मैं जापानी मल्लविद्या (जूदो) का विशेषज्ञ हूँ। मुझे आशा है कि मैं इसका प्रदर्शन कमालपाशा, मुसोलिनी और हिटलरके सामने कर सकूँगा। हम लोग जापानकी ओरसे उक्त सम्मेलनमें कोई प्रस्ताव नहीं पेश करना चाहते। हम तो वहाँ केवल जापानी वस्तुओंकी जानकारी फैला देना चाहते हैं। हम विदेशी वस्त्र भी अपने साथ ले जायँगे किन्तु हम उन्हें केवल उस समय धारण करेंगे जब हमें उनकी तुलनामें जापानी कपड़ोंकी श्रेष्ठता

दिखाना अभीष्ट होगा। हमारे जापानी कपड़े इस बातको प्रमाणित कर देंगे कि हमारे देशका रेशम कितना अच्छा होता है। हमें विश्वास है कि हमारे प्रदर्शनसे जापानी कपड़ोंकी माँग बढ़ जायगी।"

रक्तरञ्जित झण्डा

जापानियोंकी उत्कट देशभक्तिका एक उदाहरण यह है—

बीस वर्षका एक युवक आसाकूसा पुलिस थानेमें गया और प्रार्थना की कि मुझे मंचूकुओमें स्थित जापानी सैनिकोंके पास खुद अपने हाथसे बनाये हुए एक झण्डेको उपहार रूपमें भेजनेकी अनुमति प्रदान की जाय। उसने डेढ़ येन (लगभग १ रुपया) की रक़म भी समर्पित की।

वह आसाकूसामें एक कसाईकी दूकानपर नौकर था। उसने झण्डेको खुद अपनी उँगली काटकर उसके रक्तसे रङ्गकर तैयार किया था। सैनिककी हैसियतसे काम करनेके अयोग्य करार दिये जानेके कारण वह कोई ऐसा काम करनेके लिए इच्छुक था जिससे चीनी क्षेत्रमें गये हुए सैनिकोंका प्रोत्साहन हो सके। स्वतन्त्रताका स्वप्न देखनेके पहले हममेंसे प्रत्येकको देशभक्तिकी ऐसी ही गहरी भावनाकी आवश्यकता है। ईश्वर हमारी सहायता करे।

हत्यारेका दान

जापानी देशभक्तिका एक और निराला नमूना वह है जिसमें एक हत्यारेने फाँसीके तख्तेपरसे मातृ-भूमिके लिए अपनी लाश अर्पित करनेकी प्रार्थना की थी। घटनाका विवरण एक संवादपत्रमें इस प्रकार छपा है—

"सेनाको ३० वर्षके एक हत्यारेके अन्तिम आदेशसे जो उसने एक सप्ताह पहले टोकियोमें फाँसीके तख्तेपर चढ़ते समय दिया था, लाभ पहुँचनेवाला है। इसका नाम तानाबे था। मरते समय इसने अपने पितासे प्रार्थना की थी कि मेरी लाश चीर-फाड़के कामके लिए विश्वविद्यालयके अस्पतालको दी जाय और उसके बदले जो रुपया मिले वह सेनाके अधिकारियोंको अर्पित कर दिया जाय। "मरते समय राजकी इतनी ही सेवा मैं कर सकता हूँ। मेरी मृत्युसे देश-रक्षाके कोषमें एक छोटी-सी रकम और जमा हो सकेगी।" ये ही उसके शब्द थे।

गत वर्ष अप्रैलके महीनेमें किरायेकी मोटर चलानेवाले एक व्यक्तिकी हत्या करनेके अपराधमें तानाबेको प्राणदण्डकी सज़ा हुई थी। ऊँची अदालतमें उसने अपील की थी किन्तु वह मंजूर नहीं हुई और उसे ईचीगया जेलखानेमें फाँसी दे दी गयी। यही जापानकी शक्तिका असली रहस्य है, न कि उसकी मुद्रा येनके मूल्यका गिराया जाना जैसा कि हिन्दुस्तानमें हमें बतलाया जाता है।

देशभक्त छात्रोंके कार्य

जापानमें प्रारम्भिक शालाओंके विद्यार्थी देशकी भलाईके कार्योंमें किस तरह हिस्सा लेते हैं, यह पढ़कर हमारे यहाँके विद्यार्थी और अध्यापकोंको भी नसीहत लेनी चाहिये। पुरानी बोतलों, पढ़ी हुई पत्र-पत्रिकाओं तथा ऐसी ही अन्य निरुपयोगी सामग्रीसे उन्होंने पैसा इकट्ठा कर एक राष्ट्रीय हवाई जहाज़ तैयार करनेमें सहायता की। जापानके एक समाचारपत्रमें यह खबर छपी है—"पिछले सालसे टोकियो 'एयरडिफेन्स यूनियन' नामक संस्था शाही फौज़के लिए चन्दा इकट्ठा करती रही।

टोकियोके ओजी हल्केने इस सम्बन्धमें विशेष प्रयत्न किया और उनका यह काम महत् प्रशंसाके योग्य कहा जा सकता है। इस हल्केके नवयुवकोंने पैसा इकट्ठा कर सेनाको एक हवाई जहाज अर्पित करनेका निश्चय किया। यहाँके प्राइमरी स्कूलके विद्यार्थियोंने पुराने मासिकपत्रों व खाली बोतलोंको बेचकर तथा इसी तरहकी और सैकड़ों तदबीरोंसे काफी रुपया बटोरा और फौजको देनेके लिए उससे एक हवाई जहाज़ खरीदा। क्या हमारे देशके विद्यार्थी भी इस तरहके देशहितके कामोंके लिए रुपया इकट्ठा नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं। उन्हें तो केवल अपने अध्यापकों और युवकोंके उन तथाकथित नेताओंके उचित पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता है जो केवल सभाओंका आयोजन करने तथा वक्तव्य प्रकाशित करनेमें ही अपना समय खर्च किया करते हैं और सालके शुरूमें इस मामिलेमें लम्बी-चौड़ी बहस करनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इति-श्री समझते हैं।

चन्दा जमा करनेके तरीक़े

हमारे देशमें अनेक देशभक्त नेताओंको देशके लाभके लिए शुरू किये गये कामोंके लिए चन्दा इकट्ठा करनेमें दिक्कत होती है किन्तु जापानमें यह काम भी कितनी खूबीसे किया जाता है, सुनिये—

ग्रामोफोन बेचनेवाली संस्था शाही सेनाको कुछ चन्दा देना चाहती थी, इसलिए उसने निश्चय किया कि नये रेकार्डों-पर लाल रङ्गकी मुहर लगायी जाय और इसके लिए प्रत्येक खरीदार एक सेन अर्थात् अधेला अधिक देवे। इस तरह तीन महीनेमें जो रक़म इकट्ठी होगी वह सेनाकी ओरसे किये जाने-वाले देशहितके किसी काममें लगायी जायगी।

टोकियोके ओजी हल्केने इस सम्बन्धमें विशेष प्रयत्न किया और उनका यह काम महत् प्रशंसाके योग्य कहा जा सकता है। इस हल्केके नवयुवकोंने पैसा इकट्ठा कर सेनाको एक हवाई जहाज अर्पित करनेका निश्चय किया। वहाँके प्राइमरी स्कूलके विद्यार्थियोंने पुराने मासिकपत्रों व खाली बोतलोंको बेचकर तथा इसी तरहकी और सैकड़ों तदबीरोंसे काफी रुपया बटोरा और फौजको देनेके लिए उससे एक हवाई जहाज़ खरीदा। क्या हमारे देशके विद्यार्थी भी इस तरहके देशहितके कामोंके लिए रुपया इकट्ठा नहीं कर सकते? अवश्य कर सकते हैं। उन्हें तो केवल अपने अध्यापकों और युवकोंके उन तथाकथित नेताओंके उचित पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता है जो केवल सभाओंका आयोजन करने तथा वक्तव्य प्रकाशित करनेमें ही अपना समय खर्च किया करते हैं और सालके शुरूमें इस सिलसिलेमें लम्बी-चौड़ी बहस करनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इति-श्री समझते हैं।

चन्दा जमा करनेके तरीक़े

हमारे देशमें अनेक देशभक्त नेताओंको देशके लाभके लिए शुरू किये गये कामोंके लिए चन्दा इकट्ठा करनेमें दिक़्क़त होती है किन्तु जापानमें यह काम भी कितनी खूबीसे किया जाता है, सुनिये—

ग्रामोफोन बेचनेवाली संस्था शाही सेनाको कुछ चन्दा देना चाहती थी, इसलिए उसने निश्चय किया कि नये रेकार्डों-पर लाल रङ्गकी मुहर लगायी जाय और इसके लिए प्रत्येक खरीदार एक सेन अर्थात् अधेला अधिक देवे। इस तरह तीन महीनेमें जो रक़म इकट्ठी होगी वह सेनाकी ओरसे किये जाने-वाले देशहितके किसी काममें लगायी जायगी।

यदि हमारे देशकी व्यापारिक संस्थाएँ भी देशकी भलाईके कामोंके लिए रुपया इकट्ठा करनेके ऐसे ही तरीकोंका प्रयोग करना शुरू करें तो बिना किसी दिक्कतके लाखों रुपये जमा किये जा सकते हैं। एक रुपयेका माल बेचनेपर एक पैसेका टैक्स यदि और लगा दिया जाय तो उससे खरीदारोंको बुरा न मालूम होगा, किन्तु जब व्यापारी इस तरहका सङ्गठन करें तब न?

खूनके दस्तखतोंकी अर्ज़ी

जापानमें क्रान्तिकारियोंकी अनेक संस्थाएँ हैं जिनका सर्व-साधारणपर काफी प्रभाव रहता है। हालमें ही एक भूतपूर्व प्रधान मन्त्रीकी हत्या करनेके अपराधमें उनके कई सदस्योंपर मुकद्दमा चला। इस समय सारे देशने यह कहकर उन्हें हल्की सज़ा देनेपर ज़ोर दिया कि इनका उद्देश्य देशभक्तिसे पूर्ण था, कार्य भले ही निन्दनीय हो। इस सम्बन्धमें कई हज़ार व्यक्तियोंने अदालतके पास लिखित वक्तव्य प्रेषित किये। एक समाचार-पत्रके कथनानुसार नवयुवक जापानियोंकी एक देशभक्त संस्था-के तीन सौ सदस्योंने भी ऐसी ही अर्ज़ी पेश की थी जिसपर उन्होंने अपने खूनसे दस्तखत किये थे। इसमें प्रार्थना की गयी थी कि १५ मईवाली साजिशके मुकदमेके अभियुक्त तुरन्त रिहा कर दिये जायँ। न्यायमन्त्री नाओशी ओहाराके सामने उपस्थित करते हुए इस संस्थाके प्रतिनिधि श्री गाईची इजीचीने निवेदन किया कि यह अर्ज़ी संस्थाकी आम बैठकमें स्वीकृत की गयी थी। इस अर्जीका इतना प्रभाव पड़ा कि न्यायाधीशों-ने अभियुक्तोंको हल्की सजाएँ दीं। यदि ऐसी कोई अर्ज़ी हिन्दु-स्तानमें दी गयी होती तो इसपर हस्ताक्षर करनेवाले सबके

सब व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये होते और बिना मुकदमा चलाये ही नज़रबन्द कर लिये गये होते, किन्तु जापानमें ऐसे व्यक्ति सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

पश्चिमी तरीक़ोंका बहिष्कार

राष्ट्रीयताकी लहर जापानमें ज़ोरोंसे उठ रही है और जिस तरह जर्मनीमें हिटलरकी ओरसे 'अनार्य' बातोंको निकाल बाहर करनेका प्रयत्न हो रहा है, उसी तरह जापान भी पश्चिमी बातोंकी छापको दूर करनेका प्रयत्न कर रहा है। वहाँके बहु-संख्यक समाचारपत्रों तथा व्यापारिक संस्थाओंने अब जापान शब्दका प्रयोग करना बन्द कर दिया क्योंकि वे उसे विदेशी शब्द समझते हैं। जापानके बदले अब वे 'निप्पन' शब्दका प्रयोग करते हैं। शिक्षामन्त्रीने, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, 'पापा-मामा' जैसे शब्दोंका प्रयोग करनेकी मनाही कर दी है। इसी तरहकी और भी कई बातें वहाँ हो रही हैं।

राष्ट्रीय जाग्रतिके साथ साथ पहाड़ों और नदियों तकके नाम बदले जा रहे हैं। सुप्रसिद्ध जापानी समाचारपत्र नीची-नीचीने 'फिर अपने पुराने नामोंकी ओर' शीर्षक लेख प्रकाशित किया है। इसे पढ़कर हमारे उन भारतीय बन्धुओंकी आखें खुल जानी चाहिये जो आँख बन्द कर पश्चिमी शब्दों और तौर-तरीकोंको अपनानेके लिए उतावले रहा करते हैं। उक्त लेखका सारांश यह है—

राष्ट्रीय पार्कके सम्बन्धमें स्थापित जाँच-समितिने हाल हीमें निश्चय किया है कि 'जापानी आल्पस्' राष्ट्रीय पार्कका नाम बदल कर 'मध्य पर्वत-श्रेणीका राष्ट्रीय पार्क' कर दिया जाय। विदेशी नाम 'आल्पस्' का प्रयोग हमेशाके लिए बन्द कर दिया

जाय। यह बहुत ही अच्छी बात है और इसका प्रयत्न बहुत पहले ही होना चाहिये था। हम उक्त पर्वतश्रेणियोंका नाम अपने तरीकेपर रख सकते थे। हमें एक विदेशी आरोहक द्वारा रखे गये गैर-जापानी नामको ग्रहण करनेकी आवश्यकता न थी।

उक्त श्रेणीको 'आल्पस' पहाड़का नाम देनेसे हमें जो ऊपरी खुशी हुई थी उसका कारण सम्भवतः यह था कि देशके कुछ प्रसिद्ध दर्शनीय स्थानोंकी तुलना संसारके ऐसे ही अन्य प्रसिद्ध स्थानोंके साथ होनेसे हमारा गौरव बढ़ता था, इसीसे कुछ जापानी उस समय ओसाका नगरको पूरबका मैञ्चेस्टर कहते थे। अनेक नदियोंको अमुक अमुक स्थानकी 'राइन' इस तरहके विदेशी नाम दिये गये। समुद्र-तटवर्ती गरम पानीके झरनोंका नाम भी घूम फिर कर नैपोली या रिवीरा लगाकर रखा गया। आश्चर्य तो इस बातका है कि उस समय किसीने सुमिदा नदीके लिए 'टोकियोकी टेम्स' यह नाम सुझानेका प्रयत्न नहीं किया!

इस प्रवृत्तिका अब ज़ोरोंसे विरोध हो रहा है और उसका प्रभाव भी पड़ रहा है। इन बातोंमें हमें जान बूझकर बहुत ज़्यादा राष्ट्रीय होनेकी ज़रूरत नहीं है, फिर भी हम अपने स्थानोंके नाम क्यों न अपने ही ढंगसे अपनी भाषामें रखें। अन्त-र्राष्ट्रीय जगत्में बिजलीके लिए प्रायः इलेक्ट्रिसिटी शब्द खूब चलता है किन्तु जर्मनोंने इस टेढ़े मेढ़े शब्दको निकालकर इसके बदले अपनी भाषाके 'बर्न' शब्दका प्रयोग करना शुरू किया। अनार्य शब्दोंको निकालकर उनके स्थानमें यथासम्भव आर्य उद्भवके शब्दोंको रखनेकी उनकी प्रवृत्तिका अर्थ हम-लोग भलीभाँति समझ सकते हैं।

हम अपनी भाषामें आये हुए कुछ शब्दोंको केवल इस बिनापर अपनाना स्वीकार कर सकते हैं कि उनकी हमें नितान्त आवश्यकता है। दिखाऊ बड़प्पन और साहित्यिक कल्पनाकी हविश मिटानेके लिए विदेशी शब्दोंका जान बूझकर प्रयोग करना समाजके प्रति ऐसा अपराध है जो निन्दनीय ही कहा जा सकता है।

पुलिसवालोंका आत्मत्याग

जापानके पुलिसवालों तकमें आत्मत्यागकी भावना पायी जाती है। ग़रीबों और अपाहिजोंकी मदद करनेके लिए वे तरह तरहसे कोशिश किया करते हैं और देशके जिन मरीज़ोंको ज़रूरत हो उन्हें अपना खून तक देनेके लिए तैयार रहते हैं। ओजीबासी पुलिस-थानेके अस्पतालोंमें मरीज़ोंको अकसर बाहरसे खून पहुँचानेकी जरूरत पड़ती है और हरएक मरीजको एक खास तरहके खूनकी ज़रूरत होती है। इसी गरजसे वहाँके डाक्टर लोग उस हल्केके प्रत्येक पुलिसमैनकी नसोंसे थोड़ा थोड़ा खून निकालकर उसकी जाँच कर रहे हैं। यह प्रयोग पुलिस इन्सपेक्टर ताकीशीरो सिमाके सुझानेसे आरम्भ किया गया है। ये उस पुलिस स्टेशनके प्रधान हैं और इनके नीचे १४७ अन्य कर्मचारी हैं। इनमें और निरीह देश-भाइयोंपर लाठी बरसानेवाले हिन्दुस्थानी पुलिसवालोंमें कितना अन्तर है!

अंग्रेजीका बहिष्कार

शिक्षामन्त्री श्रीमत्सूदा अंग्रेजी शब्दों 'पापा' और 'मामा' का प्रयोग रोकनेके लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसके सम्बन्धमें उन्होंने

सूचित किया है कि इस सिलसिलेमें मेरे पास दो सौ चिट्ठियाँ आयी हैं, जिनमेंसे सिर्फ २३ ने इस आदेशके विरुद्ध अपनी राय जाहिर की है। उनका कहना है कि १९२३ के भूकम्पके पहले गिनज़ा बाज़ारमें अंग्रेजीके बहुतसे साइनबोर्ड देख पड़ते थे लेकिन अब उनकी संख्या दिनपर दिन कम होती जा रही है। इसीके आधारपर श्री मत्सूदाने यह भविष्यद्वाणी की है कि वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है जब जापानी घरोंमें 'पापा' और 'मामा' शब्द भी सुननेमें न आयँगे।

कहाँ तो जापान है जो धीरे-धीरे किन्तु निश्चयपूर्वक विदेशी शब्दों और विदेशी आदतोंको छोड़ता जा रहा है और कहाँ भारत है जो उन्हें बड़ी शीघ्रताके साथ ग्रहण करनेपर उतारू है! यह कितने दुःखकी बात है कि हमारे देशमें ८० फी सदी दूकानदार, यहाँ तक कि नाई और धोबी तक जो अंग्रेजीके अक्षर भी नहीं पहचानते, अंग्रेजीके साइनबोर्ड लगाते हैं।

परोपकारका आदर्श

डाक्टर कामेमात्सू कनसाई विश्वविद्यालयके अध्यक्ष थे। उन्हें अपने पुराने स्कूलसे कितनी मुहब्बत थी, यह इसीसे प्रकट है कि उन्होंने सूगेमुराकी प्रारम्भिक शालाके लिए, जहाँ उन्होंने बचपनमें शिक्षा पायी थी, इमारत बनवानेके निमित्त १० हजार येनकी रक़म दानमें दी और इतनेसे ही सन्तुष्ट न होकर चुपचाप मज़दूरोंकी तरह मकान बनानेके काममें जुट गये। पहले तो किसीने उन्हें पहचाना नहीं किन्तु बादमें पता चल गया। उन्होंने रुपये-पैसेसे सहायता देनेके सिवा खुद अपने हाथोंसे भी स्कूलकी इमारत बनानेके काममें मदद देनेका निश्चय

कर लिया था, क्योंकि यहाँ उन्हें जो शिक्षा प्राप्त हुई थी उसका उन्हें अभिमान था।

इसी तरहका उदाहरण मित्सुई और मित्सूबीशी नामक दो प्रमुख व्यापारियोंका है। इनमेंसे प्रत्येकने देशके दुष्काल-पीड़ित ग्रामीणोंकी सहायताके लिए तीस तीस लाख येनकी रक़म दान कर दी और स्वराष्ट्र-मन्त्रीको इस बातका पूरा अधिकार दे दिया कि वे जिस तरह चाहें उस तरह इसका प्रयोग करें। स्वराष्ट्रमन्त्रीने इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए तुरन्त अपने विभागकी एक कमेटी बुलायी है। आशा की जाती है कि पीड़ितोंकी सहायताके लिए और व्यापारियोंसे भी ऐसी ही रक़में प्राप्त हो जायँगी।

जापानकी अपेक्षा हिन्दुस्थानमें लखपतियोंकी संख्या कम नहीं ज्यादा ही है। इन उदाहरणोंसे उन्हें सबक लेना चाहिये। हमारे यहाँ सारे देशसे, जिसमें सैकड़ों राजा-महाराज तथा बहुसंख्यक लखपती भी शामिल हैं, चन्दा इकट्ठा करनेपर भी बड़े लाटके भूकम्प-कोषमें मुश्किलसे ५० लाख रुपया जमा हो सका था, जब कि जापानमें केवल दो लखपतियोंने ही ६० लाखकी रक़म दे डाली! इसीमें जापानकी उन्नतिका एक रहस्य छिपा हुआ है। भारतके लखपतियो, तुम भी अपना कर्त्तव्य समझो और अपनी थैलियोंका मुँह खोल दो।

एक विधवाकी देशभक्ति

जापानकी माताएँ भी कैसे ऊँचे विचारोंकी होती हैं उन्हें देखकर भारतकी उन वीर क्षत्राणियोंका स्मरण हो आता है जिनके प्रशंसनीय कार्योंसे भारतीय इतिहासका प्रत्येक विद्यार्थी परिचित है।

टोकियोमें एक औरत नौकरानीका काम करती थी। उसने एक हजार येनके कपड़े, बर्त्तन, इत्यादि उन जापानी सिपाहियोंके लिए भेंट किये जो देशके बाहर लड़ाईपर गये हुए थे। इसका नाम हनायो क्यूबोता था और यह ४७ वर्षकी थी। टोकियोमें एक दवाफरोश मोतोकिची किनामुराकी दूकानमें नियुक्त थी। जब उसने समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि हिमीजी कोरका एक सिपाही प्राइवेट तकोओ कुवाहारा मञ्चूरियामें सख्त घायल हुआ है, तो उसने कुछ ज़रूरी सामान उसके पास भेज दिया। इसके बाद बीसों बार उत्तरी मञ्चूरियामें स्थित सिपाहियोंको उसने ज़रूरी चीज़ें भेजीं।

एक बार उसे मालूम हुआ कि ऊसूई नामक सिपाही मञ्चूकुओसे लौटकर कुछ रोज़गार करना चाहता है और इसके लिए उसे रुपयेकी ज़रूरत है तो उसने उसे २०० येन देकर चावलका व्यापार शुरू करनेमें सहायता की। उसका एक दूरका रिश्तेदार रियूज़न इञ्जीनियरिङ्ग कोरमें नौकर था। एक बार जब उस कोरके लगभग बीस आदमी टोकियो भेजे गये, तो उसने खुद उनके रहने आदिके सुभीतेकी फिक्र की।

यह स्त्री किजिरो क्यूबोताकी पत्नी थी, जो 'इम्पीरियल मोनोपली ब्यूरो' में मुलाज़िम था। उसके पतिको मरे ११ वर्ष हो चुके थे। उसके छः बच्चे हुए थे किन्तु वे सब मर चुके थे। इसलिए वह अपने हर बच्चेकी बरसीके दिन सैनिकोंको सामान भेज दिया करती थी और कहती थी कि मेरे कोई लड़का नहीं रह गया जो देशकी सेवा करता, इसलिए मुझसे जो कुछ बन पड़ता है मैं ही उनकी तरफसे कर देना चाहती हूँ। उसके पास हिमीजी, ओकायामा और दूसरी पलटनों तथा भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके भेजे हुए आठ सौ खत मौजूद थे,

जिनमें उसके द्वारा प्रदत्त सहायताके लिए धन्यवाद दिया गया था।

क्या आज हमारे देशको भी ऐसी देशभक्त महिलाओंकी ज़रूरत नहीं है?

पतिता बहिनोंकी सहायता

जापानकी स्त्रियाँ अपनी पतिता बहिनोंकी सहायताके लिए जो कुछ कर रही हैं, उससे भारत महिला-सङ्घको सबक लेना चाहिये। इनकी ओरसे एक ऐसी संस्था स्थापित की जा रही है, जिसका उद्देश्य उन बहिनोंकी मदद करना और उन्हें कुमार्गसे बचाना है जो वेश्यावृत्तिकी शिकार हो चुकी हों। अनेक महिला सभाओंकी निगरानीमें इस बातका प्रयत्न किया जा रहा है कि लड़कियाँ कुचक्रमें फँसकर इस पेशेको अख्तियार करनेसे बचायी जायँ। यह संस्था पतिता स्त्रियोंको ज़रूरत होनेपर डाक्टरी और क़ानूनी सहायता प्रदान करेगी। साथ ही वह राज्यकी ओरसे ऐसा क़ानून बनवानेकी भी कोशिश करेगी जिससे दुर्दशाग्रस्त परिवारोंको रुपया कर्ज़ देकर स्त्रियों-को पापवृत्ति करानेके लिए ख़रीद सकना नाजायज़ समझा जाय।

क्या भारतमें भी स्त्रियोंकी ऐसी कोई संस्था है जिसने उन पतिता बहिनोंको लज्जाजनक जीवन बितानेसे बचानेकी कोशिश की हो, जो हमारी सामाजिक बुराइयों तथा नारी जातिके प्रति किये गये अत्याचारोंके कारण ही कुमार्गकी ओर जानेको बाध्य हुई हैं? अब समय आ गया है और कुछ स्त्रियोंको अवश्य ही इस शुभकार्यमें अपना समय लगानेका सङ्कल्प कर लेना चाहिये।

जापानी बच्चोंका देश-प्रेम

जापान अपने बच्चोंमें भी किस तरह देश-प्रेमका भाव भरनेकी कोशिश करता है, यह जाननेकी इच्छा हो तो खिलौना बेचनेवाली दूकानोंपर जाकर देखिये। वहाँ आपको सैनिक ढंगके खिलौने ही विशेष रूपसे देख पड़ेंगे। उदाहरणार्थ तलवारें, युद्ध-क्षेत्रमें काम आनेवाली दूरबीनें, कलाईपर बाँधने-की घड़ियाँ तथा और भी ऐसी चीज़ें जो सैनिकोंके काम आती हैं। लड़कोंके खेलनेके लिए एक तरहकी पिस्तौल और बन्दूकें तो वहाँ हैं ही, पर सबसे बढ़िया खिलौना वह छोटीसी मोटर-कार है जिसपर एक ऐसी हवाई बन्दूक रखी हुई है जो शत्रुपर निशाना लगानेके लिए किसी भी तरफ घुमायी जा सकती है।

शुरूसे ही वहाँ ऐसी शिक्षा दी जाती है। यही वजह है कि जापानका बच्चा बच्चा देशभक्त होता है। आपको शायद जापानके सिवा और किसी देशमें यह दृश्य देखनेको न मिलेगा कि सात सात आठ आठ बरसके बच्चे खास तरहकी पोशाक पहने हुए फौजी ढंगसे ऐसे राष्ट्रीय गीत गाते चलते हों जैसे "उड़ता रहे निरन्तर नभमें सूर्याङ्कित वर केतु हमारा"। राष्ट्र-निर्माणके लिए यह ज़रूरी है कि राष्ट्रीयताका बीज बचपनमें ही बोया जाय। क्या हम भी भावी राष्ट्रकी रचनाके लिए ऐसा कोई प्रयत्न कर रहे हैं?

नवयुवकोंको बचानेका प्रयत्न

जिस तरह अन्य देशोंके नवयुवक देहातके जीवनसे आजिज़ आकर प्रधान नगरकी ओर दौड़े चले आते हैं, उसी तरह प्रति वर्ष हज़ारों लड़के—और लड़कियाँ भी—टोकियो चले आया करते हैं जहाँ न उनका कोई रिश्तेदार होता है

और न किसीसे उनका परिचय ही रहता है। वहाँकी म्यूनिसिपलटीकी तरफसे इन लोगोंकी निगरानीके लिए एक खास मुहकमा खोल दिया गया है जो इनकी रक्षाका प्रबन्ध करता या इन्हें काम दिलानेके लिए यत्नशील रहता है।

हमारे देशके बड़े बड़े शहरोंकी म्यूनिसिपलटियाँ भी क्यों नहीं दर दर भटकनेवाले नवयुवकोंको इसी तरहकी सहायता प्रदान करतीं और उन्हें आत्महत्या करनेसे बचातीं ?

नौकरशाहीके लिए नसीहत

जापानके प्रधान मंत्रीने वहाँके अफसरोंको जो थोड़ीसी सलाह दी थी, उसका सारांश नीचे दिया जाता है, क्योंकि उससे भारतकी नौकरशाही भी नसीहत ले सकती है।

राजनीतिक स्थिरता तथा न्यायकी रक्षाके लिए, उसी तरह राजनीतिक बुराइयोंको दूर करने एवं सरकारमें सर्वसाधारणका विश्वास बनाये रखनेके लिए, सरकारी अफसरोंमें कड़ेसे कड़े अनुशासनका होना बहुत ज़रूरी है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए कर्मचारियोंसे अनुरोध किया जाता है कि वे ईमानदारीसे अपने अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें तत्पर रहें, अधिपतियोंकी आज्ञा मानें, प्रत्येक कार्यमें न्यायका ख़याल रखें, स्वार्थपरायणतासे बचे रहें, किसीके दबावमें न आवें और व्यक्तिगत बातोंसे हमेशा अपनेको ऊपर उठाये रखें। इस समय खास तौरसे, जब कि स्थितिकी जटिलता बढ़ती जा रही है और लोगोंमें असन्तोष फैल रहा है, उन्हें अपने व्यवहारमें हमेशा सजग रहना चाहिए और इसका खूब खयाल रखना चाहिये कि सरकारी अनुशासनको बनाये रखनेके सम्बन्धमें सर्वसाधारणके मनमें किसी तरहका सन्देह न उत्पन्न होने पावे।

"अफसरोंको अपने अपने कर्त्तव्यके अनुसार निरन्तर अपना ज्ञान तथा अपनी योग्यता बढ़ानेकी कोशिश करनी चाहिये और समयकी गतिको देखते हुए परिस्थितिका सामना करनेका भरपूर प्रयत्न करना चाहिये। उन्हें पुराने रीति-रिवाज़ोंको ही पकड़े हुए न बैठ रहना चाहिये और न यह भूलना चाहिये कि हमें समयके साथ साथ चलना तथा भविष्यकी कल्पना भी करनी है। शासन-सम्बन्धी जटिलताओंके कारण हाकिमोंके अख्तियार भी बढ़ते जा रहे हैं। इसी वजहसे उनमें परस्पर मतभेद पैदा होने या शासनयन्त्रके सञ्चालनमें बाधा उपस्थित होनेकी सम्भावना अधिक प्रबल होती जा रही है। ऐसी स्थितिमें अफसरोंको प्रत्येक विषयपर शान्त और व्यापक दृष्टिसे विचार करते हुए एक दूसरेके साथ पूर्ण सहयोग करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

"अफसरोंका यह कर्त्तव्य है कि अपने आपको सार्वजनिक हितके कामोंमें लगावें, इसीसे देशके लिए उनकी सेवाका बड़ा महत्त्व है। इस दृष्टिसे उन्हें इस बातका ख़याल बराबर रखना चाहिये कि उनके व्यवहारमें कभी अशिष्टता, औद्धत्य और लापरवाही न देख पड़े। उन्हें सचाईके साथ अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये और हर तरहकी बेजा हरक़तके सम्बन्धमें एक दूसरेको सावधान करते रहना चाहिये, जिससे काममें बाधा न पड़े।"

किसानोंकी सहायता

सार्वजनिक हित चाहनेवाले व्यक्तियों द्वारा विपद्ग्रस्त किसानोंको किस तरह सहायता पहुँचायी जाती है, इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। मित्सुई, ईवासाकी और हरादा

परिवारों द्वारा दिये गये पाँच लाख येनके दानसे एक संस्था स्थापित की गयी है। इसका नाम है "नोसों कीज़ाई कोसी क्योकाई" अर्थात् दैवी विपत्तियोंसे उत्पीड़ित ग्रामीणोंकी सहायता प्रदान करनेवाली संस्था। इसका मुख्य उद्देश्य देहातोंमें रहनेवालोंकी स्थिति सुधारना है। इसमें विश्वविद्यालयोंके अध्यापक तथा सरकारी विभागोंके वे मन्त्री काम करेंगे जो ग्रामीण अर्थशास्त्रमें पारङ्गत हों। इसकी ओरसे ऐसे विशेषज्ञ नियुक्त किये जायँगे जो गाँवोंमें जाकर स्वयं सङ्कटापन्न व्यक्तियोंके साथ रहते हुए उन्हें मदद पहुँचानेकी कोशिश करेंगे। इसके अतिरिक्त संस्था एक मासिक पत्र भी निकालनेवाली है जिसके द्वारा किसानोंको ज़रूरी बातोंके सम्बन्धमें सलाह दी जायगी और ऐसे तरीक़े बताये जायँगे जिनसे फसलकी बर्बादी रोकना सम्भव हो।

कहा जाता है कि यह बिलकुल गैर-सरकारी संस्था होगी। इसके संस्थापकोंको आशा है कि जब लगभग तीन वर्षमें दानकी पूरी रक़म (पाँच लाख येन) खर्च हो जायगी, तब इसका कार्य सार्वजनिक चन्देके बलपर चलाया जा सकेगा।

अब हमें भी अपने आपसे यह प्रश्न करना चाहिये कि हमने सालमें एक बार दो बार भाषण करनेके सिवा अपने यहाँके किसानोंकी सहायताके लिए वास्तविक रूपसे क्या किया? हमें महात्माजीको धन्यवाद देना चाहिये कि उनकी कृपासे अब ग्रामसुधारका प्रयत्न आरम्भ हो गया है। यदि हम उनके उद्देश्यको अच्छी तरह समझ लें और सच्चे मनसे उसीके अनुसार चलनेकी कोशिश करें तो अब भी देशके जीवनदाता किसानोंकी सेवा कर अपने कर्त्तव्यका पालन कर सकते हैं, अस्तु।

युवकोंका हौसला

नीचेके उदाहरणसे विदित हो जायगा कि ग्रामवासियोंकी सहायताके लिए वहाँका युवकवर्ग क्या कर रहा है। प्रत्येक भारतीय युवकको इसे पढ़ना चाहिये और इसके अनुकरणकी चेष्टा करनी चाहिये।

जापानी युवक-संस्थाओंके सङ्घने, जिसके सदस्योंकी संख्या तीस लाख है, सम्बद्ध संस्थाओंको यह सूचित किया है कि सङ्घके कोषमेंसे एक लाख येन वैयक्तिक सदस्योंको या समूची संस्थाओंको देहाती युवकोंमें उत्पादक उद्योग-धन्धोंके प्रचारके लिए कर्ज़ दिया जायगा। सूचनाके अनुसार व्यक्तियोंको १०० येन तक तथा संस्थाओंको ३०० येन तक बिना किसी जमानतके ऋण दिया जा सकेगा और उसपर सूद भी नलिया जायगा। कर्ज लेनेवालोंको चाहिये कि रुपया मिल जानेके बाद सालभरके भीतर एक मुश्त या माहवारी किस्तों द्वारा कुल रकम वापस कर दें।

सङ्घके कोषमें जो रुपया है वह केवल सदस्योंकी फीस द्वारा ही प्राप्त हुआ है। क्या भारतमें युवकोंकी एक भी ऐसी संस्था है जिसके कोषमें हजारों नहीं, तीन चार सौ रुपये भी हों? हमारे यहाँ तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके कोषमें भी एक लाख रुपये नहीं हैं, जब कि जापानका युवक सङ्घ लाखों रुपये बिना सूद लिये ही ऋणके रूपमें दे सकता है! हमारी बेबसीका सबब यही है। देशमें हमें सब कुछ प्राप्त है किन्तु सङ्गठन और अनुशासनका हममें अभाव है।

देशभक्तिसे प्रेरित आत्महत्याएँ

जापानी लोग आत्महत्याको पाप नहीं समझते। वे यह सिद्धान्त मानते हैं कि 'दुःखमय जीवनसे मृत्यु श्रेयस्कर है'

और ज्यों ही उन्हें ऐसा अनुभव होने लगता है, त्यों ही वे अपने इस विचारको कार्यमें परिणत कर डालते हैं। इसीसे वहाँके अखबारोंमें अक्सर आत्महत्याकी इतनी खबरें छपा करती हैं।

इन आत्महत्याओंकी एक विशेषता यह है इनमेंसे कई देश-भक्तिसे प्रेरित होकर की जाती हैं। देशके प्रति अपना कर्तव्य न कर सकनेके कारण बहुतसे सैनिक और अफ्सर आत्मघात कर लिया करते हैं। कुछ लोग इसलिए आत्महत्या करते हैं कि विदेशोंसे चिर कालके बाद लौटने पर वे जापानी सीखनेमें असफल होते हैं।

जिम्मेदारीका ख़याल

आमतौरसे प्रायः सभी जापानियोंको, किन्तु विशेष रूपसे वहाँके ओहदेदारोंको, जिम्मेदारीका कितना ज्यादा ख़याल रहता है, यह नीचेकी उस घटनासे स्पष्ट है जिसके परिणाम-स्वरूप कई अफसरोंको यहाँ तक कि एक (गवर्नर) प्रान्ताधि-पतिको भी इस्तीफा दे देना पड़ा और एक पुलिस इन्सपेक्टरको आत्महत्याकी शरण लेनी पड़ी।

एक बार सम्राट् एक स्कूल देखने जा रहे थे। उनकी सवारीके आगे आगे पथ-प्रदर्शनके लिए पुलिसकी मोटर थी। संयोगसे इस मोटरमें जो अफ्सर सवार था, उससे रास्ता बतलानेमें कुछ गलती हो गयी। नतीजा यह हुआ कि सम्राट् उक्त स्कूलमें मुक़र्रर वक्तसे आध घण्टा पहले ही पहुँच गये। इसलिए एक पुलिस अफ्सरने जो सम्राट्के कार्यक्रमकी इस गलतीके लिए प्रत्यक्ष रूपसे जिम्मेदार था, शरमके मारे आत्महत्या कर ली। यह घटना बड़ी ही करुणाजनक है।

शाही जुलूसके पथ-प्रदर्शनके कर्त्तव्यको उसने इतने अधिक गौरवका कार्य समझा और वह उसके सम्बन्धमें विचार करते करते इतना तल्लीन हो गया कि उसे अपने आपे तककी सुध न रह गयी। थोड़ी देर बाद जब उसे होश हुआ, तब वह ग़लती कर चुका था। अब सच्चे जापानीकी तरह उसने ख़याल किया कि इस अपराधका परिमार्जन आत्मघात करनेके सिवा और किसी तरह नहीं हो सकता। यह सोचकर उसने तलवारसे अपना गला काट लिया।

आज हमारे नेताओंमें, जो आये दिन नये दल और नये गुट क़ायम किया करते हैं, कितने ऐसे हैं जिन्हें अपनी जिम्मेदारीका इतना ख़याल हो जितना उपर्युक्त जापानी अफ़सरको था?

एक और उदाहरण

भारतमें ट्राम चलानेवालोंकी लापरवाहीसे अक्सर रास्ता चलनेवालोंकी प्राणहानि हो जाया करती है। कोई कोई चालक तो ऐसे बेरहम होते हैं कि चोट खाये हुए व्यक्तियोंको वहीं छोड़कर तेज़ रफ्तारसे गाड़ी आगे बढ़ा ले जाते हैं। इसके विपरीत जापानमें वे लोग आहत व्यक्तियोंकी प्राणरक्षाके लिए अपना खून तक देनेको तैयार रहते हैं। इसका एक ताज़ा उदाहरण यह है—

एक दिन दोपहरके बाद जब एक ट्राम चौराहेके उस पार जा रही थी, तब पासके अहातेसे निकल कर पाँच वर्षका एक बालक एकाएक ट्रामके रास्तेपर आ गया। चालक 'भागो-भागो' कहकर ज़ोरसे चिल्लाया पर अब क्या हो सकता था। धक्का लगनेसे बालक गिर पड़ा और उसका दाहिना पाँव ट्रामके पहियेसे कट गया। चालक तुरन्त उसे नज़दीकके एक अस्प-

तालमें ले गया और वहाँ उसके शरीरमें प्रवेश करानेके लिए उसने खुद अपना खून दिया! दूसरे ही दिनसे बच्चेकी हालत सुधरने लगी।

इसकी तुलना ज़रा अपने यहाँके ट्रामवालोंसे कीजिए और देखिये कि ऐसे मामलोंमें उनका व्यवहार कैसा होता है, लेकिन दर असल इसमें उनका कोई दोष नहीं। 'जिम्मेदारी क्या चीज़ है' यह उन्हें कभी सिखाया ही नहीं जाता। वे इतना ही जानते हैं कि ट्राम कम्पनीका बड़ा साहब पुलिससे कह सुनकर हमारा छुटकारा करा देगा, इसीसे वे हमेशा ऐसी ही गैर-जिम्मेदारीका बर्त्ताव करते रहते हैं।

चपरासीसे विदेशमन्त्री

'नीची नीची' समाचारपत्रसे एक कथा यहाँ लिखी जाती है। एक जापानी टोकियोके अमेरिकन दूतावासमें चपरासी तथा क्लर्कका काम करता था। वह कहा करता था कि मैंने अपनी अंग्रेजी सुधारनेके लिए ही यह नौकरी की है। दूता-वासके फौजी अफसरको इस युवकके कामसे सन्तोष नहीं हुआ, अतः वह बरखास्त कर दिया गया। यह फौजी अफसर और कोई नहीं, वे ही जनरल पर्शिङ्ग थे जो अमेरिकाकी सेना लेकर गत महायुद्धके समय यूरोप गये थे। चपरासी खुद कोकी हिरोता थे जो वर्त्तमान मन्त्रिमण्डलमें विदेशमन्त्री हैं। खुद अपने उद्योगसे समुन्नत स्थान प्राप्त करनेवाले व्यक्तिका यह कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है!

महायुद्धप्रेमी मन्त्री

जापानमें मन्त्रीसे लेकर मामूली कुली तक देशभक्तिमें डूबा रहता है और उसे अपने कर्त्तव्यका भी ज्ञान रहता है। कुछ

दिन पहले मैंने रेलोंके मन्त्रीके बारेमें सुना था कि एक बार उन्होंने खुद इंजन-ड्राइवरका काम किया और ३०० मीलतक रेलगाड़ी चलाकर ले गये। अब यह पता चला है कि उन्होंने एक स्कूलमें 'जुजित्सू' (जापानी मल्ल-युद्ध) सिखानेका अवैतनिक कार्य स्वीकार किया है।

जापानी रेलोंके मन्त्री, श्री शीन्या उचीदा जुजित्सूके विशेषज्ञ हैं। एक दिन वे अज़ाबू मिडिल स्कूल देखने गये, जहाँ उन्होंने लड़कपनमें शिक्षा पायी थी। उन्होंने विद्यार्थियोंको मल्ल-युद्धके सम्बन्धमें बहुत सी बातें बतायीं। लड़कोंने उनसे प्रार्थना की कि आप हम लोगोंको जुजित्सु सिखा देनेकी कृपा करें। सरकारी काममें व्यस्त रहते हुए भी श्री उचीदाने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा कि सप्ताहमें एक दिन मैं इसकी शिक्षा देने यहाँ आ जाया करूँगा।

राष्ट्रको अधिक शक्तिशाली बनानेमें वहाँके सरकारी अफसर इसी तरह मदद दिया करते हैं। इसके विपरीत भारतमें राष्ट्र-निर्माणके लिए सरकारी कर्मचारी क्या क्या करते हैं, यह पाठकोंको विदित ही है।

डाकुओंका अन्तःकरण

जापानमें डाकुओं तथा घोर अपराधियोंके भी अन्तःकरण होता है और वे भी उसकी पुकार सुन सकते हैं। एक मनोरञ्जक घटनाका वर्णन यहाँ दिया जाता है।

"एक दिन सवेरेके वक्त मेगूरो पुलिस थानेमें जाकर एक युवक कहने लगा कि मैं डकैती करके आरहा हूँ, मुझे गिरफ्तार कर लीजिए। उसने बतलाया कि डाका डाल चुकनेके बाद अचानक मुझे खयाल आया कि तीन वर्ष पहले मैं डाकेज़नीके

अपराधमें पकड़ा जाकर इस थानेमें लाया गया था। उस समय यह प्रतिज्ञा करने पर मेरी रिहाई हुई थी कि यदि अब फिर कभी मैंने डाका डाला तो इसकी इत्तिला मैं मेगूरा थानेमें कर दूँगा।

"पुलिसने उसके बयानकी जाँच की तो विदित हुआ कि वह सचमुच चार घण्टे पहले एक व्यक्तिके घरमें घुसा था और छुरी दिखाकर उससे सवा येन झटक लाया था।"

इसी तरहकी अनेक घटनाएँ हर महीने जापानी समाचार-पत्रोंमें छपा करती हैं। कभी कभी तो अपराधी खुद अपने मुँहसे अपने पुराने जुर्म क़बूल कर कड़ी सज़ा देनेकी प्रार्थना करते हैं।

जापान द्वारा भारतका अनुकरण

जापान भारतकी प्राचीन शिक्षा-पद्धति अर्थात् गुरुकुलका अनुसरण करने जा रहा है, क्योंकि उससे चरित्र-निर्माणमें सहायता मिलती है।

पुराने ज़मानेमें जापानमें प्रायः मन्दिरोंसे सम्बद्ध स्कूलोंमें ही शिक्षा दी जाती थी। इसके बाद ग्राम-पाठशालाओंका प्रसार हुआ, जिनमें अध्यापकों द्वारा शिक्षाका प्रबन्ध था। कहा जाता है कि इस प्राचीन शिक्षा-प्रणालीमें एक बड़ा गुण यह है कि इसमें अध्यापकके निकटतम संसर्गमें रहनेके कारण विद्यार्थियोंके नैतिक चरित्रपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। जापानके शिक्षा-विभागने पुराने ढङ्गके इन विद्यालयोंको फिरसे चलानेके लिए प्रोत्साहन देनेका निश्चय किया है। एहीमे नामक स्थानमें श्री हिदीओ तकीदाके तत्त्वावधानमें इस तरहका एक स्कूल खोला गया है और आशा की जाती है कि सरकारका

समर्थन पाकर देशके अन्य अन्य भागोंमें भी ऐसे विद्यालयोंकी स्थापना की जायगी।

भारतीय न्यायाधीश विचार करें

अंग्रेज अफसरोंका अनुग्रह प्राप्त करनेके लिए जो भारतीय न्यायाधीश राजनीतिक अपराध करनेवालोंको कड़ी सज़ा दिया करते हैं, उन्हें जापानी मजिस्ट्रेटोंका हाल पढ़ कर अपने सम्बन्धमें विचार करना चाहिये। वहाँके न्यायाधीश सरकारके इशारेपर न चलकर ईश्वरसे पथ-प्रदर्शनकी प्रार्थना करते हैं।

नीची नीची समाचार-पत्रमें छपा है कि 'हत्याकारी भ्रातृ सङ्घ' के १४ सदस्योंपर वर्त्तमान शासन-प्रणालीको बदलवानेकी इच्छासे हत्याओंका षड्यन्त्र रचनेके कारण जो मुकदमा चलाया गया था, उसका फैसला सुनानेका समय ज्यों-ज्यों निकट आता जा रहा है, त्यों त्यों प्रधान न्यायाधीश गोइचिरो फूजी प्रतिदिन मीजी समाधि-मन्दिरमें जाकर ईश्वरसे प्रार्थना किया करते हैं कि वह इस मामलेका इन्साफ करनेमें उनकी सहायता करे।'

निदान जजको ईश्वरीय आदेशका अनुभव हुआ और उसने मुलज़िमोंको बहुत हल्की सज़ा दी।

बौद्ध-पुरोहितकी गवाही

इसी तरहके एक और मुकदमेंमें गवाही देते हुए एक बौद्ध-पुरोहितने जो कुछ कहा था, वह भी उल्लेखनीय है। उसके कथनका सारांश यही है कि यद्यपि बौद्ध-धर्ममें 'अहिंसा परमो-धर्मः' पर बहुत ज़ोर दिया गया है, फिर भी वह ऐसे मनुष्योंके संहारकी इजाज़त देता है जो राष्ट्रको क्षति पहुँचा रहे हों।

'हत्याकारी भ्रातृसङ्घ' के कुछ नवयुवकों द्वारा जापानके एक भूतपूर्व अर्थमन्त्रीकी हत्याका जो मुकदमा टोकियोकी

ज़िला अदालतमें पेश हुआ था, उसमें प्रतिवादीकी ओरसे साक्ष्य देते हुए रियूताकूजी मन्दिरके प्रधान पुरोहित गेम्पो यमामोतोने बौद्ध सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे सङ्घके अपराधोंकी मीमांसा की।

पुरोहिती लिबासमें अदालतके सामने उपस्थित होकर ६९ वर्षके इस बूढ़े पुरोहितने जो बयान दिया, उसका सार यह है—"क़ानूनकी दृष्टिसे मुझे निशो इनौवीकी पैरवी नहीं करनी है और न मुझे क़ानूनका पालन करानेवाले न्यायाधीशके कर्त्तव्यसे ही मतलब है। मुझे जो कुछ कहना है, उसका सम्बन्ध आध्यात्मिक पहलूसे है। मैं बौद्धधर्मके सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे ही निशोके कार्योंकी समीक्षा करना चाहता हूँ।

"निशो इनौवीने कई वर्षों तक मेरे पास विद्याध्ययन किया है और उसने बौद्धधर्मके सिद्धान्तोंको अच्छी तरह समझ लिया है। बहुत कुछ विचार करनेके बाद मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि देशकी वर्त्तमान स्थितिसे प्रेरित होकर ही निशो-को हत्या करनेका निश्चय करना पड़ा है, हालाँ कि ऐसा करना दूसरोंका भला करनेकी शिक्षा देनेवाले बौद्धधर्मके मूल सिद्धान्तके प्रतिकूल है। बौद्धमत मनुष्योंकी ही नहीं, प्राणि-मात्रकी, यहाँ तक कि कीड़े-मकोड़ों तककी हिंसाका निषेध करता है। इतना होते हुए भी यदि सारे समाज या सारी जातिकी भलाईके लिए एक व्यक्तिको मार डालनेकी ज़रूरत हो, तो ऐसी स्थितिमें भी बौद्धधर्म इसकी मनाही करता हो, यह बात नहीं है। अमिताभको छोड़कर और जितने बुद्ध हुए हैं, सभी कोई न कोई हथियार लिये हुए दर्शाये गये हैं। ये हथियार इसीलिए हैं कि लोकहितके लिए आवश्यक होने पर उनसे दुष्टोंका संहार किया जाय।

"निशोको भविष्यमें भी राष्ट्रकी सेवा करनेका अवसर मिलता रहेगा। क़ानून उसे फाँसीकी सज़ा भले ही दे दे, पर उसकी आत्मा बराबर हमारे साथ बनी रहेगी। वह तो जापान-की आत्मा—सच्चे जापानी भाव—का समर्थक था, इसलिए यदि उसके प्राणोंका अपहरण भी हो जाय तो भी उसकी आत्मा उस भावकी संरक्षक बनी रहेगी। इस जापानी भावपर ही सारी जातिका भाग्य निर्भर है।

स्वतन्त्र और गुलाम देशका अन्तर

थोड़ी देरके लिए कल्पना कीजिए कि यदि किसी व्यक्तिने राजनीतिक हत्याके सम्बन्धमें ऐसी ही गवाही भारतमें दी होती तो इसका परिणाम क्या होता। अवश्य ही उसे 'हत्याकारियों-की प्रशंसा करने' के कारण सात वर्षकी सज़ा दी गयी होती। यह है स्वतन्त्र और गुलाम देशका अन्तर। जापानके भिन्न भिन्न भागोंसे लोगोंने न्यायाधीशोंके पास लाखों पत्र भेज कर प्रार्थना की कि अभियुक्तोंके ऊँचे, देशभक्तिपूर्ण और निःस्वार्थ उद्देश्य" का ख़याल कर उन्हें बहुत मामूली सज़ा दी जाय।

अन्तमें हुआ भी ऐसा ही। अभियुक्तोंको बहुत हलकी सज़ा दी गयी और वे 'घरके क़ैदखानों' में भेज दिये गये जहाँ उन्हें अपने सम्बन्धियोंसे मुलाकात करनेकी सुविधाएँ प्राप्त थीं। इस प्रकार वहाँके न्यायाधीशको भी सार्वजनिक मतके सामने झुकना पड़ा। इसके विपरीत भारतकी स्थिति देखिये। आपको स्मरण होगा कि भगतसींगकी प्राणरक्षाके लिए लाखों आद-मियोंने अर्ज़ियाँ भेजीं और स्वयं महात्मा गान्धीने भी पूरा ज़ोर लगाया कि और नहीं तो केवल सदिच्छाके संकेत स्वरूप ही लार्ड अर्विन भगतसींग तथा उसके साथियोंको प्राण दान

कर दें, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। इसकी वजह हमारी गुलामी ही है।

जापानी तत्त्वविज्ञान

'नीची नीची' पत्रके प्रधान सम्पादक श्री तकाइशीके कथनानुसार जापानी तत्त्वविज्ञानका स्वरूप थोड़ेमें केवल एक शब्द द्वारा प्रकट किया जा सकता है और वह है 'महत्त्वाकांक्षा'। वे लिखते हैं—

जापानी क़ौमकी एक बड़ी विशेषता उसकी बढ़ती हुई महत्त्वाकांक्षा है। वहाँवाले—व्यक्तिगत रूपसे कहिये या सारे राष्ट्रकी दृष्टिसे कहिये—मौजूदा हालतसे कभी सन्तुष्ट नहीं रह सकते। यदि गत दिवसकी अपेक्षा आजकी स्थिति अधिक सुधरी हुई न हो और आगामी दिन आजसे भी बेहतर न प्रतीत हो, तो इसे वे गतिहीनता या अवनतिका सूचक समझकर तुरन्त इसमें सुधार करनेकी फिक्र करने लगते हैं। अतः थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि महत्त्वाकांक्षा ही जापानी जातिके तत्त्वविज्ञानका सार है।